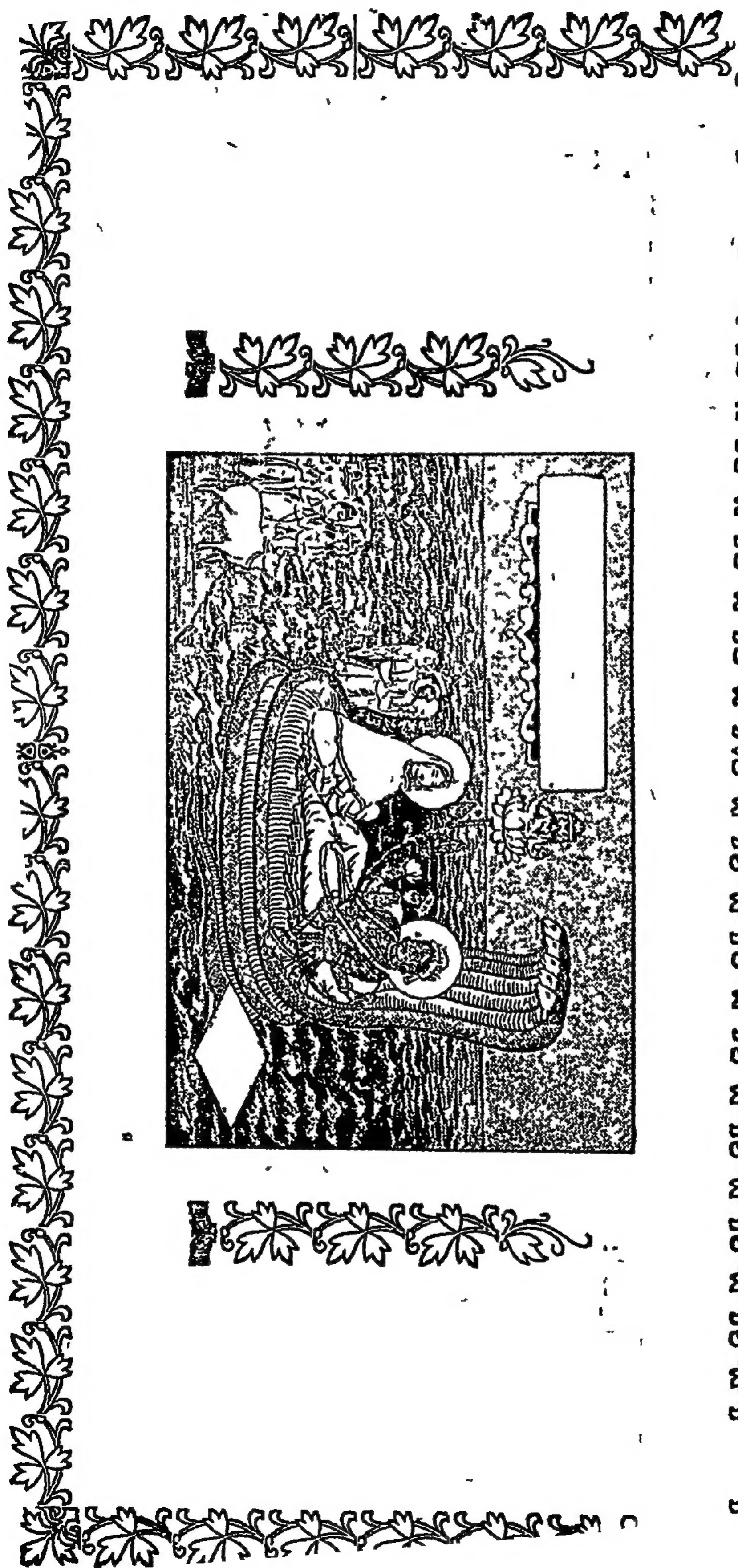


* श्रीगणेशाय नमः *

माघमाहात्म्यम्

* भाषाटीकथा सहितम् *

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।। देवीं सरस्वतीं चव ततो जयमुदीरयेत् ।।१।। व्यास उवाच ।। शृणु सूत प्रवक्ष्यामि माघस्यानन्तकं फलम् ।। यदुक्तं तु वसिष्ठेन दिलीपपुरतो यथा ।।२।। सूत उवाच ।। पाद्मे माघस्य माहात्म्य भगवन् ब्रूहि मे शुभम् ।। अनुग्राह्योऽस्मि शिष्योऽस्मि ब्रूहि तन्मे यथातथम् ।। ३ ।। व्यास उवाच ।। अध्वरावभृतस्नातो ऋषिभिः कृतमङ्गलः ।।

नारायण को, नर को, नरोत्तम को तथा सरस्वती देवी और वेदव्यासजी को नमस्कार करके जय शब्द का उच्चारण करै ।। १ ।। व्यासजी ने कहा—प्राचीन काल में वसिष्ठ भगवान् ने जो दिलीप से अनन्त फल देने वाला माघ-स्नान का माहात्म्य कहा था, हे सूत ! सुनो, मैं उसको कहता हूँ ।। २ ।। सूतजी ने कहा—हे भगवान् ! पद्मपुराण में कहे हुए माघ महीने के शुभ माहात्म्य को ठीक-ठीक मुझसे कहिये, मैं आपका शिष्य हूँ, अनुग्रह करने योग्य हूँ ।। ३ ।।

व्यासजी ने कहा—यज्ञ करने के बाद अवभृत स्नान करके ऋषियों से मंगलाचार किये हुए, अपने सब नगरवासियों से पूजा किये जाने पर राजा दिलीप अपने नगर के बाहर निकले ॥ ४ ॥ राजाओं में श्रेष्ठ, मृगया का अत्यन्य रसिक राजा दीलिप कोलाहल से घिरा हुआ, तथा आखेट (शिकार) की सामग्री से युक्त था ॥ ५ ॥ उसके पैर जूते से ढके थे, वह राजा नीले रंग की पगड़ी पहिरे था तथा कवच (वख्तर) धारण किये हुए था, अँगुलियों में गोधांगुलि

पूजितो नागरैः सर्वैः स्वपुरान्निर्गतो बहिः ॥ ४ ॥ दिलीपो भूभुजां श्रेष्ठो मृगयारसिको भृशम् ॥ कोलाहलसमाविष्टः आखेट व्यूहसंस्थितः ॥ ५ ॥ उपानद्गूढपादस्तु नीलोष्णीषो हरिच्छदः ॥ बद्धगोधाङ्गुलित्राणो धनुःपाणिः शरी नृपः ॥ ६ ॥ बद्धक्षुद्रासिचर्मा च तथा भूतैश्च पत्तिभिः ॥ गह्वरेषु च रम्येषु वमेषु विपुलेषु च ॥ ७ ॥ उल्लङ्घितमहास्रोता युवा पञ्चास्यविक्रमः ॥ मुदा क्रीडति तैः सार्धं कुञ्जेषु मृगयान्मृगान् ८ ॥ हन्यतां हन्यतामेषो

(बघनखा) पहिरे था, और हाथों में धनुष और बाण लिये था ॥ ६ ॥ उसके सिपाही छोटी तलवार और ढाल लिये हुए गहन तथा विस्तीर्ण मनोहर जंगल में घूमने लगे ॥ ७ ॥ इनके साथ कुञ्जों में मृगों को ढूढ़ने वाले सिंह के समान पराक्रमी, अनेक बड़े-बड़े स्रोतों को लाँघने वाले युवा पुरुष आनन्द पूर्वक क्रीड़ा करते थे ॥ ८ ॥ "वेग से यह मृग

भागा जाता है मारो मारो" ऐसा भृत्यों के चिल्लाने पर वह स्वयं झपट कर उनको मारता था ॥ ६ ॥ फिर इधर-उधर जाता था, कभी वनस्थली को देखता कभी पेड़ों पर उड़ने से त्रस्त मोर के झुंड को देखता था ॥ १० ॥ कहीं पर हरिनियों का समुदाय (मनुष्यों के आगमन से) घबड़ाया हुआ है, इनके बच्चे सब दिशाओं में भाग रहे हैं और कहीं सियार ऊँचे स्वर से भयंकर शब्द कर रहे हैं ॥ ११ ॥ कहीं पर गैंडों का समूह हाथियों की मानो शोभा बढ़ा रहा

मृगा वेगात् पलायते ॥ इति प्रजल्पन् भृत्येषु स्वयमुत्प्लुत्य हन्ति च ॥ ६ ॥ इतस्ततः पुनर्याति क्वचित् पश्यन् वनस्थलीम् ॥ विटपोड्डीनसंत्रस्तलीनकेकिकुलाकुलाम् ॥ १० ॥ हरिणीगणवित्रस्ता धावच्छावापदादिङ् मुखान् ॥ क्वचित्फेरवफेत्कारताररावविभीषणाम् ॥ ११ ॥ खड्गयूथैः क्वचिल्लक्ष्मीं दधानामिव दान्तिनाम् ॥ क्वचित्कोटरसंघुष्टघूकनादविनोदिनीम् ॥ १२ ॥ मृगारिपदमुद्राभिर्मुद्रितां च क्वचित् क्वचित् ॥ शार्दूलनखनिर्भिन्नरोहिद्रक्तारुणां क्वचित् ॥ १३ ॥

है, खोखलों में बैठे उल्लुओं के शब्द यहाँ पर गूँज रहे थे ॥ १२ ॥ कहीं यहाँ वहाँ पर पशुओं के शत्रु (सिंह) के पैरों का चिह्न देख पड़ता था, यहाँ पर शार्दूल के नखों से विदीर्ण किये हुए रोहित मृग के रक्त से भूमि लाल हो रही थी ॥ १३ ॥ यहाँ पर भारी थनों के भार से आक्रान्त चिकनी-चिकनी भैंस घूमती थीं जो मानो रनवास की भूमि को

सञ्चित करती थीं ॥ १४ ॥ कहीं पर वृक्षों की घनी छाया से-और कहीं जंगली पुष्पों से वन सुगन्धित था, कहीं पर लता गृहों के द्वार पर गूँजते हुए भौंरों का तोरण सा बना था ॥ १५ ॥ कहीं-कहीं बड़े-बड़े सर्पों की केंचुली बड़ी-बड़ी बिलों से आधी निकली थीं, कहीं-कहीं बड़े-बड़े अजगर कहीं उनकी केंचुली पड़ी देख पड़ती थी ॥ १६ ॥ कहीं तो

पीवरस्तनभारार्त्तसुस्निग्धमहिषीगणैः ॥ अवसथाजिरक्षोणीं सूचयन्तीमिव क्वचित् ॥ १४ ॥
क्वचिद्वृक्षघनच्छायां वन्यपुष्पसुगन्धिनीम् ॥ क्वचिल्लतागृहद्वारं भृङ्गघोरणितोरणाम् ॥ १५ ॥
अर्धनिःसृतनिर्मोकनागभीममहाद्विलाम् ॥ क्वचिच्चाजगरैर्भीमां क्वचिन्निर्मुक्तसर्पिणीम् ॥ १६ ॥
क्वचिद्दावानलज्वालां शिलाज्योतिः सुशोभिताम् ॥ ज्वलन्निकुञ्जनिर्गच्छद्वृकव्याघ्रत्रसद्भयाम्
॥ १७ ॥ विमुचन्ति शुनां यूथं शशकेषु क्वचित् क्वचित् ॥ पल्वलेषु च विश्रान्तः पुनर्याति वना-
न्तरम् ॥ १८ ॥ एवं खेलति राजेन्द्रे व्याधवर्गे च वल्गति ॥ ततो भेरीमृदङ्गानां नादप्रतिनदेन

दावानल की ज्वाला देख पड़ती थी, कहीं इसकी सुन्दर ज्योति शिला पर देख पड़ती थीं, कहीं पर भेड़िया और व्याघ्र के भय से उत्पन्न कलरव सुन पड़ता था ॥ १७ ॥ कहीं-कहीं पर कुत्तों का झुण्ड खरहों पर छोड़ा जाता था, छोटे छोटे सरोवरों पर विश्राम करके फिर दूसरे वन को जाते थे ॥ १८ ॥ इस प्रकार व्याघ्रों के समुदाय के शब्द करने तथा

राजा के शिकार खेलने और खँजड़ी और मृदङ्ग के बजने से ॥ १६ ॥ कोलाहल से घबड़ाया हुआ एक मृग जंगल से निकला, जो पृथ्वी तल पर बड़े वेग से जा रहा था ॥ २० ॥ वह मृग तेज चौकड़ी भरने से कभी तो आकाश में और कभी पृथ्वी पर देख पड़ता था, मृग का पीछा करने वाले धनुर्धारियों का वह निशाना बन गया ॥ २१ ॥ कभी तो वह देख पड़ता था और कभी गायब हो जाता था, ठंढे काँटेदार घने वृक्षों के भयंकर जंगल में ॥ २२ ॥ वह घुसा

च ॥१६॥ तत्र कोलाहलत्रस्तः सारङ्गो निःसृतो वनात् ॥ स्फालवेगक्रमाक्रान्तदुर्गमार्गमहीतलः ॥ २० ॥ कदाचिद्गगनारूढः कदाचिद्भूमिगो मृगः ॥ नराणां लक्ष्यतां याति धन्विनां मृगगामिनाम् ॥ २१ ॥ क्वचिद्दृष्टिपथं याति दर्शनागोचरः क्वचित् ॥ वक्रश्रोतोतिगम्भीरं कण्टकीद्रुमसंकुलम् ॥ २२ ॥ प्रविष्टो विषमारण्यं राजाऽसौ तत्पदानुगः ॥ दूराद्दूरतरं गत्वा देशाद्देशं च निर्जनम् ॥२३॥ मृगादर्शनसंरम्भात्संशुष्कगलकन्धरः ॥ म्लानतालुमुखः स्विन्नः श्रान्तपत्तिस्खलदध्वनिः ॥२४॥ अतीतदीर्घमार्गोऽसौ तृषार्तो मध्यगे रवौ ॥ ददर्शाग्रेतु कासारं

और राजा ने भी उसका पीछा किया, दूर-दूर भागता हुआ वह निर्जन प्रदेश में पहुँचा ॥ २३ ॥ मृग को न देखने की घबड़ाहट से तथा प्यास से राजा का कण्ठ सूख गया, तालू चटकने लगे, मुँह फीका पड़ गया, प्यादे थक गये और घोड़े रुक गये ॥ २४ ॥ अधिक मार्ग चलने के कारण मध्याह्न के समय राजा प्यास के मारे व्याकुल हो गया, जल के

लिये अति उत्सुक होने पर उसने सामने समुद्र के समान एक बड़ा सरोवर देखा ॥ २५ ॥ जिसके किनारों पर घने वृत्त थे, जिसका जल स्वच्छ था और जिसमें सुन्दर घाट बने थे, इसमें बड़े-बड़े कमल खिले थे जिनको मधु के लिये भौंरे घेरे थे ॥ २६ ॥ कमलिनी के पत्तों से व्याप्त ये कमल मरकतमणि (नीलम) के समान देख पड़ते थे। इसके जल में मछलियाँ स्वच्छन्द उछलती थीं और इसका जल साधुओं के चित्त के समान स्वच्छ था ॥ २७ ॥ लहरियों से इसका

स्पर्धयन्तमपां निधिम् ॥२५॥ घनपादपतीरं तं सुतीर्थसलिलं शुभम् ॥ विशालं विकचाम्भोजमधुमत्तमधुव्रतम् ॥ २६ ॥ पद्मिनीपत्रपालाशछन्नं मरकतैरिव ॥ स्वच्छन्दमुच्छलन्मत्स्यं स्वच्छं साधुमनो यथा ॥२७॥ चलज्जलचरोद्भिन्नवीचिराजिविराजितम् ॥ अन्तर्ग्राहगणाकीर्णं खलानामिव मानसम् ॥२८॥ क्वचिच्छैवालदुर्गम्यं कृपणस्येव मन्दिरम् ॥ नानाविहङ्गसर्वार्तिं शमयन्तं दिवानिशम् ॥ २९ ॥ दातारमिव सर्वस्वैरापन्नार्तिविनाशनम् ॥ तर्पयन्तं हिमाम्भोभिः

जल सुशोभित था और इसमें नाना प्रकार के जलचर चलते फिरते थे, इसके भीतर खलों के चित्त के समान क्रूर मगर घड़ियाल भरे थे। ॥ २८ ॥ कहीं-कहीं पर कृपण के घर के सदृश दुर्गम्य (कठिनता से प्रवेश करने योग्य) सेवार भी इसमें थी, दिन रात इसका जल नाना प्रकार के पक्षियों के ताप की शान्ति करता था ॥ २९ ॥ आपत्ति में पड़े लोगों के दुःख हटाने वाला मानो सर्वस्व दे देने वाले दाता हो, अपने सोनहले जल से हिंसक पशुओं को भी पितरों

के समान सन्तुष्ट करने वाला ॥ ३० ॥ सबके सन्ताप को हरण करने वाला जैसे चन्द्रमा चातक का करता है, इस सरोवर को देख कर राजा की थकावट वैसी ही दूर हुई जिस प्रकार मेघ को देख कर पपीहे की होती है ॥ ३१ ॥ वहाँ पर राजा ने जल पी कर मध्याह्न का सन्ध्योपासन किया और माँस रहित भोजन करके वहाँ पर अपने अनुचरों के साथ ॥३२॥ उस सरोवर के किनारे पर मनोहर कथाओं को कहता हुआ राजा ठहरा, और रात में भी धनुपपर बाण

श्वापदान् स्वपितॄनिव ॥३०॥ हरन्तं सवसन्तातं हिमांशुमिव चातकत् ॥ तंदृष्ट्वाभूद्गतग्लानि-श्चातको जलद यथा ॥३१॥ तत्र पातजलो राजा कृतमाध्याह्निकक्रियः ॥ भुक्त्वाऽखेटकसम्पन्नं सहायैः सहितो नृपः ॥ ३२ ॥ उवास सरसीतीरे रम्याश्च कथयन् कथाः ॥ ततः शरासने बाणं दत्त्वा रात्रौ स्थितस्तरौ ॥३३॥ व्याधाः सन्धानमास्थाय रुरुधुः ककुभां पथः ॥ एवं स्थितेषु वीरेषु वने विस्तार्य वागुराः ॥ ३४॥ निशान्ते निर्गतो यूथः शूकराणां तटे तटे ॥ चरित्वा सरसीकन्दान् पपात व्याधसंकुले ॥ ३५ ॥ राज्ञा विद्धास्तथा क्रोडा व्याधैश्च बहवो हताः ॥

चढ़ाकर वृक्ष के नीचे रह गया ॥ ३३ ॥ व्याध लोग भी मार्ग रोक कर सब दिशाओं में स्थापित हो गये, इस प्रकार से वीरों ने वन में जाल फैला दी ॥ ३४ ॥ तब रात्रि के अन्त में प्रत्येक किनारे से शूकरों का झुण्ड निकला, कमल के कन्द खाकर वह झुण्ड व्याधों के समुदाय के पास आया ॥ ३५ ॥ इस झुण्ड के अनेक शूकर राजा से तथा अनेक

नमस्कार करके हाथ जोड़ कर उनके सामने खड़ा हो गया, तब उस तपस्वी ब्राह्मण ने आभूषणों से यह राजा है ऐसा जान कर ॥ ४२ ॥ परोपकार की इच्छा से इसको कल्याण के वचन कहे ॥ वैखानसजी ने तब कहा—हे राजन्! इस पुण्यतम शुभ काल में तुम क्यों जाते हो ॥ ४३ ॥ माघ मास में प्रातःकाल इस सरोवर को छोड़कर क्यों जाते हो

राजा करबद्धाञ्जलिः स्थितः ॥ अथ राज्ञामलङ्कारैर्द्विजो निश्चित्य भूपतिम् ॥ ४२ ॥
उवाच श्रेयसे हेतोः परोपकृतिवाञ्छया ॥ वैखानस उवाच ॥ किमर्थं गम्यते राजन् काले
पुण्यतमे शुभे ॥ ४३ ॥ माघे मास विहायैव प्रातःस्नानं सरोवरे ॥ प्रत्युवाच ततो
राजा नाहं जाने द्विजोत्तम ॥ ४४ ॥ माघस्नानफलं कीदृक् तन्मे कथय विस्तरात् ॥

इति श्रीपद्मपुराणे माघमाहात्म्ये दिलीपमृगयागमनो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

ऐसा सुन राजा ने कहा—हे द्विजोत्तम! मैं तो नहीं जानता ॥ ४४ ॥ माघ स्नान का क्या फल है सो मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये ॥

श्री पद्मपुराण के माघ माहात्म्य में "दिलीप का मृगया गमन" नाम का पहिला अध्याय समाप्त हुआ ॥ १ ॥



ब्याधाओं से मारे गये, क्षण भर में शूकर मारे जाकर पृथ्वी तल पर गिर पड़े ॥ ३६ ॥ इनको मरा देख कर ब्याधों ने घमण्ड के मारे बडा शोर किया, और बडी प्रसन्नता से दौड़ कर वे उसी स्थान पर एकत्रित हुए जहाँ राजा थे ॥३७॥ इन योधाओं को लेकर राजा फिर उस सरोवर के किनारे से चला और अपने नगर को जाने की इच्छा करने वाले उस राजा ने मार्ग में एक तपस्वी को देखा ॥ ३८ ॥ यह ब्राह्मण बूढ़े हारीत वैखानस मत के थे कठिन और उग्र नियमों

क्षणेनैव वराहास्ते विद्धाः पेतुर्महीतले ॥ ३६ ॥ तान् दृष्ट्वा तुमुलं नादं चक्रुर्व्याधाः सुदर्पिताः ॥ धावन्तः प्रमुदा युक्ता मिलिता यत्र भूपतिः ॥३७॥ तानादाय भटैर्भूयो निःसृतः सरसीतटात् ॥ स्वपुरं गन्तुकामोऽसौ दृष्ट्वा तं पथि तापसम् ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणं वृद्धहारीतं वैखानसमते स्थितम् ॥ नियमैर्दुष्करैरुग्रैः परिक्षीणकलेवरम् ॥३९॥ तपसा कृशदेहं तं विस्फुटत् कर्कशत्वचम् ॥ दधानं हारिणं चर्म वसानं मृदु वल्कलम् ॥ ४० ॥ कुर्वाणं नियमं जाप्यं नखलोमजटाधरम् ॥ तं वनाश्रमिणं दृष्ट्वा मार्गं दत्त्वा ससम्भ्रमम् ॥ ४१ ॥ प्रणम्य शिरसा

से उनका शरीर अति दुर्वल हो गया था ॥ ३९ ॥ तपस्या से इनका दुर्वल शरीर फट गया था और सूख गया था, यह हरिन का चर्म तथा मोलायम वल्कल पहिरे थे ॥ ४० ॥ नख, रोम तथा जटा धारण किये हुए यह नियम का पालन करते और जप करते थे, उस वनाश्रमी को देख कर मार्ग दे कर आश्चर्य युक्त होकर ॥ ४१ ॥ राजा उनको



व्यासजी ने कहा—राजा का ऐसा वचन सुनकर वैखानस मुनि कहने लगे—अन्धकार को नाश करने वाला भगवान् सूर्य नारायण का शीघ्र ही उदय होना चाहता है ॥ १ ॥ हे राजन्! यह हम लोगों के स्नान का समय है कथा का अवसर नहीं है, स्नान करके तुम जाओ और अपने कुलगुरु वसिष्ठजी से पूछो ॥ २ ॥ ऐसा कह कर मौनी

व्यास उवाच ॥ इति भूपवचः श्रुत्वा प्राह वैखानसो मुनिः ॥ भगवान् द्युमणिः शीघ्रमभ्युदेति मनोहरम् ॥ १ ॥ स्नानकालोऽयमस्माकं न कथावसरो नृप ॥ स्नात्वा गच्छ वसिष्ठं त्वमापृच्छस्व कुलप्रभुम् ॥ २ ॥ इत्युक्त्वा तापसो मौनी प्रातःस्नानाय निर्गतः ॥ प्रत्यावृत्य दिलीपोऽपि तत्र स्नात्वा यथाविधि ॥ ३ ॥ पुनः स्वनगरं वीरो गतोऽसौ हर्षपूरितः ॥ पूजितो नागरैः सर्वैः स्तुतोऽसौ बन्दिभिस्तदा ॥ अन्तःपुरे निवेद्याथ वानप्रस्थकथां नृपः ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ भगवन् स नृपो गत्वा कं चकार ततो विधिम् ॥ धर्मिष्ठेन वसिष्ठेन किमुक्तं च

तपस्वी स्नान करने के लिये चला गया, दिलीप भी विधि पूर्वक वहाँ स्नान करके लौटा ॥ ३ ॥ वह वीर प्रसन्न चित्त होकर अपने नगर को गया, वहाँ पर सब नगरवासियों ने उसकी पूजा किया और बन्दियों ने सर्वदा स्तुति किया, राजा ने अन्तःपुर में (रनवास में) वानप्रस्थ ऋषि की कथा सुनाई ॥ ४ ॥ सूतजी ने पूछा—हे भगवान्! उस राजा

ने जाकर कौन सो विधि किया, उनके सामने धर्मात्मा वशिष्ठजी ने क्या कहा ॥ ५ ॥ व्यासजी ने कहा—राजा रात्रि में सुखपूर्वक सोया, प्रातःकाल उठकर अपने गुरु के पास गया, सफेद घोडों के रथ पर वैठकर सफेद छत्र और चँवर से शोभायमान, अलंकार से युक्त, सुन्दर वस्त्र पहिरे सुगन्धित पुष्प तथा मन्त्रियों के साथ ॥६॥ मगध के बन्दियों से जय शब्द

तदग्रतः ॥ ५ ॥ व्यास उवाच ॥ उषित्वा तत्र राजा व रात्रिमेकां सुखेन च ॥ प्रभाते पुन-
रुत्थाय जगाम स्वगुरुं प्रति ॥ श्वेताश्वरथमारुह्य सुश्वेतच्छत्रचामरः ॥ सालङ्कारः सुवासाश्च
सुपुष्पो मन्त्रिभिः सह ॥ ६ ॥ जयशब्दान् पुनः शृण्वन् स्तुतो मागधवन्दिभिः ॥ वसिष्ठस्याश्रमं
यातो ऋषिवाक्यमनुस्मरन् ॥ ७ ॥ नत्वा ब्रह्मऋषिं तत्र विनयाचारपूर्वकम् ॥ दत्तासनो
गृहीतार्घ्य आशीर्भिः कृतमङ्गलः ॥ ८ ॥ सानन्दं मुनिना पृष्टः कुशलं भूपतिर्यदा ॥ तदो-
मित्यब्रवीद्राजा हर्षयन् मुनिमानसम् ॥ ९ ॥ सोऽथ वैखानसेनोक्तं पप्रच्छ मधुराकृतिः ॥

तथा स्तुति सुनता हुआ ऋषि के वाक्य को स्मरण करता हुआ वसिष्ठ ऋषि के आश्रम में पहुँचा ॥ ७ ॥ वहाँ ब्रह्मर्षि को विनय तथा आचार पूर्वक नमस्कार करके अर्घ्य, आशीर्वाद प्राप्त करके आनन्द पूर्वक आसन पर बैठा ॥ ८ ॥ जब ऋषि ने आनन्द पूर्वक राजा से उसका कुशल पूछा तब राजा ने हर्ष पूर्वक ॐ कहा (अर्थात् सब कुशल है) ॥ ९ ॥ तब मधुर

आकृति से राजा ने वैखानस के कहे हुए प्रश्न को पूछा और कहा—हे भगवन् ! आपकी कृपा से मैंने विस्तार पूर्वक ॥१०॥ आचार, दण्ड, नीति, राजधर्म, तथा चारों वर्णों के चारों आश्रमों की क्रियाओं को सुना है ॥ ११ ॥ दान, इनके विधान, यज्ञ, इनकी विधियाँ, व्रत, इनकी प्रतिष्ठा, तथा विष्णु भगवान् की आराधना की विधि भी सुना है ॥ १२ ॥

भगवन् त्वत्प्रसादेन श्रुता विस्तरतो मया ॥ १० ॥ आचारो दण्डनीतिश्च राजधर्माश्च ये परे ॥ चतुर्णामपि वर्णानां आश्रमाणां च याः क्रियाः ॥ ११ ॥ दानानि तद्विधानानि यज्ञास्तद्विधयस्तथा ॥ व्रतानि तत्प्रतिष्ठाश्च विष्णोराराधनं तथा ॥ १२ ॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि माघस्नानस्य यत्फलम् ॥ विधेयं तद्विधानेन तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥ १३ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ सम्यगुक्तं परंश्रेयो लोकद्वयहितावहम् ॥ निर्मलीकरणं तेन मुनीनां वनवासिनाम् ॥ १४ ॥ ऋतुभुक्कामिनीनां ये प्रत्यासन्नमखण्डिताम् ॥ कामयन्ते मृगार्के ते स्रोतसि स्नातु-

अब मैं आपसे माघ स्नान के फल को सुनना चाहता हूँ। हे तपोधन ! विधान पूर्वक इसकी रीति मुझसे कहिये ॥ १३ ॥ वशिष्ठजी ने कहा—आपने दोनों लोक के हित करने वाले, मुनी तथा बनवासियों के भी अन्तःकरण को निमल करनेवाले इस (माघस्नान) के विषय में अच्छा पूछा ॥ १४ ॥ स्त्रियों के ऋतुभोग से जो अखण्डित हैं सर्वदा सूर्य के मृगराशि में

जाने पर अर्थात् माघ महीने में नदी में स्नान करने -। इच्छ ॰८ ६

पूर्ति के माघ महीने में प्रातःकाल घर के बाहर स्नान करके स्वर्ग प्राप्त करना चाहते हैं ॥ १६ ॥ हे राजन्! मनुष्य लोग गाय, भूमि, तिल, वस्त्र, सुवर्ण, धेनु, अन्न, घोड़ा इत्यादि का दान करके भी माघ में स्नान करके स्वर्ग प्राप्त करने की इच्छा करते हैं ॥ १७ ॥ त्रिरात्र कठिन चन्द्रव्रत, तथा पराकव्रत द्वारा जो अपने शरीर को बिना कृश किये स्वर्ग

मेव च ॥ १५ ॥ विना वह्निं विना यज्ञमिष्टापूर्तं विनापि ये ॥ वाञ्छन्ति स्वर्गतिं स्नातुं प्रातर्माघे बहिर्जले ॥ १६ ॥ गोभूमितिलवासांसि स्वर्णधेन्वन्नवाजिनः ॥ अदत्त्वेच्छन्ति नाकं ते माघे स्नातुं नरा नृप ॥ १७ ॥ त्रिरात्रेन्दुव्रतैः कृच्छ्रैः पराकैश्च निजां तनुम् ॥ अशोष्येच्छन्ति ये स्वर्गं तपसि स्नान्तु ते सदा ॥१८॥ नीराजदानं वैशाखे जपः पूजा च कार्तिके ॥ तपो होमस्तथा दानं त्रयं माघे विशिष्यते ॥ १९ ॥ सानुबन्धः परीवारो धराधीशो भवेद्ध्रुवम् ॥ कैवल्योत्पादका बुद्धिस्तस्य नूनं भवेत्पुनः ॥ २० ॥ यदग्नौ वरिवस्या च विहिता

प्राप्त करना चाहते हैं वे सर्वदा माघ स्नान से ही प्राप्त करते हैं ॥१८॥ वैशाख में नीराज दान, कार्तिक में जप और पूजा श्रेष्ठ है परन्तु माघ महीने में तप, होम तथा दान तीनों ही विशिष्ट होते हैं ॥ १९ ॥ ऐसा करने से मनुष्य अवश्य परिवार वाला तथा राजा होता है, उसको मुक्ति उत्पादन करने की बुद्धि अवश्य होती है ॥ २० ॥ हे नृपश्रेष्ठ! दिव्य

आकृति से राजा ने वैखानस के कहे हुए प्रश्न को पूछा और कहा—हे भगवन् ! आपकी कृपा से मैंने विस्तार पूर्वक ॥१०॥ आचार, दण्ड, नीति, राजधर्म, तथा चारों वर्णों के चारों आश्रमों की क्रियाओं को सुना है ॥ ११ ॥ दान, इनके विधान, यज्ञ, इनकी विधियाँ, व्रत, इनकी प्रतिष्ठा, तथा विष्णु भगवान् की आराधना की विधि भी सुना है ॥ १२ ॥

भगवन् त्वत्प्रसादेन श्रुता विस्तरतो मया ॥ १० ॥ आचारो दण्डनीतिश्च राजधर्माश्च ये परे ॥ चतुर्णामपि वर्णानां आश्रमाणां च याः क्रियाः ॥ ११ ॥ दानानि तद्विधानानि यज्ञास्तद्विधयस्तथा ॥ व्रतानि तत्प्रतिष्ठाश्च विष्णोराराधनं तथा ॥ १२ ॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि माघस्नानस्य यत्फलम् ॥ विधेयं तद्विधानेन तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥ १३ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ सम्यगुक्तं परंश्रेयो लोकद्वयहितावहम् ॥ निर्मलीकरणं तेन मुनीनां वनवासिनाम् ॥ १४ ॥ ऋतुभुक्कामिनीनां ये प्रत्यासन्नमखण्डिताम् ॥ कामयन्ते मृगार्के ते स्रोतसि स्नातु-

अब मैं आपसे माघ स्नान के फल को सुनना चाहता हूँ । हे तपोधन ! विधान पूर्वक इसकी रीति मुझसे कहिये ॥ १३ ॥ वशिष्ठजी ने कहा—आपने दोनों लोक के हित करने वाले, मुनी तथा वनवासियों के भी अन्तःकरण को निमल करनेवाले इस (माघस्नान) के विषय में अच्छा पूछा ॥ १४ ॥ स्त्रियों के ऋतुभोग से जो अखण्डित हैं सर्वदा सूर्य के मृगराशि में

जाने पर अर्थात् माघ महीने में नदी में स्नान करने की इच्छा करते हैं ॥ १५ ॥ विना अग्नि, विना यज्ञ, विना इष्टि पूर्ति के माघ महीने में प्रातःकाल घर के बाहर स्नान करके स्वर्ग प्राप्त करना चाहते हैं ॥ १६ ॥ हे राजन्! मनुष्य लोग गाय, भूमि, तिल, वस्त्र, सुवर्ण, धेनु, अन्न, घोड़ा इत्यादि का दान करके भी माघ में स्नान करके स्वर्ग प्राप्त करने की इच्छा करते हैं ॥ १७ ॥ त्रिरात्र कठिन चन्द्रव्रत, तथा पराकव्रत द्वारा जो अपने शरीर को विना कृश किये स्वर्ग

मेव च ॥ १५ ॥ विना वह्निं विना यज्ञमिष्टापूर्तं विनापि ये ॥ वाञ्छन्ति स्वर्गतिं स्नातुं प्रातर्माघे बहिर्जले ॥ १६ ॥ गोभूमितिलवासांसि स्वर्णधेन्वन्नवाजिनः ॥ अदत्त्वेच्छन्ति नाकं ते माघे स्नातुं नरा नृप ॥ १७ ॥ त्रिरात्रेन्दुव्रतैः कृच्छ्रैः पराकैश्च निजां तनुम् ॥ आशोष्येच्छन्ति ये स्वर्गं तपसि स्नान्तु ते सदा ॥१८॥ नीराजदानं वैशाखे जपः पूजा च कार्तिके ॥ तपो होमस्तथा दानं त्रयं माघे विशिष्यते ॥ १९ ॥ सानुबन्धः परीवारो धराधीशो भवेद्ध्रुवम् ॥ कैवल्योत्पादका बुद्धिस्तस्य नूनं भवेत्पुनः ॥ २० ॥ यदग्नौ वरिवस्या च विहिता

प्राप्त करना चाहते हैं वे सर्वदा माघ स्नान से ही प्राप्त करते हैं ॥१८॥ वैशाख में नीराज दान, कार्तिक में जप और पूजा श्रेष्ठ है परन्तु माघ महीने में तप, होम तथा दान तीनों ही विशिष्ट होते हैं ॥ १९ ॥ ऐसा करने से मनुष्य अवश्य परिवार वाला तथा राजा होता है, उसको मुक्ति उत्पादन करने की बुद्धि अवश्य होती है ॥ २० ॥ हे नृपश्रेष्ठ! दिव्य

दृष्टि वालों ने कहा कि माघ मास में यज्ञ, तप तथा दान से अपूर्व फल होता है ॥ २१ ॥ सकाम अथवा प्रजा के लिये, हरिभगवान् के लिये अथवा विना इस निमित्त जो स्नान करता है शारीरिक शुद्धि, प्रीति, ऐश्वर्य तथा चारो प्रकार का फल प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ अदिति ने बारह वर्ष तक मकर संक्रान्ति में माघ महीने में बिना अन्न खाये स्नान किया इससे इनको तीनों लोक को दीपन करने वाले बारह पुत्र हुए ॥ २३ ॥ माघ में स्नान करने से ही रोहिणी

दिव्यलोचनैः ॥ तदग्र्यं च तपो दानं माघे मासि नरोत्तम ॥ २१ ॥ सकामो वा प्रजार्थे वा हरये तद्विनापि च ॥ कायशुद्धिः प्रीतिभूत्यौ चतुर्धा स्नानजं फलम् ॥ २२ ॥ निरन्ना ह्यदितिः सस्नौ माघान् द्वादश माकरे ॥ सत्पुत्रान् द्वादशादित्यान् लेभे त्रैलोक्यदीपकान् ॥ २३ ॥ सुभगा रोहिणी माघाद्दानशीला ह्यरुन्धती ॥ शचीव रूपसम्पन्ना प्रासादे सप्तभूमिके ॥ २४ ॥ तुमुलीकृतशोभाढ्यो सलिलक्षालिताजिरे ॥ द्विपकर्णमरुच्छन्ने रूपवान् स्त्रीजनाकुले ॥ २५ ॥ गीतवादित्रनिर्घोषमङ्गलाचारशोभिते ॥ वेदध्वनिपवित्रे च विद्वद्विप्रै-

सुभगा और अरुन्धती दानशीला हुईं, और इन्द्राणी के सदृश सुन्दरी होकर सतमहले गृह में वास करती थी ॥ २४ ॥ जो अतिशोभा युक्त था जिसका आँगन जल से धुला रहता था जो हाथियों के कान से पंखा किया जाता था और जिसमें रूपवती स्त्रियों का समुदाय रहता था ॥ २५ ॥ जो गीत, बाजा, मंगलाचार इत्यादि से शोभायमान था, वेद

की ध्वनि से पवित्र तथा विद्वान् ब्राह्मणों से सुशोभित था ॥ २६ ॥ जो मकर संक्रान्ति में स्नान करते हैं वे देवताओं की पूजा में तत्पर रहते हैं और वे प्रसन्नता पूर्वक ऐसे सुन्दर घर में रहते हैं जो सर्वदा अतिथियों से पूर्ण रहते हैं ॥ २७ ॥ जिन लोगों ने माघ मास में बहुत सा दान किया, भगवान् मुरारि का पूजन किया तथा इष्ट वस्तु का दान तथा नियमों का पालन किया वे धन्य हैं ॥ २८ ॥ माघ महीना सर्वदा धर्म का मूल होता है, कार्तिक महीना अर्थ का मूल है, तथा

रलंकृते ॥ २६ ॥ सुरार्चनरते रम्ये सदाऽतिथिनिषेविते ॥ मुदितास्ते वसन्तीह यैः स्नातं माकरे रवौ ॥ २७ ॥ यैर्दत्तं बहुधा माघे मुरारिः पूजितस्तु यैः ॥ इष्टवस्तुपरित्यागान्नियमस्य च पालनात् ॥ २८ ॥ धर्ममूलः सदा माघो अर्थमूलश्च कार्तिकः ॥ काममूलफलद्वारा निष्कामो मोक्षदः सदा ॥ २९ ॥ ये लोका दानशीलानां ये लोकाश्च वनौकसाम् ॥ ये लोकाऽतिथिभक्तानां ते माघस्नायिनां सदा ॥ ३० ॥ दिवलोकान्निवर्तन्ते पुण्यैरन्यैः परं

माघ मास काम-मूल के फल द्वारा निष्काम होता है तथा सर्वदा मोक्ष को देने वाला होता है ॥ २९ ॥ जो लोक दान करने वालों को, जो लोक वन में तपस्या करने वालों को तथा जो लोक अतिथि भक्तों को प्राप्त होते हैं वे लोक सर्वदा माघ स्नान करने वालों को प्राप्त होते हैं ॥ ३० ॥ पुण्य समाप्त होने पर मनुष्य स्वर्ग से वापस आते हैं परन्तु जो लोग

सर्वदा माघ स्नान करते हैं वे स्वर्ग से नहीं लौटते ॥ ३१ ॥ इससे बढ़कर कोई नियम पवित्र और पाप नाश करने वाला नहीं है और न इससे बढ़कर कोई तप है ॥ ३२ ॥ इससे बढ़कर आरोग्य देने वाला और पाप नाश करनेवाला कोई व्रत नहीं है; भृगुजी ने मणि पवत पर विद्याधरों से यह सुनाया था ॥ ३३ ॥ राजा ने पूछा- हे ब्रह्मन् ! भृगुजी

नराः कदाचिन्न निवर्तन्ते माघस्नानं रता दिवः ॥ ३१ ॥ नातः परतरं किञ्चित् पवित्रं पापनाशनम् ॥ नातः परतरं किञ्चित नातः परतरं तपः ॥ ३२ ॥ एतदेव परं पथ्यं सद्यो दुरितनाशनम् ॥ विद्याधराय संगीतं भृगुणा मणिपर्वते ॥ ३३ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मन् कदा भृगुर्विप्रो निजगाद महीधरे ॥ तस्मै धर्मोपदेशं तत् कथ्यतां मे कुतूहलात् ॥ ३४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ द्वादशाब्दं पुरा राजन् न ववर्ष बलाहकः ॥ तेनोद्विग्नाः प्रजाः क्षीणा गताः सर्वा दिशोदश ॥ ३५ ॥ लिखीभूते तदा मध्ये हिमवद्विन्ध्ययोर्नृप ॥ स्वाहास्वधावषट्कारवेदा-

ने पर्वत पर कब उनको यह धर्मोपदेश किया था, मुझको बड़ा कौतूहल है अतएव मुझसे कहिए ॥ ३४ ॥ ऋषि ने कहा-हे राजन् ! एक बार बारह वर्ष तक वर्षा नहीं हुई इससे सब प्रजा क्षीण होकर दशो दिशाओं में उद्विग्नता से चली गई ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! हिमालय तथा विन्ध्य पर्वत के मध्यवर्ती प्रदेश के निर्जन होने से होम, श्राद्ध, यज्ञ और

वेदाध्ययन छूट गये ॥३६॥ लोक आपद्ग्रस्त तथा प्रजाहीन और लुप्त धर्म हो गया। और पृथ्वीमण्डल फल मूल अन्न और जल से शून्य हो गया ॥ ३७ ॥ तब विन्ध्याचल के नीचे सुन्दर रेवा नदी पर के वृक्षों से आच्छादित आश्रम से निकल कर भृगु ऋषि अपने शिष्यों के साथ हिमालय पर्वत पर गये ॥ ३८ ॥ वहां पर कैलास पर्वत के पश्चिम की ओर मणिकूट नाम का सुवर्ण का ऊँचा पर्वत था ॥ ३६ ॥ इस पर्वत के नीचे का आधा भाग स्फटिक (बिल्लौर)

ध्ययवर्जिते ॥ ३६ ॥ सोपप्लवे तदा लोके लुप्तधर्मे च निष्प्रजे ॥ फलमूलान्नपानीयशून्ये वै भूमिमण्डले ॥ ३६ ॥ विन्ध्यपादतरुच्छन्नरम्यरेवातटाश्रमात् ॥ सह शिष्यैश्च निर्गत्य हिमाद्रिं स गतो भृगुः ॥ ३८ ॥ तत्र तिष्ठति कैलासगिरेः पश्चिमतो गिरिः ॥ मणिकूट इति ख्यातो हेमरत्नशिलोच्चयः ॥ ३६ ॥ अधोऽर्द्धं स्फटिकैः श्वेतो मध्ये नीलशिलो गिरिः भूतिभिः सर्व शुभ्रो नीलकण्ठ इवाबभौ ॥ ४० ॥ सर्वत्रासौ नीलशिला हेमरेखान्तरा ॥ न्तरः ॥ स्फुरद्विद्युल्लतः कृष्णो जीमूत इव राजते ॥ ४१ ॥ मूर्न्धि नीलशिलः शैल अधः

से श्वेत था तथा मध्य भाग नीले रंग के शिलाओं से युक्त था, यह पर्वत सुन्दरता में नीलकण्ठ पक्षी के समान था ॥ ४० ॥ इस पर्वत में सर्वत्र बीच-बीच में नीली और सोनहरी रेखायें थी, इसकी शोभा काले मेघों में चमकती हुई बिजली के समान थी ॥ ४१ ॥ इस पर्वत का शिखर नीला तथा नीचे का कमर का भाग सोनहला होने के कारण

काञ्चनमेखलः ॥ नारायण इवाभाति परिपीताम्बरावृतः ॥ ४२ ॥ आमेखलं सुनीलाम्भो मध्ये मध्ये सितोपलः ॥ स तारकामिव व्योम शुशुभे स महीधरः ॥ ४३ ॥ लब्ध्वात्मनस्तनुं शुभ्रां दीप्तदिव्यौषधीधरः ॥ बहुदीपकृतोद्योत इवागो निशि भासितः ॥ ४४ ॥ अधित्यकासु संगीतैः किन्नरीणां सकीचकः ॥ रम्भपत्रपताकाभिः शोभते स सदाऽचलः ॥ ४५ ॥ हरितो-पलवैडूर्यपुष्परागशिलाश्मनाम् ॥ उद्ररश्मिमरालैः सोऽग इन्द्रचापैरिवावृतः ॥ ४६ ॥ सर्व-

यह पीताम्बर धारण किये हुए भगवान् नारायण के सदृश शोभायमान था ॥ ४२ ॥ मध्य भाग तक नीला होने से तथा बीच-बीच में सफेद स्फटिक रहने से यह पर्वत तारायुक्त आकाश के समान शोभायमान था ॥ ४३ ॥ यह पर्वत अपने स्वच्छ शरीर पर चमकती हुई दिव्य औषधियों को धारण करने से रात में अनेक दीपकों से युक्त बड़े महल सा देख पड़ता था ॥ ४४ ॥ इस पर्वत की ऊपरी भूमि बाँसुरी बजाती हुई तथा सुन्दर गीत गाती हुई किन्नरियों से सुशोभित थी तथा केले के पत्तों की पताका से यह पर्वत सर्वदा सुशोभित था, ॥ ४५ ॥ पन्ना, नीलम, पोखराज तथा पर्वत पर के सफेद पत्थरों से निकलती हुई रंग बिरंगी किरणों से इन्द्र धनुष के समान देख पड़ता था ॥ ४६ ॥ सुवर्ण इत्यादि सब धातुओं से तथा नाना प्रकार के चमकीले रत्नों से युक्त, अग्निज्वाला के सदृश इसके शिखर चारो

और फैले थे ॥ ४७ ॥ इस पर्वत के मध्यभाग की कन्दराओं में आकर कामपीडित विद्याधरी अपने पति के साथ रमण करती हैं ॥ ४८ ॥ वायु को रोकने वाले (प्राणायाम करने वाले) सब क्लेशों को जीते हुए वैरागी लोग इसकी गुहाओं में दिन रात ब्रह्म का मनन करते हैं ॥ ४९ ॥ इसकी सुन्दर गुहाओं में हाथों में रुद्राक्ष की माला लिए हुए आधी

धातुमयैर्हेमनानारत्नप्रभाशिखैः ॥ सोऽग्निज्वालैरिवोच्चैः सशृङ्गैः सर्वत्र वेष्टितः ॥ ४७ ॥
तस्यागत्य नितम्बेषु कन्दरासु शिलासु च ॥ विद्याधर्यः प्रसेवन्ते स्वपतीन् कामविक्लवाः
॥ ४८ ॥ निरुद्धान्तर्गरुन्मार्गाजितक्लेशा विरागिणः ॥ ध्यायन्त्यहर्निशं ब्रह्म रम्यसानुगुहासु
च ॥ ४९ ॥ साक्षसूत्रकराः सिद्धा अर्धोन्मीलितमोचनाः ॥ आराधयन्ति भूतेशं सुन्दरीषु
दरीषु च ॥ ५० ॥ मन्दारकुसुमामोदसुरभीकृतदिङ्मुखः ॥ पतन्निर्झरिणीवारिहुङ्कारमुखरः
सदा ॥ ५१ ॥ उपत्यकासु खेलद्भिर्वनस्थैः कलभैर्गजैः ॥ कस्तूरीमृगयूथैश्च चारुमित्रमृगै-
स्तथा ॥ ५२ ॥ विलसच्चामरैश्चैव विचित्रैः श्वापदैस्तथा ॥ नदत्पारावतैश्चैव चकोरैश्चापि

आँख मूँदे हुए सिद्ध लोग शिवजी की आराधना करते हैं ॥ ५० ॥ सब दिशाएँ मदार के फूलों की सुगन्ध से सुवासित हैं, और गिरते हुए झरनों का जल सर्वदा सुन्दर शब्द करता है ॥ ५१ ॥ जङ्गली हाथी और उनके बच्चे पर्वत के नीचे की भूमि पर खेल रहे हैं तथा कस्तूरी मृग और रंग बिरंगे हरनों का यूथ वहाँ पर क्रीड़ा कर रहे हैं ॥ ५२ ॥ चँवरी

गाय तथा नानो प्रकार के पशु वहाँ आनन्द करते हैं, कबूतर चकोर पपीहा इत्यादि पची वहाँ शब्द कर रहे हैं ॥ ५३ ॥ यह पर्वत सर्वदा राजहंस तथा मयूरों से सुन्दर देख पड़ता है इसी से यह सुवर्ण शिखर का पर्वत हेमकूट कहलाता था ॥ ५४ ॥ यहाँ सर्वदा देवता लोग गुह्यक और अप्सरा लोग निवास करते थे ॥

कोकिलैः ॥ ५३ ॥ राजहंसैर्मयूरैश्च सदा रम्यः स पर्वतः ॥ हेमकुट इति ख्यातो हेमरत्न-शिलामयः ॥ ५४ ॥ सेव्यमानः सदा देवैर्गुह्यकैरप्सरोगणैः ॥

इति श्रीपद्मपुराणे माघौमासमाहात्म्ये दिलीपवसिष्ठसंवादे
मणिशलवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

पद्मपुराण के माघ माहात्म्य में दिलीप और वसिष्ठ के संवाद में 'मणिशैल वर्णन'
नाम का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ २ ॥

राजा ने कहा—हे भगवन् ! सब सिद्धियों का आश्रय अनेक आश्चर्ययुक्त यह पर्वत कितना ऊँचा और कितना लम्बा चौड़ा था ॥ १ ॥ ऋषि ने कहा—यह पर्वत छत्तीस योजन ऊँचा, शिखर पर दस योजन चौड़ा तथा जड़ में सोलह योजन चौड़ा था ॥ २ ॥ हरिचन्दन, आम तथा मदार के वृक्षों से सुशोभित था, देवदारु सरला तथा अर्जुन

राजोवाच ॥ बह्वाश्चर्यमयः शैलः सर्वसिद्धिसमाश्रयः ॥ भगवन् कियदुच्छ्रायः कियदायामविस्तरः ॥ १ ॥ ऋषिरुवाच ॥ षट्त्रिंशद्योजनोच्छ्रायो मस्तके दशयोजनः ॥ आयामविस्तराभ्यां च मूले षोडशयोजनः ॥ २ ॥ हरिचन्दनमन्दारचूतराजिविराजितः ॥ देवदारुद्रुमाकीर्णः सरलार्जुनशोभितः ॥ ३ ॥ कालागुरुलवङ्गैश्च निकुञ्जैश्च लतागृहैः ॥ विराजितो गिरिश्रेष्ठः सदापुष्पः सदाफलः ॥ ४ ॥ तं दृष्ट्वा पर्वतं रम्यं तदा दुर्भिक्षपीडितः ॥ भृगुश्चकार तत्रैव वसतिं हृष्टमानसः ॥ ५ ॥ तस्मिन् मनोहरे शैले वनेषूपवनेषु च ॥

के वृक्षों से परिपूर्ण था ॥ ३ ॥ कालागुरु और लौंग के वृक्षों से तथा लता मण्डप और कुञ्जों से शोभायमान था, यह श्रेष्ठ पर्वत सर्वदा फल फूलों से परिपूर्ण रहता था ॥ ४ ॥ दुर्भिक्ष से पीडित भृगुजी ने जब इस सुन्दर पर्वत को देखा तब प्रसन्न चित्त होकर वहीं ठहर गये ॥ ५ ॥ इस सुन्दर पर्वत की कन्दराओं में और उसके वन और उपवनों

में बहुत दिनों तक तप करते रहे ॥ ६ ॥ हे राजन्! इस प्रकार जब भृगुऋषि अपने आश्रम में रहते थे तो एक दिन उस पर्वत पर से विद्याधर का एक जोड़ा (स्त्री पुरुष) उतर कर आया ॥ ७ ॥ समीप में आकर इन्होंने मुनि को नमस्कार किया और वे बड़े दुखी खड़े थे, इनको इस प्रकार से देखकर भृगुजी सुन्दर वाक्य में बोले ॥ ८ ॥

चिरकालं वसंस्तेपे तपः सुचरितं भृगुः ॥ ६ ॥ एवं तिष्ठति राजेन्द्र द्विजे स्वाश्रमवासिनि ॥ अवतीर्यागतौ शैलात् सुविद्याधरदम्पती ॥ ७ ॥ समागत्य मुनिं नत्वा स्थितौ चातीव दुःखितौ ॥ तथाविधौ च तौ दृष्ट्वा मञ्जुवाक्यं द्विजोऽवदत् ॥ ८ ॥ वद विद्याधर प्रीत्या युवां किमिति दुःखितौ ॥ श्रुत्वा विप्रमुखाद्वाक्यं प्राह विद्याधरो द्विजम् ॥ ६ ॥ श्रूयतां तापसश्रेष्ठ मम दुःखस्य कारणम् ॥ सुकृतस्य फलं प्राप्य प्राप्यापि त्रिदशालयम् ॥ १० ॥ लब्ध्वापि देवतादेहं मुखं व्याघ्रस्य मेऽभवत् ॥ न जाने कर्मणः कस्य विपाकोऽयमुपस्थितः

हे विद्याधर ? प्रीति पूर्वक तुम दोनों कहो कि क्यों तुम दुखी हो, ऋषि के इस वचन को सुनकर विद्याधरों ने कहा ॥ ६ ॥ हे तपस्वियों में श्रेष्ठ ? मेरे दुःख के कारण सुनिये, पुण्य के फल को प्राप्त करके तथा स्वर्ग को भी प्राप्त करके ॥ १० ॥ देवता का शरीर भी पाकर मेरा मुख व्याघ्र के समान हुआ, न जाने किस पाप कर्म से ऐसा

फल मिला है ॥ ११ ॥ वारम्वार इस विषय में विचार करने से मेरे मन में शान्ति नहीं होती, दूसरा भी कारण मेरे चित्त व्याकुल होने का सुनिये ॥ १२ ॥ यह मेरी पत्नी स्वरूपवती, मधुर भाषण करने वाली, कल्याणी, नाचने गाने की कला में चतुर तथा सब लक्षणों से युक्त है ॥ १३ ॥ जिस समय यह कुमारी थी उस समय इस शुद्ध चित्त वाली ने

॥ ११ ॥ इति संस्मृत्य संस्मृत्य न लेभे शर्म मे मनः॥ अन्यच्च श्रूयतां विप्र येन मे व्याकुलं मनः ॥ १२ ॥ जायेयं मम कल्याणी मधुवाणी सुरूपिणी ॥ नृत्यगीतकलाभिज्ञा सवलक्षण-शालिनी ॥ १३ ॥ यस्मिन्काले कुमारीयं तदैवाऽमलयानया ॥ विपञ्ची परिवादिन्या तन्त्रीभिः सप्तभिर्भृशम् ॥ १४ ॥ वीणावादरसज्ञस्तु तोषितो नारदो मुनिः ॥ मुग्धभावेन गायन्त्या त्वनया रक्तकण्ठया ॥१५॥ विचित्रस्वरनादज्ञो राजराजोऽपि तोषितः ॥ अस्याः कौतुकभिन्नाया वादयन्त्या विपञ्चिकाम् ॥ १६ ॥ नानावक्रगतिस्निग्धं श्रुत्वा तं पञ्चमध्वनिम् ॥

सातों सुर वाली वीणा बजा कर ॥ १४ ॥ वीणा वाद के रसज्ञ नारद मुनि को मुग्धभाव से लाल कण्ठ से गाती हुई सन्तुष्ट किया ॥ १५ ॥ तब विचित्र स्वरों के नाद को जानने वाली इसने अपनी वीणा के वजाने और इसके विभिन्न कौतुक से इन्द्र को भी प्रसन्न किया ॥ १६ ॥ अनेक प्रकार की वक्र गति (हाव भाव) से स्निग्ध उसके पंचम स्वर

को सुन कर शिवजी भी अति प्रसन्न और रोमाञ्चित हो गये ॥ १७ ॥ शीलता, उदारता, रूप तथा यौवन में इसके सदृश स्वर्ग में दूसरी कोई नितम्बिनी नहीं है ॥ १८ ॥ कहाँ तो यह चन्द्रमुखी सुन्दरी कहाँ मैं व्याघ्र मुख वाला मनुष्य हे ब्राह्मण ! ऐसाही विचार मेरे हृदय को सर्वदा दहकाता है ॥ १९ ॥ वशिष्ठजी ने कहा—विद्याधर के ऐसे वचन को

तुतोषोद्भिन्नसर्वाङ्गो धुन्वन्मौलिं महेश्वरः ॥१७॥ शीलौदार्यगुणग्रामरूपयौवनसम्पदा ॥ नानया सदृशी लोके कचिदस्ति नितम्बिनी ॥ १८ ॥ क्वेयं चेन्दुमुखी रामा क्वाहं व्याघ्रमुखः पुमान् ॥ इति ब्राह्मण सञ्चिन्त्य दह्यामि हृदि सर्वदा ॥ १९ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ इति विद्याधरेणोक्तं श्रुत्वा चेक्ष्वाकुनन्दन ॥ त्रिकालज्ञो मुनिः प्राह प्रहसन् दिव्यलोचनः ॥ २० ॥ भृगुरुवाच ॥ शृणु विद्याधरश्रेष्ठ विचित्रं कर्मणां फलम् ॥ प्राप्तप्रज्ञा न मुह्यन्ति मुह्यन्त्यज्ञातचेतसः ॥२१॥ मक्षिकापादमात्रं तु यथाहि विषमं विषम् ॥ विक्रिया विहिताऽल्पापि विपाके दारुणा तथा

सुनकर त्रिलोक को जानने वाले दिव्य लोचन मुनि हँस कर इक्ष्वाकुनन्दन से कहने लगे ॥ २० ॥ भृगुजी ने कहा—हे विद्याधरों में श्रेष्ठ ! सुनो, कर्म के फल विचित्र होते हैं, इनको प्राप्त करके ज्ञानवान् भी मोहित हो जाते हैं ॥ २१ ॥ जिस प्रकार मक्खी के पैर के बराबर भी विष विषम ही होता है उसी प्रकार से छोटे भी पाप का फल दुखदायी होता

है ॥ २२ ॥ तुमने माघ महीने की एकादशी को उपवास करके द्वादशी न लगने पर ही शरीर में तेल लगाया था, इसी से तुम व्याघ्रमुख हुए ॥ २३ ॥ सुन्दर एकादशी के दिन उपवास करके द्वादशी को तेल लगाने से प्राचीन समय में पुरूरवा ने कुरूपता प्राप्त किया था ॥ २४ ॥ अपने कुरूपता को देख कर इस दुःख से वह बड़ा दुखी हुआ, वह हिमालय पर्वत पर जाकर देवतासर के किनारे पर गया ।। २५ ॥ परम प्रीतिपूर्वक शुद्धतासे स्नान कर, कुशासन पर बैठकर, नवीन

॥२२॥ उपोष्यैकादशीं माघे तैलाभ्यङ्गः कृतस्त्वया ॥ द्वादश्यां प्राग्भवे देहे तेन व्याघ्रमुखो भवान् ॥ २३ ॥ उपोष्यैकादशीं रम्यां द्वादश्यां तैलसेवनात् ॥ कुरूपं प्राप्तवान्देहं पुरा ह्येवं पुरूरवाः॥२४॥दृष्ट्वात्मनः कुकायं स तेन दुःखेन दुःखितः ॥ गिरिराजं समागम्य देवतासरसस्तटे ॥ २५ ॥ स्थित्वा च परमप्रीत्या शुचिस्नातः कुशासने ॥ नवनीलघनश्यामं नीलिनायतलोचनम् ॥ २६ ॥ शंखचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरावृतम् ॥ कौस्तुभेन विराजन्तं नवमालाधरं हरिम् ॥ २७ ॥ चिन्तयन्हृदये राजा निगृहीत्वा खिलेन्द्रियः ॥ मासमात्रं निराहारस्तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ २८ ॥ अल्पेन तपसा तुष्टः सप्तजन्मकृतार्चनम् ॥ संस्मरंस्तस्य भूपस्य स देवेश-

नील मेघ के समान घनश्याम आयत लोचन ॥ २६ ॥ शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किए पीताम्बर पहिरे कौस्तुभमणि तथा वनमाला धारण किए हुए हरि भगवान को ॥ २७ ॥ हृदय में चिन्तन करते हुए राजा ने सम्पूर्ण इन्द्रियों को वशमें करके तीन महीने तक निराहार रह कर दारुण तपस्या किया ॥ २८ ॥ सात जन्म की तपस्या से सन्तुष्ट होने वाले

भगवान् राजा के थोड़े ही स्मरण से स्वयं प्रसन्न हो गये ॥ २९ ॥ मकर राशि के सूर्य में माघ महीने की शुक्ल पक्ष की एकादशी को भगवान् ने प्रसन्न होकर अपने शंख से राजा का अभिषेक किया ॥ ३० ॥ वासुदेव भगवान् ने उसके तैल लगाने की चेष्टा का स्मरण कराते हुए उसको अति सुन्दर कमनीय मनोहर रूप दिया ॥ ३१ ॥ जिसको देखकर देवनायिका उर्वशी ने उसकी इच्छा की, इस प्रकार से वर प्राप्त करके तथा कृतकृत्य होकर राजा अपने नगर को गये

स्तदा स्वयम्॥२९॥माघस्य शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां मकरे रवौ ॥ शंखाद्भिरभिषिच्याशु मुदा तं चक्रवर्तिनम् ॥३०॥ वासुदेवो ददौ तस्मै स्मारयन् तैलचेष्टितम् ॥ अतीव सुन्दरं रूपं कमनीयं मनोहरम् ॥ ३१ ॥ येन तं चकमे देवी उर्वशी देवनायिका ॥ इत्थं लब्धवरो राजा कृतकृत्यः पुरंगतः ॥ ३२ ॥ इति कर्मगतिं ज्ञात्वा कि विद्याधर खिद्यसे ॥ भवान् परिजिहीर्षुश्चेद्दानवस्य विरूपताम् ॥ ३३ ॥ शीघ्रं मद्वचनादेव प्राचीनाघविनाशगम् ॥ माघमासे कुरु स्नानं मणिकूटनदीजले ॥ ३४ ॥ ऋषिसिद्धसुरैर्जुष्टं कथयिष्याकि तद्विधिम् ॥ तव भाग्यवशान्माघो-

॥ ३२ ॥ हे विद्याधर ! इस प्रकार की कर्म गति को जान कर क्यों दुखी होते हो, यदि तुम दानव की इस कुरूपता को छोड़ने की इच्छा करते हो ॥ ३३ ॥ तो शीघ्रही मेरे वचन से पुराने पापों को नाश करने वाले मणिकूट नदी के जल में माघ मास में स्नान करो ॥ ३४ ॥ जो ऋषि, सिद्ध, देवता इत्यादि से परिपूर्ण है, मैं इसका विधान कहता

हूँ, तुम्हारे भाग्यवश माघ निकट है पाँचवें ही दिन में आवेगा ॥ ३५ ॥ पूस महीने के शुक्ल, पक्ष की एकादशी से आरम्भ करके भूमि पर सोवो, महीना भर निराहार करते हुए त्रिकाल स्नान करो ॥ ३६ ॥ भोगों का त्याग करके और जितेन्द्रिय रह कर त्रिकाल विष्णु भगवान् का पूजन करो, हे विद्याधरों में श्रेष्ठ ! माघ शुक्ल एकादशी तक ॥ ३७ ॥ इस प्रकार से करने पर तुम पापों से रहित हो जाओगे, तब तुमको द्वादशी के पुण्य दिन स्नान करने पर हम शिवजी के

निकटः पञ्चमेऽहनि ॥३५॥ पौषस्यैकादशीं शुक्लामारभ्य स्थण्डिलेशयः ॥ मासमात्रं निराहारस्त्रिकालं स्नानमाचरेत् ॥३६॥ त्रिकालमर्चयेद्विष्णुं त्यक्तभोगो जितेन्द्रियः ॥ माघस्यैकादशीं शुक्लां यावद्विद्याधरोत्तम ॥ ३७ ॥ ततो निर्दग्धपापं त्वां द्वादश्यां पुण्यवासरे ॥ अभिषिच्य शिवस्तोत्रैर्मन्त्रपूतैरहंशुभैः ॥३८॥ कामवक्त्रोपमं वक्त्रं करिष्यामि तवानघ ॥ देवतावदनो भूत्वा त्वं विद्याधरसत्तम ॥ ३९ ॥ अनया वरवर्णिन्या सार्धं क्रीड यथासुखम् ॥ ज्ञातमाघप्रभावस्त्वं माघस्नानं सदा कुरु ॥४०॥ इत्युक्त्वा भृगुणा तस्मै सर्वज्ञेन महात्मना ॥ विद्याधराय राजेन्द्र

स्तोत्र और मन्त्रों से ॥ ३८ ॥ तुम्हारा मुख कामदेव के समान कर देंगे, हे विद्याधरों में श्रेष्ठ । तुम देवता सरीखे मुख होकर ॥ ३९ ॥ इस वरवर्णिनी के साथ सुखपूर्वक क्रीडा करोगे, माघ मास के प्रभाव को जानकर सर्वदा माघ स्नान करो ॥ ४० ॥ इस प्रकार सर्वज्ञ महात्मा भृगुजी ने हे राजेन्द्र ! ऐसा कहकर विद्याधर का फिर एक गाथा सुनाई

॥ ४१ ॥ माघ स्नान से विपत्ति का नाश होता है, माघ स्नान से पापों का क्षय होता है, माघ स्नान सब यज्ञों से अधिक है। और यह सब दान के फल को देता है ॥ ४२ ॥ माघ यज्ञों से गरजता है। अर्थात् अपने को सबसे बढ़ कर पुकार कर कहता है। माघ योगों से (बढ़ कर है ऐसा) गरजता है, हे विद्याधर ! तीव्रता से माघ मास सब तपों से गरजता है ॥ ४३ ॥ पुष्कर, कुरुक्षेत्र, ब्रह्मावर्त, पृथूदक, काशी, प्रयाग तथा गंगासागर संगम में ॥ ४४ ॥ जो

पुनर्गाथा उदाहृता ॥ ४१ ॥ माघस्नानैर्विपन्नाशो माघस्नानैरघक्षयः ॥ सर्वव्रताधिको माघः सर्वदानफलप्रदः ॥४२॥ माघो गर्जति यज्ञेभ्यो माघो योगाच्च गर्जति ॥ तीव्राच्च तपसो माघो भो विद्याधर गर्जति ॥४३॥ पुष्करे च कुरुक्षेत्रे ब्रह्मावर्ते पृथूदके ॥ अविमुक्ते प्रयागे च गंगासागरसंगमे ॥ ४४ ॥ यत्फलं दशभिर्वर्षैः प्राप्यते नियमैर्नरैः ॥ तत्फलं प्राप्यते माघे त्र्यहं स्नानान्न संशयः ॥ ४५ ॥ स्वर्गलोके चिरं रागो येषां मनसि वर्तते ॥ यत्र क्वापि जले तैस्तु स्नातव्यं मृगभास्करे ॥ ४६ ॥ आयुरारोग्यसम्पत्तौ रूपेसुभगतागुणे ॥ येषां मनोरथास्तैस्तु

फल मनुष्यों को दस वरस नियम करने से प्राप्त होता है, वह फल माघ महीने में तीन दिन स्नान करने से मिलता है इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ४५ ॥ जिनके मनमें चिरकाल तक स्वर्ग में रहने की इच्छा हो उनको चाहिये कि वे मृग के सूर्य में कहीं जल में स्नान करें ॥ ४६ ॥ जो आयुष्य, आरोग्य, सम्पत्ति, रूप, कल्याण तथा गुण प्राप्त करने

की अभिलाषा करते हों उनका माघ स्नान कभी त्यागना चाहिये ॥ ४७ ॥ जो मनुष्य पाप तथा दरिद्रता से डरते हैं उनको सर्वदा प्रयत्न से माघ में स्नान करना चाहिये ॥ ४८ ॥ हे राजेन्द्र ! दरिद्रता, पाप, दुर्भाग्यरूपी कीचड़ को धोने के लिये माघ स्नान से बढ़कर और कोई उपाय नहीं है ॥ ४९ ॥ श्रद्धा हीन कर्मों से थोड़ेही फल नाश होते हैं, परन्तु माघ स्नान चाहे कैसे ही किया जावे पूर्ण फल देता है ॥ ५० ॥ बिना कामना के अथवा कामना सहित जहाँ कहीं

न त्याज्यं माघमज्जनम् ॥ ४७ ॥ ये बिभ्यन्ति नराः पापाद्दारिद्राद्ये च बिभ्यति ॥ सर्वथा तैः प्रयत्नेन माघे कार्यं निमज्जनम् ॥ ४८ ॥ दारिद्र्यपापदौर्भाग्यपङ्कप्रक्षालनाय च ॥ माघस्नानान्न चान्योऽस्ति उपायो राजसत्तम ॥४९॥ श्रद्धाहीनानि कर्माणि मतान्यल्पफलानि वै ॥ फलं ददाति सम्पूर्णं माघस्नानं यथा तथा ॥५०॥ अकामो वा सकामो वा यत्र क्वापि बहिर्जले ॥ इहामुत्र च दुःखानि माघस्नायी न विन्दति ॥ ५१ ॥ पक्षद्वये यथा चन्द्रः क्षीयते वर्धते तथा ॥ पातकं क्षीयते माघे पुण्यराशिश्च वर्धते ॥५२॥ यथाब्धौ खलु जायन्ते रत्नानि विवि-

(घर के) बाहर जल में माघ स्नान करनेवाला इस लोक तथा परलोक में दुःख नहीं पाता ॥ ५१ ॥ जिस प्रकार महीने के दोनों पक्षों में चन्द्रमा क्षीण होता और बढता है इसी प्रकार से माघ स्नान करने से पाप क्षीण होते और पुण्य राशि बढ़ती है ॥ ५२ ॥ जिस प्रकार खान में नाना प्रकारके रत्न उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार से माघ स्नान करने से

पुत्र पौत्र तथा सम्पत्तियाँ बढ़ती हैं ॥ ५३ ॥ जिस प्रकार कामधेनु कामों को तथा चिन्तामणि चिन्तित फल को देता है, उसी प्रकार से माघ स्नान सब मनोरथों को अवश्य पूर्ण करता है ॥ ५४ ॥ जिस प्रकार सतयुग में तप से बढ़ कर और त्रेता में यज्ञ से बढ़कर दूसरा कोई ज्ञान नहीं है, उसी प्रकार द्वापर और कलयुग में माघ स्नान से ज्ञान होता है तथा इससे सभी युगों में ज्ञान प्राप्त होता है ॥ ५५ ॥ हे भूपति ! सभी वर्णों तथा सभी आश्रमों को माघ स्नान धर्मकी

धानि च ॥ पुत्रपौत्रकलत्राणि सम्पदो माघतस्तथा ॥ ५३ ॥ कामधेनुर्यथा कामं चिन्तामणिश्च चिन्तितम् ॥ माघस्नानं ददातीह तद्वत्सर्वान् मनोरथान् ॥ ५४ ॥ कृते तपः परं ज्ञानं त्रेतायां यजनं तथा ॥ द्वापरे तु कलौ दानं माघः सर्वयुगेषु च ॥ ५५ ॥ सर्वेषां सर्ववर्णानामाश्रमाणां च भूमिप ॥ माघस्नानं तु धर्मस्य धाराभिः खलु वर्षति ॥५६॥ इति वाक्यं भृगोः श्रुत्वा तस्मिन्नेवाश्रमे शुभे ॥ सहैव भृगुणा माघे गिरिनिर्झरिणीह्रदे ॥५७॥ यथोक्तविधिना स्नानमकरोद्भार्यया सह॥ भृगोरनुग्रहात् सोऽथ संप्राप्य मनसेप्सितम् ॥५८॥ देवतावदनो भूत्वा

धारा अवश्य बरसाता है ॥ ५६ ॥ भृगुजी के इस वाक्य को सुन कर (उस विद्याधर ने) उसी शुभ आश्रम में उनके साथ माघ महीने में पर्वत के झरने के सरोवर में ॥ ५७ ॥ विधिपूर्वक अपनी पत्नी के साथ स्नान किया और भृगुजी ने कृपा से उसके मनकी अभिलाषा को पूर्ण किया ॥ ५८ ॥ देवता समान मुख होकर वह मणि पर्वत पर आनन्द करने लगे

प्रसन्न चित्त होकर उस पर अनुग्रह करके भृगुजी विन्ध्य पर्वत पर आये ॥ ५६ ॥ मणिमय पर्वत पर माघ मास में स्नान मात्र से ही विद्याधर कामदेव के समान मुख वाला हो गया और नियमों से निवृत्त होकर भृगुजी विन्ध्य पर्वत से उतर कर अपने शिष्यों के साथ रेवानदी पर आये ॥ ६० ॥ यह माघ माहात्म्य सम्पूर्ण भुवन का सार है, हे राजन् ! द्विजवर

मुमुदे मणिपर्वते ॥ आजगाम भृगुर्विन्ध्यं तमनुग्राह्य हर्षितः ॥ ५६ ॥ मणिमयगिरिसिन्धौ स्नानमात्रेण माघे मदनवदनरूपस्तत्र विद्याधरोऽभूत् ॥ चपितनियमदेहो। विन्ध्यपादावतीर्णो भृगुरपि सह शिष्यराजगामाथ रेवाम् ॥ ६० ॥ अखिलभुवनसारं माघमाहात्म्यमेतद्द्विजवर-भृगुणोक्तं भूप विद्याधराय ॥ विविधफलविचित्रं यः शृणोतीह नित्यं रुचिरसकलकामान् देववत् प्राप्नुयात् सः ॥ ६१ ॥

इति श्री पद्मपुराणे माघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

भृगुजी ने विद्याधरको यह कहा था; नाना प्रकार के फलों को देने वाले इस माहात्म्य को जो नित्य सुनता है उसको देवता समान सुन्दर सम्पूर्ण काम प्राप्त होते हैं ॥ ६१ ॥

श्री पद्म पुराण के माघ माहात्म्य में वशिष्ठ तथा दिलीप के संवाद में तृतीय अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३ ॥



वसिष्ठजीने कहा—हे राजाओं में श्रेष्ठ ! अब मैं तुमसे माघ मास का वह माहात्म्य कहता हूँ जो कार्तवीर्य के पूछने पर दत्तात्रेय ने कहा था ॥ १ ॥ जब साक्षात् विष्णु तुल्य दत्तात्रेयजी सह्य पर्वत पर रहते थे तब माहिष्मति के राजा ने उनसे पूछा था ॥ २ ॥ सहस्रार्जुन ने कहा—योगियों में श्रेष्ठ हे भगवन् ! मैंने सब धर्म सुने, हे मुनिश्रेष्ठ ! कृपाकर

वसिष्ठ उवाच ॥ अधुना माघमाहात्म्यं प्रवक्ष्यामि नृपोत्तम ॥ पृच्छते कार्तवीर्याय दत्तात्रेयोदितं यथा ॥१॥ दत्तात्रेयं हरिं साक्षाद्वसन्तं सह्यपर्वते ॥ पप्रच्छ तं द्विजं गत्वा राजा माहिष्मतीपतिः ॥ २ ॥ सहस्रार्जुन उवाच ॥ भगवन् योगिनां श्रेष्ठ सर्वधर्माः श्रुता मया ॥ माघस्नानंफलं ब्रूहि कृपया मुनिसत्तम ॥ ३ ॥ दत्तात्रेय उवाच ॥ श्रूयतां राजशार्दूल एतत्प्रश्नोत्तरं शुभम् ॥ ब्रह्मणोक्तं पुरा ह्येतन्नारदाय महात्मने ॥ ४ ॥ तत्सर्वं कथयिष्यामि माघस्नानफलं महत् ॥ यथादेशं यथा तीर्थं यथाश्राद्धं यथाक्रियाम् ॥ ५ ॥ अस्मिन् वै भारते वर्षे कर्मभूमौ

मुझसे माघ स्नान का फल कहिये ॥ ३ ॥ दत्तात्रेयजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इस प्रश्न के शुभ उत्तर को सुनो, जैसा कि प्राचीन काल में ब्रह्मा ने महात्मा नारद से कहा था ॥ ४ ॥ वह सब माघ स्नान के बड़े फल को मैं कहता हूँ, देश के तीर्थ के श्राद्ध के तथा क्रिया के अनुसार ॥ ५ ॥ विशेष कर इस कर्म भूमि भारत वर्ष में माघ स्नान न करने वाले

मनुष्यों का जन्म निष्फल होता है ॥ ६ ॥ हे राजन् । माघ स्नान के विना मनुष्य का जन्म वैसाही देख पड़ता है जैसे विना सूर्य का आकाश अथवा चन्द्रमाके विना नक्षत्र मण्डल ॥ ७ ॥ व्रत, दान तथा तप से विष्णु भगवान् इतने प्रसन्न नही होते जितने माघ स्नान से होते हैं ॥ ८ ॥ जिस प्रकार सूर्य के तेज के सदृश दूसरा तेज नहीं है उसी प्रकार

विशेषतः ॥ अमाघस्नायिनां नृणां निष्फलं जन्म कीर्तितम् ॥६॥ असूर्यं गगनं यद्वद्चन्द्रं ऋक्षमण्डलम् ॥ तद्वदाभाति तज्जन्व माघस्नानं विना नृप ॥ ७ ॥ व्रतैर्दानैस्तवोभिश्च न तथा प्रीयते हरिः ॥ माघमज्जनमात्रेण यथा प्रीणाति केशवः ॥ ८ ॥ समं भवति नो किञ्चित् तेजः सौरेण तेजसा ॥ तद्वत्स्नानेन माघस्य न समाः क्रतुजाः क्रियाः ॥ ९ ॥ प्रीतये वासुदेवस्य सर्वपापापनुत्तये ॥ माघस्नानं प्रकुर्वीत स्वर्गलाभाय मानवः ॥ १० ॥ किं रक्षितेन देहेन सुपुष्टेन बलीयसा ॥ अध्रुवेणाशुचिस्थेन माघस्नानं विना भवेत् ॥११॥ अस्थि-

माघ स्नान के बराबर दूसरी यज्ञ इत्यादि क्रिया नहीं हैं ॥ ९ ॥ भगवान् वासुदेव की प्रीति के लिये तथा सब पापों को नाश करने के लिए और स्वर्ग प्राप्त करने के लिए मनुष्य को माघ स्नान अवश्य करना चाहिये ॥ १० ॥ पुष्ट, बलवान्, अनित्य तथा शुद्ध शरीर की रक्षा करने से क्या लाभ है, यदि यह माघ स्नान के विनाही रह जाय ॥ ११ ॥

इस शरीर में हड्डियों के खंभे लगे हैं, नसों से यह बँधी है, माँस के टुकड़ों से मढ़ी है चर्म से ढपी है, दुर्गन्धयुक्त है तथा मलमूत्र का स्थान है ॥ १२ ॥ यह बुढ़ापा, शोक तथा विपत्ति से व्याप्त है, रोग का घर, आतुर, गन्दी, अनित्य तथा सब दोषों का आश्रय है ॥ १३ ॥ दूसरे के दुःख देने के ताप से दुखी, दूसरे का द्रोह करने वाली, ईर्षा करनेवाली,

स्तम्भं स्नायुबद्धं मांसक्षतजलेपनम् ॥ चर्मावनद्धं दुर्गन्धं पूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥ १२ ॥
जराशोकविपद्व्याप्तं रोगमन्दिरमातुरम् ॥ रजस्वलमनित्यं च सर्वदोषसमाश्रयम् ॥ १३ ॥
परोपतापितापार्तं परद्रोहि परेर्षकम् ॥ लोलुपं पिशुनं क्रूरं कृतघ्नं क्षणिकं तथा ॥ १४ ॥
दुःपूरं दुर्धरं दुष्टं दोषत्रयविभूषितम् ॥ अशुचिस्त्रावि सच्छिद्रं तापत्रयविमोहितम् ॥ १५ ॥
निसर्गतोऽधर्मरतं तृष्णाशतसमाकुलम् ॥ कामक्रोधमहामोहनरकद्वारसंस्थितम् ॥ १६ ॥ क्रिमि-

लालची, पिशुन, निर्दयी, कृतघ्न तथा क्षणिक है ॥ १४ ॥ दुष्पूर (दुःख से पूर्ण करने योग्य) दुर्धर (दुख से धारण करने योग्य) तथा दुष्ट–इन तीनों दोषो से युक्त, अपवित्र, पदार्थ बहाने वाली तथा छिद्र सहित इन तीनो तापो से मोहित ॥ १५ ॥ स्वभाव से ही अधर्म में लीन, सैकड़ों तृष्णा से व्याप्त, काम क्रोध, महालोभ रूपी नरक द्वार पर स्थित ॥ १६ ॥ कीड़े और विष्टा से पूर्ण परिणाम में भस्म होकर कुत्तों की हवि होती है,–ऐसी शरीर माघ स्नान के बिना

वृथा ही है ॥१७॥ जल में बुलबुले के समान और जन्तुओं में छोटी मक्खी के समान यह शरीर माघ स्नान के बिना मरण के लिए ही होती है ॥१८॥ विष्णुभगवान् का पूजन न करनेवाला ब्राह्मण मृतक के समान है, बिना दक्षिणा का श्राद्ध वृथा है, अब्राह्मण्य छत्र नष्ट है तथा अनाचार से कुल भी नष्ट है ॥१९॥ दम्भ से धर्म नष्ट होता है, क्रोध से तप नाश होता

विड्भस्म भवति परिणामे शुनां हविः ॥ ईदृक् शरीरकं व्यर्थं माघस्नानविवर्जितम् ॥१७॥
बद्बुदा इव तोयेषु पूतिका इव जन्तुषु ॥ जायन्ते मरणायैव माघस्नानविवर्जिताः ॥१८॥
अवैष्णवो हतो विप्रो हतं श्राद्धमदक्षिणम् ॥ अब्रह्मण्यं हतं क्षेत्रमनाचारं हतं कुलम् ॥१९॥
सदम्भश्च हतो धर्मः क्रोधेनैव हतं तपः अदृढं च हतं ॥ ज्ञानं प्रमादेन हतं श्रुतम् ॥२०॥
गुर्वभक्ता हता नारी ब्रह्मचारी तथा हतः ॥ अदीप्तेऽग्नौ हतो होमो हता भुक्तिरसाक्षिका
॥२१॥ उपजीव्या हता कन्या स्वार्थे पाकक्रिया हता ॥ शूद्रभिक्षो हता यागः कृपणस्य धनं

है, दृढ़ता बिना ज्ञान का नाश होता है तथा प्रमाद से शास्त्र नष्ट होता है ॥ २० ॥ गुरजनों की भक्ति न करने से स्त्री तथा ब्रह्मचारी नष्ट होते हैं, बिना प्रज्वलित अग्नि के होम नष्ट होता है, बिना साक्षी मुक्ति भी नष्ट होता है ॥ २१ ॥ जीविका के निमित्त रहने वाली कन्या नष्ट है, अपने ही लिये भोजन की क्रिया नष्ट है, शूद्र की भिक्षा जिसमें यज्ञ

किया जाय, नष्ट है तथा कंजूस का धन वृथा है ॥ २२ ॥ विना अभ्यास की तथा पिशुनता युक्त विद्या व्यर्थ है, असत्य वाणी नष्ट है, विरोध करने वाला राजा व्यर्थ है ॥ २३ ॥ जीविका के लिए तीर्थ करना व्यर्थ है, और जीविका के लिये व्रत भी नष्ट है । सन्देह युक्त होने से मन्त्र व्यर्थ है, व्यग्र चित्त होकर जप करना वृथा है २४ ॥ अश्रोत्रिय को दान देना वृथा है, सन्सार में नास्तिक होना वृथा है, श्रध्दा के बिना की हुई सब पारलौकिक क्रिया नष्ट है ॥ २५ ॥

हतम् ॥२२॥ अनभ्यासहता विद्या तथा पैशून्यवादिनी ॥ असत्या च हता वाणी हतो राजा विरोधकृत् ॥२३॥ जीवनार्थं हतं तीर्थं जीवनार्थे हतं व्रतम् ॥ सन्दिग्धो हि हतो मन्त्रो व्यग्रचित्तो हतो जपः ॥२४॥ हतमश्रोत्रिये दानं हतो लोकश्च नास्तिकः ॥ अश्रद्धया हतं सर्वं यत्कृतं पारलौकिकम् ॥२५॥ इह लोको हतो नृणां दरिद्राणां यथा नृप ॥ मनुष्याणां तथा जन्म माघस्नानं विना हतम् ॥२६॥ मकरस्थे रवौ यो हि न स्नात्यनुदिते रवौ ॥ कथं पापैः प्रमुच्येत कथं स त्रिदिवं व्रजेत् ॥ २७ ॥ ब्रह्महा हेमहारी च सुरापो गुरुतल्पगः ॥ माघस्नायी

हे राजेन्द्र ! जिस प्रकार इस संसार में दरिद्र मनुष्य (का जीवन) वृथा हैं उसी प्रकार माघ स्नान किये बिना मनुष्य का जन्म वृथा है ॥ २६ ॥ मकर राशि में सूर्य के रहने पर जो सूर्य उगने के पूर्व स्नान नहीं करता वह कैसे पाप से विमुक्त हो सकता हैं और स्वर्ग में जा सकता है ॥ २७ ॥ ब्रह्महत्या करने वाला, सोना चोराने वाला,

शराब पीने वाला, गुरु की सेज पर चढ़ने वाला, और पाँचवा इन चारों का संसर्ग करने वाला माघ स्नान करने से शुध्द होता है ॥२८॥ माघ महीने में सूर्य उदय होने के कुछ पहले जल कहता है कि हम ब्रह्महत्या करने वाले, शराब पीने वाले और अन्य पापियों को पवित्र करते हैं ॥२९॥ मनुष्य के सब उपपातक तथा महापातक भी माघ स्नान करने से भस्म हो जाते हैं ॥३०॥ माघ स्नान (का समय) आने पर सब पाप काँपने लगते हैं क्योंकि वे

विशुद्धः स्यात् तत्संसर्गी च पञ्चमः ॥२८॥ माघमासे रटन्त्यापः किञ्चिदभ्युदिते रवौ ॥ ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा कं पतन्तं पुनामहे ॥२९॥ उपपापानि सर्वाणि पातकानि महान्त्यपि ॥ भस्मीभवन्ति सर्वाणि माघस्नायिनि मानवे ॥ ३० ॥ वेपन्ते सर्वपापानि माघस्नानसमागमे ॥ नाशकालोऽयमस्माकं यदि स्नास्यति वारिणि ॥ ३१ ॥ पावका इव दीप्यन्ते माघस्नानैर्नरोत्तमाः ॥ विमुक्ताः सर्वपापेभ्यो मेघेभ्य इव चन्द्रमाः ॥३२॥ आर्द्रं शुष्कं लघु स्थूलं वाङ्-

जानते हैं कि जल में स्नान करने से हमारा नाश हो जायगा ॥ ३१ ॥ जिस प्रकार मेघों से विमुक्त होकर चन्द्रमा चमकता है, उसी तरह श्रेष्ठ मनुष्य माघ स्नान से अग्नि के समान देदीप्यमान हो जाते हैं ॥ ३२ ॥ वाणी, मन तथा कर्म से किये छोटे बड़े नये पुराने सभी पाप माघ स्नान से वैसे ही भस्म हो जाते हैं जैसे अग्नि में समिधा ॥ ३३ ॥

माद से जो पाप होते हैं अथवा जान या अनजान में जो पाप किये होते हैं वे मकर के सूर्य में स्नान मात्र से ही
नष्ट हो जाते हैं ॥ ३४ ॥ पाप रहित मनुष्य माघ स्नान से स्वर्ग में जाते हैं तथा पापी लोग शुद्ध होते हैं, हे निराधिप !
इसमें कुछ भी सन्देह न करना चाहिये ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! जैसे विष्णु भगवान् में भक्ति करने का सबको अधिकार

मनःकर्मभिः कृतम् ॥ माघस्नायी दहेत् पापं पावकः समिधो यथा ॥ ३३ ॥ प्रामादिकं च
यत्पापं ज्ञानाज्ञानकृतं च यत् ॥ स्नानमात्रेण तन्नश्येन्मकरस्थे दिवाकरे ॥ ३४ ॥ निष्पापा-
स्त्रिदिवं यान्ति पापिष्ठा यान्ति शुद्धताम् ॥ सन्देहोऽत्र न कर्तव्यो माघस्नाने नराधिप ॥३५॥
सर्वेऽधिकारिणो ह्यत्र विष्णुभक्तौ यथा नृप ॥ सर्वेषां सर्वदो माघः सर्वेषां पापनाशनः ॥३६॥
एष एव परो मन्त्रो ह्येतदेव परं तपः ॥ प्रायश्चित्तं परं चैतन्माघस्नानमनुत्तमम् ॥३७॥ नृणां
जन्मान्तराऽभ्यासान्माघस्नाने मतिर्भवेत् ॥ अध्यात्मज्ञानकौशल्यं जन्माभ्यासाद्यथा नृप ॥३८॥

है, उसी प्रकार पाप नाश करने वाले माघ स्नान के भी सभी अधिकारी हैं ॥ ३६ ॥ यही परम मन्त्र और यही परम
तप है, अपूर्व माघ स्नान ही सबसे बढ़कर प्रायश्चित्त है ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! पूर्वजन्मों के अभ्यास से मनुष्यों की
माघ स्नान करने की बुद्धि होती हैं, जैसे जन्मान्तर के अभ्यास से ही अध्यात्मज्ञान की कुशलता होती हैं ॥ ३८ ॥

माघस्नान अपवित्रों को पवित्र करनेवाला परम तप है, यह संसार रूपी कीचड़ को धोने की विशिष्ट वस्तु है ॥३९॥ हे राजन्! सब कामना का फल देनेवाला माघ स्नान जो नहीं करते वे चन्द्र तथा सूर्य के समान भोग कैसे भोग सकते हैं ॥४०॥

संसारकर्दमालेपप्रक्षालनविशारदम् ॥ पावनं पावनानां च माघस्नानं परं तपः ॥३९॥ स्नान्ति
माघे न ये राजन् सर्वकामफलप्रदे ॥ ते कथं भुञ्जते भोगान् चन्द्रसूर्यग्रहोपमान् ॥ ४० ॥

इति श्री पद्मपुराणे उत्तरखण्डे माघमाहात्म्येवसिष्ठदिलीपसंवादो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

इति श्री पद्म पुराण के उत्तर खण्ड में माघ महात्म्य में वसिष्ठ दिलीप-
संवाद नाम का चौथा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

दत्तात्रेयजी ने कहा—हे राजन् ! माघ मास से उत्पन्न बड़ा आश्चर्यजनक प्रभाव सुनो, भृगुवंश में उत्पन्न ऋषीका नाम की एक कल्याणी ब्राह्मणी थी ॥ १ ॥ बालवैधव्य के दुख से पीड़ित होकर वह घोर तप करने लगी, विन्ध्य पर्वत के नीचे महास्थान में रेवा नदी के तीर अमरकण्टक में ॥ २ ॥ व्रतिनी होकर भगवान् नारायण में लीन हुई

दत्तात्रेय उवाच ॥ शृणु राजन् महाश्चर्यं प्रभावं माघमासजम् ॥ ऋषीका नाम कल्याणी ब्राह्मणी भृगुवंशजा ॥ १ ॥ बालवैधव्यदुःखार्ता तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ विन्ध्यपादे महास्थाने रेवायामरकण्टके ॥२॥ तत्र सा व्रतिनी भूत्वा नारायणपरायणा ॥ सदाचारवती नित्यं नित्यं संगविवर्जिता ॥ ३ ॥ जितेन्द्रिया जितक्रोधा सत्यवागल्पभाषिणी ॥ सुशीला दानशीला च देहशोषणशालिनी ॥४॥ पितृदेवद्विजेभ्यश्च दत्त्वा हुत्वा तथाऽनले ॥ षष्ठे काले च सा भुंक्ते ह्युञ्छवृत्तिः सदा नृप ॥ ५ ॥ कृच्छ्रातिकृच्छ्रपाराकतप्तकृच्छ्रादिकैर्व्रतैः ॥ पुण्यान्नयति सा

सर्वदा सदाचार से युक्त सर्वदा संग साथ छोड़कर ॥ ३ ॥ जितेन्द्रिय, जितक्रोध, सत्य बोलने वाली, कम बोलनेवाली सुशीला दानशीला, तथा देह को सुखाने वाली ॥४॥ हे राजन् ! यह ब्राह्मणी पहिले ब्राह्मणों और पितरों को देकर अग्नि में आहुति देती थी, उञ्छवृत्ति धारण करने वाली वह सर्वदा छठे काल में भोजन करती थी ॥ ५ ॥ वह कठिन, अति कठिन

तथा तप्तकृच्छ इत्यादि व्रत करती थी और नर्मदा के किनारे वह पुण्य से अपना समय विताती थी ॥६॥ इस प्रकार वल्कल धारण करने वाली इस सुशीला तपस्विनी सत्वशालिनी ने धैर्य और सन्तोष से ॥७॥ हे राजन् ! रेवा और कपिल नदियों के संगम में साठ वर्ष तक माघ में स्नान किया और तब वह उसी तीर्थ में तप में क्षीण होकर मर गई ॥८॥ माघ स्नान करने से जो पुण्य उसको हुआ उसके प्रभाव से वह विष्णुपुर में प्रसन्नतापूर्वक चार हजार

मासान्नर्मदयाश्च रोधसि ॥६॥ एवं तया तपस्विन्या वल्कलिन्या सुशीलया ॥ सुमहासत्वशालिन्या धृतिसन्तोषयुक्तया ॥ ७ ॥ षष्टिर्माघास्तया स्नाता रेवाकपिलसंगमे ॥ ततः सा तपसा क्षीणा तस्मिन् तीर्थे मृता नृप ॥ ८ ॥ माघस्नानजपुण्येन तेन सा वैष्णवे पुरे ॥ उवास प्रमुदा युक्ता चतुर्युगसहस्रकम् ॥६॥ सुन्दोपसुन्दनाशाय पश्चात् पद्मभुवा पुनः ॥ तिलोत्तमेति नाम्ना सा ब्रह्मलोकेऽवतारिता ॥१०॥ तेनैव पुण्यशेषेण रूपस्यैकायनं ययौ ॥ अयोनिजाऽबलारत्नं देवानामपि मोहिनी ॥११॥ लावण्यह्लादिनी तन्वी साऽभूदप्सरसां वरा ॥ निपुणस्य

वर्ष निवास करती थी ॥६॥ फिर सुन्द और उपसुन्द (दैत्यों) को नाश करने के लिए पद्मभू (ब्रह्मा) से तिलोत्तमा नाम की (अप्सरा) ब्रह्मलोक में उतरी ॥ १० ॥ और उसी पुण्य शेष से अपूर्व सुन्दरी बिना योनि की स्त्रियों में रत्न, देवताओं को भी मोहने वाली ॥ ११ ॥ लावण्य को प्रसन्न करने वाली, वह सुन्दरी अप्सराओं में श्रेष्ठ हुई, वह

विधाता की चतुराई का आश्चर्य करने वाली थी ॥ १२ ॥ ब्रह्माजी ने उस को उत्पन्न करके प्रसन्न होकर आज्ञा दिया, हे मृगशावक के समान नेत्र वाली ! तुम शीघ्र दैत्यों के नाश के लिये जाओ ॥ १३ ॥ तब वह सुन्दरी वीणा लेकर ब्रह्मलोक से चली और पुष्कर मार्ग से वहाँ गई जहाँ पर देवताओं के शत्रु थे ॥ १४ ॥ वहाँ रेवा नदी के पवित्र

विधेः स्रष्टुर्नूनमाश्चर्यकारिणी ॥१२॥ तामुत्पाद्य विधाता वै तुष्टोऽनुज्ञां तदा ददौ ॥ एणशावाक्षि गच्छ त्वं दैत्यनाशाय सत्वरम् ॥ १३ ॥ ततः सा ब्रह्मणो लोकाद्वीणामादाय भामनी ॥ गता पुष्करमार्गेण यत्र तौ देववैरिणौ ॥ १४ ॥ तत्र स्नात्वा तु रेवायः पवित्रे निर्मले जले॥परिधायाम्बरं रक्तं बन्धूककुसुमप्रभम्॥१५॥रणद्वलयिनी चारु सिञ्जन्नूपुरमेखला ॥ लोलमुक्तावलीकण्ठा चलत्कुण्डलशोभना ॥१६॥ माधवी कुसुमापीडा कंकोलविटपे स्थिता ॥ गायन्ती सुस्वरं सा तु पीडयन्ती च वल्लकीम् ॥ १७ ॥ मूर्च्छयन्ती स्वरं षट्कं

निर्मल जल में स्नान करके बन्धूक के फूल के समान लाल वस्त्र पहिर कर ॥१५॥ बजती हुई सुन्दर पैंजनी और करधनी पहिरे तथा कण्ठ में हिलती हुई मोती की माला, और कुण्डल से सुशोभित ॥ १६ ॥ जूड़े में चमेली के फूल गुथे अशोक वृक्ष के नीचे बैठ कर वह वीणा को बजाती हुई मधुर स्वर में गाती हुई ॥ १७ ॥ सुरीले कोमल

स्वर में छहों स्वरों की तान लेती हुई अशोक वन में कुमारी तिलोत्तमा बैठी थी ॥ १८ ॥ हे राजन् ! सैनिकों ने चकित होकर चन्द्रमा की कला समान हृदय को आनन्द करने वाली उस (तिलोत्तमा) को आनन्द पूर्वक भली भाँति देखा । १६ ।। उसको देखते ही वे शीघ्र ही सुन्द और उपसुन्द के पास गये और बारम्बार उसका वर्णन करते हुए संभ्रम

सुस्निग्ध कोमलं कलम् ॥ इत्थं तिलोत्तमा बाला तिष्ठन्त्याशोककानने ॥१८॥ दृष्ट्वा दैत्यभटैरिन्दोः कलेव सुखदा हृदि ॥ तां दृष्ट्वा विस्मितैः राजन् सानन्दैः सैनिकैर्भृशम् ॥१६॥ त्वरमाणैरदृष्ट्वैव गत्वा सुन्दोपसुन्दयोः ॥ कथिता संभ्रमेणैव वर्णयित्वा पुनः पुनः ॥२०॥ हे दैत्यौ न विजानीमो देवी वा दानवी नु किम् ॥ नागाङ्गनाऽथ यक्षी वा स्त्रीरत्नं सर्वथा तु सा ॥२१॥ युवां रत्नभुजौ लोके रत्नभूता हि साऽबला ॥ वर्तते नातिदूरेऽत्रे अशोके तापहारिणी ॥२२॥ तत्त्व तां पश्यतां शीघ्रं मन्मथस्यापि मोहिनीम् ॥ इति सेनापतीनां तु श्रुत्वा

से कहने लगे ॥ २० ॥ हे दैत्यों ! हम नहीं जानते कि वह देवी है दानवी या है नागाङ्गना है, यक्षिणी है अथवा स्त्री-रत्न है ॥ २१ ॥ आप दोनों रत्न को उपभोग करने वाले हो, संसार में यह अबला रत्नभुत है, दुःख को हरने वाली वह थोड़ी ही दूर पर अशोक वन में विद्यमान है ॥ २२ ॥ कामदेव को भी मोहित करने वाली उस स्त्री को आप दोनों

शीघ्र ही चलकर देखिये, इस प्रकार से सेनापतियों के मनोहर वचनों को सुनकर ॥२३॥ मदिरा का पात्र तथा जलका कटोरा त्याग कर, हजारों उत्तम स्त्रियों को छोड़ उस जलाशय से ॥२४॥ सौ मनुष्यों से मिलकर उठाने योग्य काल दण्ड के समान गदाओं को प्रत्येक लेकर जल्दी से उस स्थान पर गये ॥२५॥ जहाँ पर वह शृंगार किये उन दोनों को मारने के लिये चण्डी के समान बैठी थी। हे राजन्! वहाँ पर वह उन दैत्यों की कामाग्नि भड़काने के लिए वह ठहरी थी ॥२६॥

वाचं मनोहराम् ॥ २३ ॥ चषकं सीधुनस्त्यक्त्वा विहाय जलसेवनम् ॥ उत्तमस्त्रीसहस्राणि
त्यक्त्वा तस्माज्जलाशयात् ॥२४॥ शतभारायसीं क्रूरां कालदण्डोपमां गदाम् ॥ भिन्नां भिन्नां
गृहीत्वा तौ जवेनातिद्रुतं गतौ ॥२५॥ यत्र शृङ्गारसज्जा सा हन्तु चण्डीव संस्थिता ॥ राजन्
सन्धुक्षयन्तीव दैत्ययोर्मन्मथानलम् ॥२६॥ स्थित्वा तस्याः पुरो राजन् तौ तद्रूपविमोहितौ ॥
विशेषान्मधुना मत्तावूचतुश्च परस्परम् ॥ २७ ॥ भ्रातर्विरम भार्येयं ममास्तु वरवर्णिनी ॥
त्वमेवार्य त्यजेमां मे भार्याऽस्तु मदिरेक्षणा ॥२८॥ इत्याग्रहेण संरब्धौ मातङ्गाविवसोन्मदौ ॥
अन्योन्यं कालनिर्दिष्टौ गदया जघ्नतुस्तदा ॥ २९ ॥ परस्परप्रहारेण गतासू पतितौ भुवि ॥

हे राजन् वे दोनों उसके रूप से मोहित होकर उसके सामने जाकर विशेष रूपसे उन्मत्त होकर आपस में कहने लगे ॥२७॥ भाई हटो इस सुन्दरी को मैं अपनी भार्या बनाऊँगा, आप इसके पास से हट जाइये, मदिरा के समान नत्र वाली यह स्त्री मेरी भार्या होगी ॥२८॥ इस प्रकार उन्मत्त हाथी के समान वे उन्मत्त हुए और काल के वश होकर वे आपस में गदा प्रहार करने लगे ॥२९॥

आपस में प्रहार करके वे दोनों मर कर पृथ्वी पर गिर पड़े, इन दोनों को मरा देख कर सैनिकों ने बड़ा कोलाहल किया ॥३०॥ कालरात्रि के समान यह कौन है ? हा यह क्या हो गया ? ऐसा वे सुन्द और उपसुन्द दैत्य के विषय में कहने पर ॥३१॥ आनन्दवती तिलोत्तमा इनको पर्वत की चोटी में गिराती हुई दशों दिशाओं को प्रकाशित करती हुई शीघ्र आकाश में चली गई ॥ ३२ ॥ तब देवकार्य करके वह ब्रह्मा के सन्मुख आई तब सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा ने इसका

तौ मृतौ सैनिककैर्दृष्ट्वा कृतः कोलाहलो महान् ॥ ३० ॥ कालरात्रिसमा केयं हा किमेतदुपस्थितम् ॥ एवं वदत्सु चान्योन्य दैत्यौ सुन्दोपसुन्दकौ ॥ ३१ ॥ पातयित्वा गिरेः शृङ्गे ह्लादिनीव तिलोत्तमा ॥ प्रस्थिता गगनं शीघ्रं द्योतयन्ती दिशो दश ॥ ३२ ॥ देवकार्यं ततः कृत्वा साऽगता ब्रह्मणः पुरः ॥ ततस्तुष्टेन देवेन विधिना सानुमोदिता ॥ ३३ ॥ स्थानं सूर्यरथे दत्तं तव चन्द्रानने मया ॥ भुंक्ष्व भोगाननेकांस्त्वं यावत्सूर्योऽम्बरे स्थितः ॥३४॥ इत्थं सा ब्राह्मणी राजन् भूत्वा ह्यप्सरसां वरा ॥ भुङ्क्तेऽद्यापि रवेर्लोके माघस्नानफलं महत् ॥३५॥

अनुमोदन किया ॥३३॥ और कहा, हे चन्द्रानने ! मैंने तुमको सूर्य के रथ पर स्थान दिया, जब तक आकाश में सूर्य हैं, तब तक तुम अनेक भोगों का उपभोग करो ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार से वह ब्राह्मणी श्रेष्ठ अप्सरा होकर अब भी सूर्य लोक में माघस्नान का फल भोगती है ॥ ३५ ॥ इसीलिये हे राजन् ! श्रद्धा वाले मनुष्यों को सर्वदा

प्रयत्न से परमगति प्राप्त करने के लिए मकर के सूर्य में स्नान करना चाहिये ॥३६॥ जो माघ मास में स्नान करता है उसको कौन से पुरुषार्थ सिद्ध नहीं होते और कौन से पातक क्षय नहीं होते ? अर्थात् सभी पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं और सभी पापों का नाश होता हैं ॥३७॥ दक्षिणा सहित सभी यज्ञ इसकी तुलना नहीं कर सकते, हे राजेन्द्र ! माघस्नान से और विशेष कर तीर्थ में करने से पाप को नाश करनेवाला और स्वर्ग को देनेवाला दूसरा कोई कर्म नहीं है ॥३८॥

तस्मात् प्रयत्नतो राजन् श्रद्दधानैः सदा नरैः ॥ स्नातव्यं मकरादित्ये वाञ्छद्भिः परमांगतिम् ॥३६॥
नानवाप्तो हि तस्यास्ति पुरुषार्थोऽत्र कश्चन ॥ नाक्षीणं पातकं किञ्चिन्माघे मज्जति यो नरः ॥३७॥
तुलयन्ति न तेनात्र यज्ञाः सर्वे सदक्षिणाः ॥ माघस्नानेन राजेन्द्र तीर्थे चैव विशेषतः ॥३८॥
न चान्यत् स्वर्गदं कर्म न चान्यत् पापनाशनम् ॥ न चान्यन्मोक्षदं किञ्चिन्माघस्नानसमं भुवि ॥३९॥

इति श्री पद्मपुराणे उत्तरखण्डे माघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे॥ माघस्नानप्रशंसायां सुन्दोपसुन्ददैत्यवधो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

और न संसार में माघस्नान के बराबर मोक्ष देने वाला कोई कार्य है ॥ ३९ ॥

इति श्री पद्मपुराण के उत्तर खण्ड के माघ माहात्म्य के वसिष्ठ दिलीप संवाद में माघस्नान प्रशंसा— में "सुन्द उपसुन्द का वध" इस नाम का पंचम अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

दत्तात्रेयजी ने कहा—यहाँ पर मैं तुमसे एक प्राचीन इतिहास वर्णन करता हूँ, हे राजन्! प्राचीन समय में सतयुग में श्रेष्ठ नैषध नगर में ॥१॥ कुबेर के समान धनी हेमकुण्डल नाम का एक वैश्य था जो कुलीन, सत्क्रिया वाला देवता ब्राह्मण और अग्नि का पूजक था ॥२॥ वह खेती व्यवसाय तथा बहुधा खरीद बिक्री का काम करता था, और गाय,

दत्तात्रेय उवाच ॥ अत्र ते वर्णयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् ॥ पुरा कृतयुगे राजन् नैषधे नगरे वरे ॥१॥ आसीद्वैश्यः कुबेराढ्यो नामतो हेमकुण्डलः ॥ कुलीनः सत्क्रियो देवद्विजसप्तार्चिपूजकः ॥२॥ कृषिवाणिज्यकर्ताऽसौ बहुधा क्रयविक्रयी ॥ गोघोटकमहिष्यादियोनिपोषणतत्परः ॥ ३ ॥ पया दधीनि तक्राणि गोमयानि तृणानि च ॥ काष्ठानि फलमूलानि लवणाद्यादि पिप्पली ॥ ४ ॥ धान्यानि शाकतैलानि वस्त्राणि विविधानि च ॥ धातूनिक्षुविकारांश्च विक्रीणीते च सर्वदा ॥ ५ ॥ इत्थं नानाविधैर्वैश्य उपायैः वरसैस्तदा ॥ उपार्जयामास धनं

घोड़े, भैंस इत्यादि पशुओं के पालन पोषण में तत्पर रहता था ॥ ३ ॥ दूध, दही, मट्ठा, गोमय, तृण, लकड़ी, फल, मूल, नमक, पीपल ॥ ४ ॥ धान्य, साग, तेल, नाना प्रकार के वस्त्र, धातु, तथा ऊख से बने पदार्थ यथा गुड़, खाँड़ चीनी इत्यादि को सर्वदा बेंचा करता था ॥५॥ इस प्रकार से उस वैश्य ने अनेक उपायों से आठ करोड़ अशर्फियाँ कमा

कर इकट्ठा किया ॥६॥ इस प्रकार से उस महाधनी को बुढ़ापा आया तब वह विचारने लगा कि संसार क्षणिक है ॥७॥
उस धन के छठें भाग से उसने धर्म कार्य किये—विष्णु भगवान् के मन्दिर बनवाये, शिवालय बनवाये ॥८॥ समुद्र के
समान लंबा चौड़ा तालाब खुदवाया, और उसने बहुत सी बावली और खन्दे खोदवाये ॥९॥ बर, पीपल, आम, कंकोल,

अष्टौ हाटककोटयः ॥ ६ ॥ एवं महाधनः सोऽथ आकर्णपलितोऽभवत् ॥ पश्चाद्विचार्य
संसारक्षणिकत्वं च चेतसि ॥७॥ तद्धनस्य षडंशेन धर्मकार्यं चकार सः ॥ विष्णोरायतनं चक्रे चक्रे
गेहं शिवस्य च ॥ ८ ॥ तडागं खानयामास विपुलं सागरोपमम् ॥ वाप्यश्च पुष्करिण्यश्च
बहुशस्तेन कारिताः ॥ ९ ॥ वटाश्वत्थाम्रकंकोलजम्बूनिम्बादिकाननम् ॥ आरोपितं प्रयत्नेन
तथा पुष्पवनं शुभम् ॥ १० ॥ उदयास्तमनं यावदन्नदानं चकार सः ॥ पुराद्बहिश्चतुर्दिक्षु
प्रपाश्चक्रे सुशोभनाः ॥११॥ पुराणेषु प्रसिद्धानि यानि दानानि भूपते ॥ ददौ तानि स धर्मात्मा

जामुन, नीम इत्यादि के जङ्गल लगाये, तथा फूल के सुन्दर बगीचे प्रेम से लगवाये ॥१०॥ सूर्योदय से सूर्यास्त तक वह
दान करता था, नगर के बाहर चारों दिशाओं में उसने सुन्दर पौसरे चलवाये ॥११॥ हे राजन्! पुराणों में जो प्रसिद्ध

दान हैं उनको उस नित्यदान में तत्पर धर्मात्मा ने किया ॥१२॥ तब उसने जीवन भर के किये हुए पापों का प्रायश्चित्त किया, वह नित्य देवता तथा अतिथियों की पूजा किया करता था ॥ १३ ॥ हे राजन् ! उस प्रकार करते हुए उसको दो पुत्र उत्पन्न हुए, वे श्रीकुण्डल और विकुण्डल नाम से प्रसिद्ध हुए ॥१४॥ उनके सर पर गृहस्थी का भार छोड़कर वह तपस्या करने चला गया, वहाँ पर वर देने वाले प्रभु गोविन्द की आराधना करता हुआ ॥१५॥

नित्यं दानपरस्तथा ॥ १२ ॥ यावज्जीवं कृते पापे प्रायश्चित्तमथाकरोत् ॥ देवपूजापरो नित्यं नित्यं चातिथिपूजकः ॥ १३ ॥ तस्येत्थं वर्तमानस्य संजातौ द्वौ सुतौ नृप ॥ तौ च प्रसिद्धनामानौ श्रीकुण्डलविकुण्डलौ ॥ १४ ॥ तयोर्मूर्ध्नि गृहं त्यक्त्वा जगाम तपसे वनम् ॥ तत्राराध्य परं देव गोविन्दं वरदं प्रभुम् ॥ १५ ॥ तपःक्लिष्टशरीरोऽसौ वासुदेवमनाः सदा ॥ प्राप्तवान् वैष्णवं लोकं यत्र गत्वा न शोचते ॥ १६ ॥ अथ तस्य सुतौ राजन् मदमानसमन्वितौ ॥ तरुणौ रूपसम्पन्नौ धनगर्वेण गर्वितौ ॥ १७ ॥ दुःशीलौ व्यसनासक्तौ धर्म-

तप से शरीर को क्लिष्ट करता हुआ, सर्वदा वासुदेव भगवान् में चित्त लगाये विष्णुलोक को प्राप्त हुआ जहाँ पहुँच कर कोई शोक नहीं रह जाता ॥१६॥ तब हे राजन् ! उसके दोनों पुत्र मद और अभिमान से युक्त होकर यौवन, रूप तथा सम्पत्ति और धन के गर्व से अभिमानी हुए ॥१७॥ ये दुःशील व्यसनों में लीन, धर्म कर्म से रहित थे और माता तथा

वृद्ध जनों का वचन नहीं मानते थे ॥१८॥ ये कुपथ में चलने वाले दुष्ट, माता पिता के मित्रों का निषेध करते, अधर्म में लीन रहते तथा परस्त्री गमन करते थे ॥ १९ ॥ ये वीणा बाँसुरी इत्यादि बाजा बजाने और गीतरङ्ग में निरत रहते थे और सर्वदा सैकड़ों वेश्याओं के साथ गाते फिरते थे ॥२०॥ खुशामदी मनुष्यों से घिरे हुए, धूर्तों की बात चीत में

कर्मविदूरगौ ॥ न वाक्यं शृणुतो मातुर्वृद्धानां वचनं तथा ॥ १८ ॥ उन्मार्गगौ दुरात्मानौ पितृमित्रनिषेधकौ ॥ अधर्मनिरतौ दुष्टौ परदाराभिगामिनौ ॥ १९ ॥ गीतवादित्रनिरतौ वीणावेणुविनादिनौ ॥ वारस्त्रीशतसंयुक्तौ गायन्तौ चेरतुः सदा ॥ २० ॥ चाटुकारनरैर्युक्तौ विटगोष्ठीविशारदौ ॥ सुवेषौ चारुवसनौ चारुचन्दनभूषितौ ॥ २१ ॥ सुगन्धमाल्यमालाढ्यौ कस्तूरीलक्ष्मलक्षितौ ॥ नानालङ्कारशोभाढ्यौ मौक्तिकाहारहारिणौ ॥२२॥ गजवाजिरथौघेन क्रीडन्तौ तावितस्ततः ॥ मधुपानसमायुक्तौ वारस्त्रीरतिमोहितौ ॥ २३ ॥ नाशयन्तौ पितुर्द्रव्यं

चतुर सुन्दर अच्छे वस्त्र पहिरे और चन्दन लगाये ॥२१॥ सुगन्धित मालाओं से विभूषित, कस्तूरी के तिलक लगाये, नाना प्रकार के अलंकारों से सुशोभित, मोती के हार पहिरे ॥ २२ ॥ ये दोनों घोड़ा, हाथी, रथ इत्यादि पर चढ़ कर क्रीडा करते थे, शराब पिये हुए वेश्याओं की रति में मोहित ॥ २३ ॥ इन दोनों ने पिता के धन को नाश करते

हुए, सैकड़ों हजारों रुपये लुटाते हुए, नित्य भोग में लीन अपने सुन्दर घर में रहते थे ॥२४॥ इस प्रकार से इन दोनों ने वेश्या, जार, जनखे, पहलवान, शिफ़ारसी लोग तथा भाटों में बुरी तरह से धन का व्यय किया ॥२५॥ ऊसर में बोये बीज के समान इन लोगों ने कुपात्र में धन का व्यय किया, न तो सत्पात्रों को दिया और न ब्राह्मणों के मुख में हवन किया ॥ २६ ॥ और न सब पापों के नाश करने वाले प्राणियों के रक्षक विष्णु भगवान् की पूजा इन्होंने किया, इस

सहस्रं ददतुः शतम् ॥ तस्थतुः स्वगृहे रम्ये नित्यं भोगपरायणौ ॥ २४ ॥ इत्थं तु तद्धनं ताभ्यां विनियुक्तमसद्व्ययैः ॥ वारस्त्रीविटशलूषमल्लचारणबन्दिषु ॥ २५ ॥ अपात्रे तद्धनं दत्तं क्षिप्तं बीजमिवोषरे ॥ न सत्पात्रेषु दत्तं तन्न ब्रह्ममुखे हुतम् ॥ २६ ॥ नार्चितो भूतभूर्विष्णुः सर्वपापप्रणाशनः ॥ तयोरेवं तु तद्द्रव्यमचिरेण क्षयं ययौ ॥ २७॥ ततस्तौ दुःखमापन्नौ कार्पण्यं परमं गतौ ॥ शोचमानौ तु मुह्येतां क्षुत्पीडादुःखदुःखितौ ॥ २८ ॥ तयोस्तु तिष्ठतोर्गेहे नास्ति यद्भुञ्जते तदा ॥ स्वजनैर्बान्धवैः सर्वैः सेवकैरुपजीविभिः ॥ २९ ॥

प्रकार से थोड़े ही दिन में उनका सब द्रव्य क्षय को प्राप्त हो गया ॥ २७ ॥ तब वे दुःख से पीडित होकर परम दीनता को प्राप्त हुए और भूख और प्यास के दुःख से दुःखी होकर शोक में पड़कर मोहित हो गये ॥२८॥ तब उनके घर में ऐसी कोई वस्तु न रह गई जिसको वे भोजन करते, उनके सम्बन्धी, बन्धु जन, सेवक, उपजीवी इत्यादि सभी ॥२९॥ द्रव्य के

अभाव से इनको छोड़कर हट गये और नगर में इनकी निन्दा होने लगी हे राजन्! तब इन दोनों ने नगर में चोरी करना आरम्भ किया ॥३०॥ और राजा तथा लोक के भय से उन्होंने तब नगर त्याग दिया और सबके ऋण से पीड़ित होकर जङ्गल में रहने लगे ॥३१॥ वहाँ पर ये मूर्ख विष में बुझाये तीखे बाणों से नाना प्रकार के पक्षियों, हरिनों और

द्रव्याभावात् परित्यक्तौ निन्द्यमानौ ततः पुरे ॥ पश्चाच्चौर्यं समारब्धं ताभ्यां तन्नगरे नृप ॥३०॥
राजतो लोकतो भीतौ स्वपुरान्निर्गतौ बहिः ॥ चक्रतुर्यनपासं तौ सर्वेषामृणपीडितौ ॥ ३१ ॥
जघ्नतुः सततं मूढौ शितैर्बाणैर्विषार्पितैः ॥ नानापक्षिवराहांश्च हरिणान् रोहितांस्तदा ॥३२॥
शशकान् शल्लकान् गोधाः श्वापदांश्च तथा बहून् ॥ महाबलौ भिल्लसङ्गावाखेटककरौ सदा
॥ ३३ ॥ एवं मांसमयाहारौ पापाचारौ परन्तप ॥ कदाचिद्भूधरं प्राप्य एकोऽन्यश्च वनं
गतः ॥ ३४ ॥ शार्दूलेन हतो ज्येष्ठः कनिष्ठः सर्पदंशितः ॥ एकस्मिन् दिवसे राजन्

रोहित मृग को बराबर मारा करते थे ॥३२॥ तथा खरगोश, शल्लक, गोधा, तथा अनेक हिंसक पशुओं को मारते थे और बड़े बलवान भिल्लों के साथ सर्वदा आखेट करते थे ॥३३॥ हे राजन्! इस प्रकार मांस का ही आहार करते हुए ये पापी किसी समय पर्वत पर गये, इनमें से एक जंगल में चला गया ॥ ३४ ॥ हे राजन्! उनमें से बड़े को तो

शेर खा गया और छोटे को साँप ने डँस लिया, एक ही दिन वे दोनों मृत्यु को प्राप्त हुए ॥ ३५ ॥ तब यमदूत अपने फन्दों में बाँध कर इनको यमलोक में ले गये, और वहाँ जाकर इन दूतों ने कहा कि ये दोनों बड़े पापी हैं ॥३६॥

पापिष्ठौ निधनं गतौ ॥ ३५ ॥ यमदूतैस्ततो बद्धौ पाशैर्नीतौ ममालयम् ॥ गत्वाऽभिजगदुः सर्वे ते दूताः पापिनाविमौ ॥ ३६ ॥ धर्मराज नरावेतावानीतौ तव शासनात् ॥ आज्ञां देहि स्वभृत्येषु प्रसीद करवामि किम् ॥ ३७ ॥

इति श्री पद्मपुराणे उत्तरखण्डे माघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

हे यमराज ! आपकी आज्ञा से हम इन दोनों मनुष्यों को यहाँ लाये हैं, आप प्रसन्न होकर मुझ सेवकों को आज्ञा दीजिये कि अब हम क्या करें ॥३७॥

श्री पद्मपुराण के उत्तरखण्ड के माहात्म्य के वसिष्ठ तथा दिलीप के संवाद में छठां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६ ॥



दत्तात्रेयजी ने कहा—चित्रगुप्त ने तब आलोचना किया और तब यमराज ने दूतों को (यह कह कर) भेजा कि एक को तो घोर नरक में ले जाओ जहाँ तीव्र वेदना होती है ॥१॥ और दूसरे को स्वर्ग में रक्खो जहाँ अपूर्व भोग हैं, तब इस आज्ञा को पाकर जल्दी से काम करने वाले दूतों ने ॥२॥ हे राजेन्द्र ! बड़े भाई को तो रौरव नाम के घोर

दत्तात्रेय उवाच ॥ आलोच्य चित्रगुप्तेन तदा दूतान् जगौ यमः ॥ एकस्तु नीयतां घोरं निरयं तीव्रवेदनम् ॥ १ ॥ अपरः स्थाप्यतां स्वर्गे यत्र भोगा ह्यनुत्तमाः ॥ तदाज्ञां तु तदा प्राप्य दूतैश्च क्षिप्रकारिभिः ॥ २ ॥ निक्षिप्तो रौरवे तत्र ज्येष्ठो नराधिप ॥ तेषां दूतवरः कश्चिदुवाच मधुरं वचः ॥ ३ ॥ विकुण्डल मया सार्धमेहि स्वर्गं ददामि ते ॥ भुङ्क्ष्व भोगांश्च दिव्यांस्त्वमर्जितान् स्वेन कर्मणा ॥ ४ ॥ ततो हृष्टमनाः सोऽपि दूतं पप्रच्छ तं पथि ॥ सन्देहं हृदि कृत्वा तु विस्मयं परमागतः ॥ ५ ॥ विचारयन् हृदि स्वर्गः कस्य हेतोः

नरक में फेंका, इन दूतों में से श्रेष्ठ दूत मधुर वाणी से कुछ बोला ॥३॥ हे विकुण्डल ! मेरे साथ आओ, मैं तुमको स्वर्ग दूँगा—अपने कर्मों से कमाये हुए दिव्य भोगों को तुम भोगो ॥४॥ तब प्रसन्न होकर उसने अति विस्मित होकर और हृदय में सन्देह रख कर पूछा ॥५॥ मन में यह विचार करते हुए कि किस हेतु से मुझको यह फल मिला है, विकुण्डल ने कहा—

हे दूतवर ! मुझको बहुत बड़ा संशय है, अतएव तुमसे पूछता हूँ ॥६॥ हम दोनों एक ही कुल में उत्पन्न हुए थे और हम दोनों ने समान ही कार्य किये थे, हम दोनों की बुरी मृत्यु भी समान ही हुई और यम को भी हम दोनों ने साथ ही देखा ॥७॥ तब तुल्य धर्म होने पर मेरा बड़ा भाई नरक में क्यों फेंका गया और मेरे भाग्य में स्वर्ग क्यों

फलं मम ॥ विकुण्डल उवाच ॥ भो दूतवर पृच्छामि संशयं त्वाममं परम् ॥ ६ ॥ आवां जातौ कुले तुल्ये तुल्यं कर्म तथा कृतम् ॥ दुर्मृत्युरपि तुल्योऽभूत तुल्यं यमस्तथा ॥७॥ कथं स नरके क्षिप्तस्तुल्यधर्मों ममाग्रजः ॥ मम भावी कथं नाक इति मे छिन्धि संशयम् ॥ ८ ॥ देवदूत न पश्यामि स्वस्य स्वर्गस्य कारणम् ॥ इति पृष्ठो देवदूतो विकुण्डलमुवाच ह ॥ ९ ॥ यमदूत उवाच ॥ माता पिता सुतो जाया स्वसा भ्राता विकुण्डल ॥ जन्महेतुरियं संज्ञा, जन्मकर्मोपभुक्तये ॥ १० ॥ यकस्मिन् पादपे यद्वच्छकुन्तानां समागमः ॥ पुत्र-

था—इस मेरे संशय को हटाओ ॥ ८ ॥ हे देवदूत ! मैं अपने स्वर्ग में आने का कारण नहीं देखता, ऐसा पूछने पर देवदूत ने विकुण्डल से कहा ॥९॥ यमदूत कहने लगा—हे विकुण्डल ! माता, पिता, पुत्र, पत्नी, बहिन, भाई, ये सब (नाम-अर्थात् ये सब सम्बन्ध) जन्म के कारण होते हैं और जन्म कर्म के भोगने के लिये होता है ॥१०॥ जिस प्रकार

एक वृक्ष पर अनेक पक्षियों का समागम होता है। उसी तरह (इस संसार में पुत्र, भाई, माता, पिता आदि का भी संगम होता है ॥ ११ ॥ इनमें जो कोई जो जो पूर्व भावित कर्म करता है, उसका फल मनुष्य सर्वदा उपभोग करता है ॥ १२ ॥ हे वैश्य! मैं प्रीतिपूर्वक तुमसे सच कहता हूँ कि मनुष्य अपने किये हुए शुभ या अशुभ कर्म का ही फल

भ्रातृपितॄणां च यथा भवति सङ्गमः ॥११॥ तेषां यो यो हि यत्कार्यं कुरुते पूर्वभावितः ॥ तस्य तस्य फलं भुङ्क्ते कर्मणः पुरुस्तदा ॥ १२ ॥ सत्यं वदामि ते प्रीत्या नरैः कर्म शुभाशुभम् ॥ स्वकृतं भुञ्जते वैश्य काले काले पुनः पुनः ॥१३॥ एकः करोति कर्माणि एकस्तु फलमश्नुते ॥ अन्योऽन्यं लिप्यते वैश्य कर्मणाऽन्यस्य कुत्रचित् ॥ १४ ॥ अपतन्नरके पापैस्तव भ्राता सुदारुणैः ॥ त्वं च धर्मेण धर्मात्मा स्वर्गं प्राप्तोऽसि शाश्वतम् ॥१५॥ विकुण्डल उवाच ॥ आबाल्यान्मम पापेषु न पुण्येषु रतं मनः अस्मिञ्जन्मनि भो दूत दुष्कृतं हि कृतं मया ॥१६॥

समय समय पर बारंबार भोगता है ॥ १३॥ एक ही कर्म को करता है और वही उसका फल भोगता है, हे वैश्य! कभी भी कोई मनुष्य दूसरे किसीके किए हुए कर्म का फल नहीं भोगता ॥१४॥ तुम्हारा भाई भयङ्कर पापों के कारण नरक में गया, तुम धर्मात्मा धर्म के कारण निरन्तर स्वर्ग को प्राप्त करते हो ॥१५॥ विकुण्डल ने कहा—बाल्यवस्था से लेकर (मरण पर्यन्त) मेरा मन पाप ही में लगा था पुण्य में नहीं, हे दूत! मैंने इस जन्म में पाप ही किये ॥१६॥

हे देवदूत ! मैं अपने पुण्य को नहीं जानता यदि तुम उस पुण्य को जानते हो तो कृपाकर मुझसे कहो ॥१७॥ देवदूत ने कहा—हे वैश्य ! सुनो मैं कहता हूँ जो पुण्य तुमने किया है, मैं सब प्राणितों का भलीभाँति जानता हूँ तुम नहीं जानते ॥ १८ ॥ हरिमित्र का पुत्र सुमित्र नाम का ब्राह्मण वेदों में पारंगत था यमुना नदी के दक्षिणोत्तर भाग में उसका पवित्र आश्रम था ॥ १९ ॥ हे वैश्य श्रेष्ठ ! उससे जंगल में मित्रता हो गई थी, उसके साथ तुमने माघ

देवदूत न जानामि सुकृतं कर्म चात्मनः ॥ यदि जानासि मत्पुण्यं तन्मे त्वं कृपया वद ॥१७॥
देवदूत उवाच ॥ शृणु वक्ष्यामि भो वैश्य यत्त्वया पुण्यमार्जितम् ॥ जानामि तदहं सर्वं च न त्वं वेत्सि निश्चितम् ॥ १८ ॥ हरिमित्रसुतो विप्रः सुमित्रो वेदपारगः ॥ आसात्तस्याश्रमः पुण्यो यमुनादक्षिणोत्तरे ॥१९॥ तेन सख्यं वने तस्मिस्तव जातं विशां वर ॥ तत्सङ्गेन त्वया स्नातं माघमासद्वयं तदा ॥ २० ॥ कालिन्दीपुण्यपानीये सर्वपापहरे शुभे ॥ तत्तीर्थे लोकविख्याते नानापापप्रणाशने ॥ २१ ॥ एकेन सर्वपापेभ्यो विमुक्तस्त्वं विशां वर ॥ द्वितीयमाघपुण्येन प्राप्तः स्वर्गस्त्वयाऽनघ ॥ २२ ॥ त्वं तत्पुण्यप्रभावेण मोदस्व सततं दिवि ॥ नरके तु तव

महीने में दो बार स्नान किया था ॥२०॥ सब पाप को हरने वाली शुभ पवित्र यमुनाजी के जल में तुमने स्नान किया था—यह तीर्थ पाप नाश करने के लिये संसार में प्रसिद्ध है ॥ २१ ॥ हे वैश्यवर ! एक बार इसमें स्नान करने से तुम पापों से मुक्त हो गये तथा दूसरी बार स्नान करने से माघ मास के स्नान के पुण्य से तुमने स्वर्ग पाया ॥ २२ ॥ तुम इस पुण्य के प्रभाव से स्वर्ग में निरन्तर आनन्द करो और तुम्हारा भाई नरक में यम यातना सहैं

व्रत के समान दूसरा कोई पुण्य संसार में नहीं है, वहाने से भी जिसने यह व्रत किया वह यमराज के वश नहीं होता ॥ ६ ॥ स्वर्ग तथा मोक्ष, आयुष्य और सन्तान को यह देने वाला है। हे वैश्य! न गङ्गा, न गया, न काशी न पुष्कर ॥ ७ ॥ और न कुरुक्षेत्र इस हरि दिन के तुल्य हैं तथा यमुना और चन्द्रभागा भी हरि भगवान् के दिन के समान नहीं हैं ॥ ८ ॥ इस दिन व्रत करने से मनुष्य अनायास (विना कष्ट) ही विष्णु भगवान् के परम पद को प्राप्त

भास्करैः ॥६॥ स्वर्गमोक्षप्रदा ह्येषा जीवपुत्रप्रदायिनी ॥ न गङ्गा न गया वैश्य न काशी न च पुष्करम् ॥ ७ ॥ न चापि कौरव क्षेत्रं हरिदिनेन तु ॥ यमुना चन्द्रभागा च तुल्या हरिदिनेन वै ॥८॥ अनायासेन येनात्र प्राप्यते वैष्णवं पदम् ॥ रात्रौ जागरणं कृत्वा समुपोष्य हरेर्दिनम् ॥९॥ दश वै पैतृके पक्षे मातृके दश पूर्वजाः ॥ प्रियाया दश वैश्यैतान् समुद्धरति वै ध्रुवम् ॥ १० ॥ ते द्वन्द्वसंघनिर्मुक्ताः नागारिकृतकेतनाः ॥ स्रग्विणः पीतवस्त्राश्च व्रजन्ति हरिमन्दिरम् ॥११॥ बालत्वे यौवने चापि वृद्धत्वे वा विशां वर ॥ उपोष्यैकादशी नूनं

करता है। हरिदिन को उपवास करके तथा रात्रि में जागरण करके ॥ ९ ॥ पिता के कुल के दस तथा माता के कुल के दस पुरखे तथा पत्नी के कुल के दस पुरखे अवश्य उद्धार होते हैं ॥ १० ॥ ये द्वन्द्व संघ से निर्मुक्त होकर विष्णु भगवान् के लोक को प्राप्त करते हैं और पीताम्बर तथा माला पहिन कर हरि मन्दिर को प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥

हे वैश्यवर ! बाल, युवा, वृद्ध सभी एकादशी के दिन उपवास करने वाले पापी भी नरक में जाते हैं ॥ १२ ॥ तीन रात उपवास करके तथा तीर्थ में स्नान करके हे वैश्य ! सोना, तिल और गो का दान करके मनुष्य स्वर्ग को जाते हैं ॥ १३ ॥ हे वैश्य ! जो लोग तीर्थ में स्नान नहीं करते और सुवर्ण का दान नहीं करते अथवा जिन्होंने कुछ तप नहीं किया वे सदा दुखी रहते हैं ॥ १४ ॥ मैं तुमसे संक्षेप में नरक से बचने का धर्म कहता हूँ—वाणी, मन तथा कर्मों से सब

नैति पापोऽपि दुर्गतिम् ॥१२॥ उपोष्य वा त्रिरात्राणि कृत्वा वा तीर्थमज्जनम् ॥ दत्त्वा हेम-तिलान् गाश्च वैश्य स्वर्यान्ति मानवाः ॥ १३ ॥ तीर्थंस्नान्ति न ये वैश्य न दत्तं काञ्चनं च यैः ॥ न च तप्तं तपः किञ्चित् ते स्युः सर्वत्र दुःखिताः ॥१४॥ संक्षिप्य वच्मि ते धर्मं नरकस्य निवारणम् ॥ अद्रोहः सर्वभूतेषु वाङ्मनःकायकर्मभिः ॥१५॥ इन्द्रियाणां निरोधश्च दानं च हरिसेवनम् ॥ वर्णाश्रमक्रियाणां च पालनं विधिवत् सदा ॥१६॥ स्वर्गार्थी सर्वदा वैश्य तपो दानं न कीर्तयेत् ॥ यथाशक्ति सदा दद्यात् स्वात्मानो हितकाम्यया ॥१७॥ उपानद्वस्त्रछत्रादि

प्राणियों से द्रोह न करना ॥ १५ ॥ इन्द्रियों को वश में करना, दान देना, हरि भगवान् की सेवा करना, विधि पूर्वक सब वर्णाश्रम की क्रियाओं का पालन करना ॥ १६ ॥ हे वैश्य ! स्वर्ग प्राप्त करने की इच्छा करने वाले को सर्वदा तप और दान करना चाहिये और अपने कल्याण की इच्छा करने वाले को ॥ १७ ॥ जूता, वस्त्र, छाता, अन्न, मूल,

फल, जल हे वैश्य ! दरिद्र लोग प्रतिदिन देकर दिन को अवन्ध्य करें ॥ १८ ॥ इस संसार में तथा परलोक में बिना दिया कोई पा नहीं सकता, ऐसा जान कर सर्वदा अपनी शक्ति के अनुसार दान दे । इनके दान करने वाले मनुष्य कभी यम यातना को नहीं देखते ॥ १९ ॥ ऐसे दान देने वाले मनुष्य अवश्य बारम्बार दीर्घायु और धनी होते हैं, बहुत कहने से क्या ? अधर्म से ही लोग दुर्गति को प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥ मनुष्य सदा सर्वत्र धर्म से ही स्वर्ग को

ह्यन्नं मूलं फलं जलम् ॥ अवन्ध्यं दिवसं कुर्यादरिद्रोऽपि हि वैश्यक ॥१८॥ इह लोके परे लोके नादत्तमुपतिष्ठति ॥ इति मत्वा सदा चैव दातव्यं तु स्वशक्तितः ॥ दातारो नैव पश्यन्ति तां तां हि यमयातनाम् ॥१९॥ दीर्घायुषो धनाढ्यास्ते भवन्तीह पुनः पुनः ॥ किमत्र बहुनोक्तेन यान्त्य-धर्मेण दुर्गतिम् ॥२०॥ आरोहन्ति दिवं धर्मैर्नराः सर्वत्र सर्वदा ॥ तेन बालत्वमारभ्य कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥२१॥ इति ते कथितं सर्वं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥२२॥

इति श्री पद्मपुराणे उत्तरखण्डे माघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२॥

चढ़ते हैं, अतएव बाल्यावस्था से ही धर्म का संग्रह करना चाहिये ॥ २१ ॥ मैंने तुमसे यह सब कह दिया अब अधिक तुम क्या सुनना चाहते हो ॥ २२ ॥

श्री पद्मपुराण के उत्तरखण्ड के माघमाहात्म्य के वसिष्ठ और दिलीप के संवाद में बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥१२॥



विकुण्डल ने कहा—हे सौम्य ! तेरे वचन को सुन कर मेरा चित्त बहुत प्रसन्न हुआ, साधुजनों के वचन सर्वदा गङ्गाजी (के जल) के समान पाप को नाश करने वाले और पापों को हरने वाले होते हैं ॥ १ ॥ उपकार करना और प्रिय बोलना सज्जनों का स्वाभाविक गुण है, अमृत-मण्डल चन्द्रमा को भी ठंढा कर देता है ॥ २ ॥ हे देवदूत ! मेरे पूछने पर कृपा करके मुझसे कहो कि किस प्रकार से मेरे भाई का नरक से उद्धार होगा ॥ ३ ॥ श्री दत्तात्रेयजी ने

विकुण्डल उवाच ॥ श्रुत्वा तव वचः सौम्य प्रसन्नं मम मानसम् ॥ गङ्गेव सद्यः पापघ्नं पापहारि सतां वचः ॥१॥ उपकर्तुं प्रियं वक्तुं गुणो नैसर्गिकः सताम् ॥ शीतांशुः क्रियते येन शीतलोऽमृतमण्डलः ॥२॥ देवदूत ततो ब्रूहि कारुण्यान्मम पृच्छतः ॥ नरकान्निर्गतिः सद्यो भ्रातुर्मे जायते कथम् ॥३॥ दत्तात्रेय उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा देवदूतो जगाद ह ॥ ज्ञान-दृष्ट्या क्षणं ध्यात्वा तन्मैत्रीरज्जुबन्धनः ॥४॥ दूत उवाच ॥ गते वैश्याष्टमे पुण्यं त्वया जन्मनि सञ्चितम् ॥ तद्भ्रात्रे दीयतां शीघ्रं स्वर्गं तस्य यदीच्छसि ॥५॥ विकुण्डल उवाच ॥ किं तत्पुण्यं

कहा—देवदूत ने उसके ऐसे वचन सुन कर, ज्ञान दृष्टि से कुछ देर ध्यान करके मित्रता रूपी रस्सी से बँधा होकर कहा ॥ ४ ॥ दूत ने कहा—हे वैश्य ! यदि तुम अपने भाई के लिये स्वर्ग चाहते हो तो शीघ्र उसको अपने पहिले आठ जन्म के सञ्चित फल को दे दो ॥ ५ ॥ हे दूत ! मुझे यह सब बतलाओ कि वह पुण्य क्या है कैसे और किस पूर्व जन्म में

हुआ तब मैं तुरत दे दूँगा ॥ ६ ॥ दूत ने कहा—हे वैश्य ! सुनो मैं उस पुण्य को हेतु सहित कहता हूँ । प्राचीन समय में पुण्य मधुवन में शालकी नाम का एक ऋषि था ॥ ७ ॥ तप और अध्ययन से सम्पन्न वह तेज में ब्रह्मा के सदृश था, नवग्रह के समान उसकी स्त्री रेवती से नव नव पुत्र उत्पन्न हुये ॥ ८ ॥ ध्रुव, शशी, बुध, तार तथा ज्योतिष्मान् इन

कथं जातं किं जन्माहं पुराभवम् ॥ तत्सर्वं कथ्यतां दूत ततो दास्यामि सत्वरम् ॥ ६ ॥ दूत उवाच ॥ शृणु वैश्य प्रवक्ष्यामि तत् पुण्यं च सहेतुकम् ॥ पुरा मधुवने पुण्ये ऋषिरासीच्च शालकिः ॥७॥ तपोऽध्ययनसम्पन्नस्तेजसा ब्रह्मणा समः ॥ जज्ञिरे तस्य रेवत्यां नव पुत्रा ग्रहा इव ॥८॥ ध्रुवः शशी बुधस्तारो ज्योतिष्मानत्र पञ्चमः ॥ अग्निहोत्रप्रियाह्येते गृहधर्मेषु रेमिरे ॥९॥ निर्मोहो जितमायश्च ध्याननिष्ठो गुणातिगः ॥ एते गृहविरक्तास्तु चत्वारो द्विजसूनवः ॥१०॥ चतुर्थाश्रमापन्नाः सर्वकर्मसु निस्पृहाः ॥ अरण्यवासिनः सर्वे निःसंगा निःपरिग्रहाः ॥११॥

नामों के पाँच पुत्र अग्निहोत्र प्रिय थे, ये गृहस्थाश्रम में लग गये ॥ ९ ॥ निर्मोह, जितमाय, ध्याननिष्ठ और गुणातिग इन नामों के चार पुत्र विरक्त हो गये ॥ १० ॥ चतुर्थ आश्रम अर्थात् सन्यास लेकर सब काम से विरक्त होकर बिना संसर्ग और विवाह कर ये सब जंगल में रहने लगे ॥ ११ ॥ ये शिखा तथा यज्ञोपवीत न रक्खे हुए पत्थर और

सोने के समान जानने वाले थे; जो कोई अन्न वस्त्र देता था उसी को ये ग्रहण करते थे ॥ १२ ॥ ये लोग
प्रतिदिन सन्ध्या के समय ब्रह्मध्यान में लीन हो जाते थे, वात तथा शीत को सहने वाले इन लोगों ने निद्रा तथा
आहार पर अधिकार कर लिया था ॥ १३ ॥ विष्णु रूप से सब चर और अचर संसार को देखते हुए मौन धारण

निःशिखा नोपवीताश्च समलोष्टाश्मकाञ्चनाः ॥ येन केनचिदाच्छन्ना येन केनचिदाश्रिताः
॥१२॥ सायंगृहास्तथा नित्यं ब्रह्मध्यानपरायणाः ॥ जितनिद्रा जिताहाराः वातशीतसहिष्णवः
॥१३॥ पश्यन्तो विष्णुरूपेण जगत्सर्वं चराचरम् ॥ चरन्ति लीलया पृथ्वीमन्योन्यं मौन-
मास्थिताः ॥१४॥ न कुर्वन्ति क्रियां किञ्चिदणुमात्रं हि योगिनः ॥ दृढज्ञाना असन्देहाश्चिद्विचार-
विशारदाः ॥१५॥ एवं ते तव विप्रस्य पूर्वमष्टमजन्मनि ॥ तिष्ठतो मध्यदेशेषु पुत्रदारकुटुम्बिनः
॥१६॥ गेहं तावत् समाजग्मुर्मध्याह्ने क्षुत्पिपासिताः ॥ वैश्यदेवान्तरे काले त्वया दृष्टा गृहाङ्गणे

किये हुए ये आनन्द से पृथ्वी पर घूमते थे ॥ १४ ॥ ये योगी किंचित् मात्र भी क्रिया नहीं करते थे, ये दृढ़ज्ञानी, सन्देह
रहित तथा विचार में प्रवीण थे ॥१५॥ इस प्रकार तुम्हारे आठवें जन्म के मध्य में मध्यदेश में पुत्र, पत्नी और कुटुम्बी थे
॥ १६ ॥ मध्याह्न के समय भूखे प्यासे तुम्हारे घर में आये, वैश्यदेव के अनन्तर तुमने इनको घर के आँगन में देखा

॥ १७ ॥ गद्‌गद कण्ठ से, आँखों मे आँसू भरे हर्ष तथा संभ्रम सहित देवता के समान दण्डवत् करके तुमने इनका बड़ा सम्मान किया ॥ १८ ॥ इनके चरण का स्पर्श करके हाथ जोड़ कर मीठी वाणी से तुमने इन लोगों का अभिनन्दन किया ॥ १९ ॥ और कहा आज मेरा जन्म तथा जीवन सफल हुआ, आज मुझ पर विष्णु भगवान् प्रसन्न

॥१७॥ सगद्‌गदं साश्रुनेत्रं सहर्षं च ससम्भ्रमम् ॥ देववत् प्रणिपत्यैवं बहुमानपुरःसरम् ॥१८॥ प्रणम्य चरणौ स्पृष्ट्वा कृत्वा पाणिपुटाञ्जलिम् ॥ त्वयाऽभिनन्दिताः सर्वे तदा सूनृतया गिरा ॥१९॥ अद्य मे सफलं जन्म जीवितं सफलं तथा ॥ अद्य विष्णुः प्रसन्नो मे सनाथोऽस्म्यद्य पावनम् ॥२०॥ धन्योऽस्मि मे गृहं धन्यं धन्या मेऽद्य कुटुम्बिनी ॥ ममाद्य पितरौ धन्यौ धन्या गावः श्रुतं धनम् ॥२१॥ यद्दृष्टौ भवतां पादौ तापत्रयहरौ मया ॥ भवतां दर्शनं यस्मात् धन्यं सर्वं हरेरिव ॥२२॥ एवं सम्पूज्य तेषां तु चरणक्षालनं त्वया ॥ धृतं मूर्ध्नि विशां श्रेष्ठ

हुए, मैं पवित्र होकर आज सनाथ हुआ ॥ २० ॥ मैं धन्य हूँ, मेरा घर धन्य है, आज मेरी कुटुम्बिनी (पत्नी) धन्य है, आज मेरे पिता, मेरी गाय, मेरी श्रुति (वेद) और धन सभी धन्य हैं ॥ २१ ॥ कि जो मैंने तीनों तापों के हरने वाले आपके चरणों का दर्शन किया, आपका दर्शन भगवान् हरि के दर्शन समान धन्य हैं ॥ २२ ॥ हे वैश्य

श्रेष्ठ ! इस प्रकार तुमने परम श्रद्धा से उनका पूजन करके उनके चरण धोये और मस्तक पर लगाया ॥ २३ ॥ सन्यासी के चरणों सा श्रेष्ठ जल पहिले के किये हुए पापों का नाश करता है, श्रद्धा पूर्वक इसको सिर पर रखने से सात जन्म के पाप सब धो जाते हैं ॥ २४ ॥ गन्ध, धूप अक्षत, पुष्प, तथा नीराजन से संस्कार किये हुए रत्नों से पूजन कर तुमने इन सन्यासियों को भोजन कराया ॥ २५ ॥ परमहंसों ने प्रसन्न होकर रात को तुम्हारे घर में विश्राम किया

श्रद्धया परया तदा ॥२३॥ याति पादोदकं श्रेष्ठं हन्ति पापं पुराकृतम् ॥ सप्तजन्मार्जितं सर्वं श्रद्धया शिरसा धृतम् ॥२४॥ गन्धधूपाक्षतैर्पुष्पैर्नीराजनपुरस्सरम् ॥ सम्पूज्य संस्कृतैरन्नैर्भोजिता यतयस्त्वया ॥२५॥ हृष्टाः परमहंसास्ते विश्रान्ता मन्दिरे निशि ॥ ध्यायन्तश्च परं ब्रह्म यज्ज्योतिर्ज्योतिषां मतम् ॥२६॥ तेषामातिथ्यजं पुण्यं यत्तवास्ति विशाम्पते ॥ न तद्वक्त्रसहस्रेणवक्तुं शक्तोऽस्म्यहं खलु ॥२७॥ भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां मतिजीविनः ॥ मतिमत्सु नरा श्रेष्ठा नरेषु ब्रह्मजातयः ॥२८॥ ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः ॥ कृतबुद्धिषु

और ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म के ध्यान में लग गये ॥ २६ ॥ हे वैश्यश्रेष्ठ ! इन सन्यासियों के अतिथि सत्कार का फल जो तुमको हुआ उसको मैं हजार मुख से भी नहीं कह सकता ॥ २७ ॥ भूतों में प्राणी श्रेष्ठ हैं, प्राणियों में बुद्धिवाले श्रेष्ठ हैं, मतिमानों में मनुष्य तथा मनुष्यों में ब्राह्मण जाति के लोग श्रेष्ठ हैं ॥ २८ ॥ ब्राह्मणों में विद्वान्, विद्वानों

में पुण्य बुद्धि देने वाले, कृत बुद्धियों में (पुण्य) करने वाले तथा पुण्य करने वालों में ब्रह्मवादी श्रेष्ठ हैं ॥ २९ ॥ अतएव तीनों जगत् में श्रेष्ठ ऐसे मनुष्य पूज्य हैं, हे वैश्यश्रेष्ठ ! ऐसे मनुष्यों की संगति बड़े बड़े पातकों को नाश करने वाली होती है ॥ ३० ॥ सत्त्व गुण में स्थित ऐसे ब्रह्मवादी जिस गृहस्थ के घर में विश्राम करते हैं उसके जन्म भरके संचित पाप को क्षण भर में नाश करते हैं ॥ ३१ ॥ तुमने अपने पहिले आठवें जन्म में यह पुण्य एकत्र किया था, यदि

कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवादिनः ॥२९॥ अत एव तु पूज्यास्ते तस्माच्छ्रेष्ठा जगत्त्रये॥ यत्संगति-र्विशां श्रेष्ठ महापातकनाशिनी ॥३०॥ विश्रान्ता गृहिणा गेहे सत्त्वस्था ब्रह्मवादिनः ॥ आज-न्मसञ्चितं पापं नाशयन्ति क्षणेन वै ॥ ३१ ॥ इति ते सञ्चित पुण्यं अष्टमे पूर्वजन्मनि ॥ स्वभ्रात्रे देहि तत्पुण्यं नरकाद्येन मुच्यते ॥३२॥ इति दूतवचः श्रुत्वा ददौ पुण्यं ससत्वरम् ॥ हृष्टेन चेतसा भ्राता निरयात् सोऽपि निर्गतः ॥ ३३ ॥ देवैस्तौ पुष्पवर्षेण पूजितौ तौ दिवं गतौ ॥ ताभ्यां च पूजितः सम्यक् गतो दूतो यथागतम् ॥ ३४ ॥ अखिलजनसुबोधं देव-

नरक से छुड़ाना चाहते हो तो अपने भाई को यह पुण्य दे दो ॥ ३२ ॥ दूत का ऐसा वचन सुनकर प्रसन्न चित्त होकर अपने भाई को उसने वह पुण्य दे दिया तब वह नरक से निकल आया ॥ ३३ ॥ देवता लोगों ने पुष्प वृष्टि से इन दोनों की पूजा किया और वे स्वर्ग में गये, इन दोनों से किये जाने पर दूत अपने स्थान को चला गया ॥ ३४ ॥

यह देवदूत का वाक्य सब मनुष्यों को वेद वाक्य समान बुद्धि देने वाला है, इसको वैश्य के पुत्र ने सुनकर, अपने किये हुए पुण्यों को भाई को देकर और उसको तार कर उसके साथ देवताओं के श्रेष्ठलोक (इन्द्रपुरी) में गया

दूतस्य वाक्यं निगमवचनतुल्यं वैश्यपुत्रो निशम्य ॥ स्वकृतसुकृतदानाद्भ्रातरं तारयित्वा सुरपतिवरलोकं तेन सार्धं जगाम ॥ ३५ ॥ इतिहासमिमं राजन् यः पठेच्छृणुयादपि ॥ स गोसहस्रदानस्य विपापो लभते फलम् ॥ ३६ ॥

इति श्री पद्मपुराणे उत्तरखण्डे माघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे श्रीकुण्डल-
विकुण्डलयोः स्वर्गगमनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

॥ ३५ ॥ राजन्! इस इतिहास को जो कोई सुनता या पढ़ता वह पाप रहित होकर हजार गोदान का पुण्य प्राप्त करता है ॥ ३६ ॥

श्री पद्मपुराण के माहात्म्य के वसिष्ठ और दिलीप के संवाद में श्री कुण्डल और विकुण्डल का
स्वर्ग गमन इस नाम सा तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १३ ॥

कार्तवीर्य ने कहा—हे विप्रवर ! हे सुव्रत ! किस कारण से माघस्नान का बड़ा अद्भुत प्रभाव कहा जाता है सो मुझसे अवश्य कहिये ॥ १ ॥ एक वैश्य जो माघस्नान के पुण्य से पाप रहित होकर दूसरे के साथ स्वर्ग में गया सो कैसे हुआ, यह जानने का मुझे बड़ा कौतूहल है कृपया मुझसे कहिये ॥ २ ॥ दत्तात्रेय जी ने कहा —हे पुरुषश्रेष्ठ ! जल स्वभाव से ही स्वच्छ, निर्मल, पवित्र, शुभ्र, मलनाशक तथा पापों को धोने वाला है ॥ ३ ॥ जल सब प्राणियों का

कार्तवीर्य उवाच ॥ हेतुना केन विप्रर्षे माघस्नाने महाद्भुतः ॥ प्रभावो वर्णिता नूनं तन्मे कथय सुव्रत ॥१॥ गतपापो यदेकेन द्वितीयेन दिवं गतः ॥ वैश्यो माघजपुण्येन तन्मे वद कुतूहलात् ॥२॥ दत्तात्रेय उवाच ॥ निसर्गात् सलिलं मेध्यं निर्मलं शुचि पाण्डुरम् ॥ मलहं पुरुष-व्याघ्र पातकद्रावणं तथा ॥३॥ तारकं सर्वभूतानां पोषकं जीवनं च तत् ॥ आपो नाराणा देवः सर्ववेदेषु पठ्यते ॥ ४ ॥ ग्रहाणां च यथा सूर्यो नक्षत्राणां यथा शशी ॥ मासानां च माघः श्रेष्ठः सर्वेषु कर्मसु ॥५॥ मकरस्थे रवौ माघे प्रातःकाले तथाऽमले ॥ गोःपदेऽपि जले स्नानं स्वर्गदं

पोषण करने वाला तथा जीवन और तारक है, जल नारायण देव है ऐसा सब वेदों में कहा है ॥ ४ ॥ जिस प्रकार ग्रहों में सूर्य तथा नक्षत्रों में चन्द्रमा में श्रेष्ठ है उसी प्रकार महीने में सब कार्य के लिए माघ मास श्रेष्ठ ॥ ५ ॥ मकर राशि के सूर्य में माघ मास में पवित्र प्रातःकाल में गाय के पैर डूबने योग्य जल में स्नान करने से पापियों

पापिनामपि ॥ ६ ॥ योगोऽयं दुर्लभो राजंस्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ अस्मिन् योगे त्वशक्तोऽपि स्नायादपि दिनत्रयम् ॥७॥ दद्यात् किञ्चिद्यथाशक्ति दरिद्राभावमिच्छता ॥ त्र्यहं स्नानेन माघे स्युर्धनिनो दीर्घजीविनः ॥८॥ पञ्च वा सप्त वोऽह्लानि चन्द्रवद्वर्धते फलम् ॥ सम्प्राप्ते मकरादित्ये पुण्ये पुण्यप्रदे नृणाम् ॥९॥ सत्कार्यास्तिथयः सर्वाः स्नानदानादिकर्मभिः ॥ कर्तारं प्रापयन्तीह सकलं शाश्वतं फलम् ॥१०॥ तस्मान्माघे बहिः स्नायादात्मनो हितवाञ्छया । अथातः सम्प्रवक्ष्यामि माघस्नानविधिं परम् ॥११॥ कर्तव्यो नियमः कश्चित् व्रतरूपो नरोत्तमैः ॥ फला-

को स्वर्ग मिलता है ॥ ६ ॥ हे राजन् ! चराचर त्रैलोक्य में ऐसा योग दुर्लभ है, आसक्त होकर यदि इस योग में तीन ही दिन कोई स्नान करे ॥ ७ ॥ तथा दरिद्रता के अभाव (धन की) इच्छा करता हुआ तथाशक्ति कुछ दान करे माघ मास में तीन दिन स्नान करने से मनुष्य दीर्घायु तथा धनी होता है ॥ ८ ॥ पाँच अथवा सात दिन (स्नान करने) से चन्द्रमा के समान इसका फल बढ़ता है, अति पुण्य देने वाले मकर राशि के सूर्य में मनुष्यों को ॥ ९ ॥ स्नान, दान इत्यादि क्रिया से सब तिथियों का सत्कार करना चाहिये, ऐसा करने वाले मुक्ति के सम्पूर्ण पद को अवश्य प्राप्त करते हैं ॥ १० ॥ अतएव अपना हित चाहने वाले को माघ मास में बाहर स्नान करना चाहिये, अब मैं तुमसे माघ स्नान की परम विधि को कहता हूँ ॥ ११ ॥ श्रेष्ठ मनुष्यों को व्रत रूप से कुछ नियमों का

पालन करना चाहिये, अधिक फल प्राप्त करने के निमित्त कुछ भोजन के पदार्थों का उपभोग करना चाहिये ॥ १२ ॥ भूमि पर सोना चाहिये, तिल मिलाकर घृत का हवन करना चाहिये, तथा सनातन वासुदेव भगवान् का नित्य त्रिकाल पूजन करना चाहिये ॥ १३ ॥ भगवान माधव का अर्पण करते हुए अखण्ड दीपदान करना चाहिये, इन्धन, वस्त्र, कम्बल जूता, कुंकुम, घृत ॥ १४ ॥ हे निराधिप ! माघ मास में यथाशक्ति तेल, कपास कोठा, रूई, पेत्नी वस्त्र तथा अन्न देना

तिशयहेतोर्हि किंचिद्भोज्य त्यजेद्बुधः ॥१२॥ भूमौ शयीत होतव्यमाज्यं तिलविमिश्रितम् ॥ त्रिकालं चार्चयेन्नित्यं वासुदेवं सनातनम् ॥ १३ ॥ दातव्यो दीपकोऽखण्डो देवमुद्दिश्य माधवम् ॥ इन्धनं कम्बलं वस्त्रमुपानत् कुङ्कुमं घृतम्॥१४॥ तैलंकर्पासकोष्ठं च तूलं तूलवटी पटी ॥ अन्नं चैव यथाशक्त्या देयं माघे नराधिप ॥१५॥ स्वर्णं च रत्तिकामात्रं देयं वेदविदे तथा तद्दानमक्षयं राजन् समुद्र इव सर्वदा ॥ १६ ॥ परस्याग्निं न सेवेत त्यजेद्विप्रः प्रतिग्रहम् माघान्ते भोजयेद्विप्रान् यथाशक्ति नराधिपः ॥ १७ ॥ देया च दक्षिणा तेभ्य आत्मनः श्रेय

चाहिये ॥ १५ ॥ वेद में निपुण (ब्राह्मण) को रत्ती भर भी स्वर्ण देना उचित है, हे राजन् ! यह दान समुद्र के समान सर्वदा अक्षय रहता है अर्थात् इसका कभी नाश नहीं होता ॥ १६ ॥ दूसरे की अग्नि न तापै, ब्राह्मण दान न ले माघमास के अन्त में हे राजन् ! ब्राह्मणों यथाशक्ति भोजन करावे ॥ १७ ॥ अपने कल्याण की इच्छा करता हुआ इनको दक्षिणा

दे तथा एकादशी विधि से माघ स्नान का उद्यापन करे ॥ १८ ॥ इसको स्वर्ग की इच्छा करता हुआ श्रद्धा पूर्वक करे,
मकर के सूर्य में माघ मास में, हे गोविन्द, हे अच्युत, हे माधव ॥ १६ ॥ हे देव ! इस स्नान से मुझको यथोक्त फल
दीजिये, मौन रहकर इस मन्त्र का उच्चारण करे ॥ २० ॥ फिर वासुदेव, हरि, कृष्ण, तथा माधव भगवान् का स्मरण करे
जो मनुष्य घर में गरम जल से स्नान करते हैं ॥ २१ ॥ वह मकर के सूर्य में किया गया स्नान छ बरस के स्नान का फल

इच्छता ॥ एकादशीविधानेन माघस्योद्यापनं तथा ॥ १८ ॥ कर्तव्यं श्रद्दधानेन अक्षय्यस्व-
र्गवाञ्छया ॥ मकरस्थे रवौ माघे गोविन्दाच्युत माधव ॥१६॥ स्नानेनानेन भो देव यथोक्त-
फलदो भव ॥ इमं मन्त्रं समुच्चार्य स्नायान्मौनसमन्वितः ॥२०॥ वासुदेवं हरिं कृष्णं माधवं च
स्मरेत् पनः॥ तप्तेन वारिणा स्नानं यद्‌गृहे क्रियते नरैः ॥२१॥ षडब्दफलदं तद्धि मकरस्थे दिवा-
करे ॥ बहिःस्नानं तु वाप्यादौ द्वादशाब्दफलं स्मृतम् ॥ २२ ॥ तडागे द्विगुणं राजन् नद्यां
तच्च चतुर्गुणम् ॥ दशधा देवखातेषु शतधा च महानदे ॥ २३ ॥ शतं चतुर्गुणं राजन्

देता है, बाहर बावली इत्यादि में स्नान करना बारह बरस का फल देता है ॥ २२ ॥ हे राजन् ! तालाब में स्नान करने
से दूना फल तथा नदी में स्नान करने से चौगुना फल, देवहृद में दश गुना, महानद में सौगुना फल होता है ॥२३ ॥
हे राजन् ! बड़ी नदियों के संगम में स्नान करने से चार सौ गुनो फल होता है, मकर के सूर्य में स्नान करने से यही फल

हजार गुना होता है ।। २४ ।। गंगाजी में स्नान करने से ही मनुष्य इन फलों को प्राप्त करता है। परन्तु हे नरोत्तम । जो लोग माघ महीने में गंगाजी में स्नान करते हैं ।। २५ ।। वे चार हजार युग तक स्वर्ग से नहीं गिरते, हे राजन् ! माघ में स्नान करने से सौगुना हजार गुना फल होता है ।। २६ ।। ऋषियों ने कहा है कि जो कोई गङ्गा या यमुना के सङ्गम में स्नान करता है हे वैश्यवर ! वह प्रतिदिन हजार स्वर्ण मुद्रा दान का फल पाता है ।। २७ ।। माघ मास में गङ्गाजी में

गंगायां स्नानमात्रेण महानद्याश्च संगमे ।। सहस्रगुणितं सर्वं तत्फलं मकरे रवौ ।। २४ ।। चतुर्युगसहस्रेण लभते पुरुषो नृप ।। गंगां ये चावगाहन्ति माघे मासि नृपोत्तम ।। २५ ।। निर्दिष्टमृषिभिः स्नानं न पतन्ति सुरालयात् ।। शतेन गुणितं माघे सहस्रं राजसत्तम ।।२६।। तेन दत्तं हि गंगायां यो गंगायमुनसंगमे ।। दिने दिने सहस्रं तु सुवर्णानां विशाम्पते ।।२७।। अनड्वाहां सहस्रं तु कपिलानि युतं तथा ।।२८।। माघे स्नाति मानवः ।।

।। इति श्री पद्मपुराणे माघमाहात्म्ये चतुर्दशोऽध्यायः ।। १४ ।।

स्नान करके भी यही फल पाता है, माघ मास में गंगाजी में स्नान करने वाला मनुष्य हजार कपिला गौ के दान देने का फल प्राप्त करता है ।। २८ ।।

श्री पद्मपुराण के माघमाहात्म्य का चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।। १४ ।।

माघ मास में गङ्गा यमुना के संगम में स्नान करने से अवश्य प्राप्त होता है। पृथ्वी पर जितने तीर्थ तथा नदियाँ प्रसिद्ध (कहीं) हैं ॥ १३ ॥ हे राजन् ! वे सब माघ महीने में त्रिवेणी में स्नान करने के लिये आती हैं, सब तीर्थ पापियों के संगदोष से कलुषित हो जाते हैं ॥ १४ ॥ माघ महीने में स्नान करने से वे सब पाप हट जाते हैं ॥ १५ ॥ हे राजन् ! कल्प पर्यन्त जन्मों में संचित किये हुए मनुष्यों के पाप, गंगा यमुना के सङ्गम में माघमास में स्नान करने

सितासिते च माघे तु स्नातानां भवति ध्रुवम् ॥ पृथिव्यां योनि तीर्थानि सरितश्चैव याः स्मृताः ॥ १३ ॥ स्नातुमायान्ति ता वेण्यां माघे मासि नराधिप ॥ सर्वतीर्थानि कृष्णानि पापानां संगदोषतः ॥ १४ ॥ भवन्ति शुक्लवर्णानि प्रयागे माघमज्जनात् ॥ आकल्पजन्मभिः पापं सञ्चितं यन्नरैर्नृप ॥ १५ ॥ तद्भवेद्भस्मसन्माघे स्नातानां च सितासिते ॥ वाङ्मनः-कायजं पापं नरस्य सुदृढं भवेत् ॥१६॥ प्रयागे माघमासे तु त्र्यहं स्नातस्य तत्क्षयः ॥ प्रयागे माघमासे यः त्र्यहं स्नाति स मानवः ॥ १७ ॥ पापं त्यक्त्वा दिवं याति जीर्णत्वचमिवोरगः ।

से भस्म हो जाते हैं। वाणी, मन, तथा शरीर से किये हुए जो पाप मनुष्यों के दृढ़ होते हैं ॥ १६ ॥ वे भी प्रयाग में माघ महीने में तीन दिन स्नान करने से क्षय को प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य माघ मास में प्रयाग में स्नान करता है ॥ १७ ॥ वह जिस प्रकार सर्प पुरानी केचुली छोड़ता है उसी प्रकार पापों को त्याग कर स्वर्ग में जाता है, कुरुक्षेत्र के

सदृश गङ्गाजी में जहाँ कहीं स्नान करे ॥ १८ ॥ उससे दस गुना फल वहाँ मिलता है जहाँ पर गङ्गाजी विन्ध्य पर्वत से मिली हैं, इससे भी सौगुना फल काशी की उत्तर वाहिनी गंगाजी (में स्नान करने से) होता है ॥ १६ ॥ काशी से भी सौगुना फल गंगा यमुना के संगम में होता है, तथा इससे भी हजार गुना फल (वहाँ स्नान करने से) होता है जहाँ गंगाजी पच्छिम वहती है ॥ २० ॥ हे राजन् ! वहाँ गंगाजी दर्शन मात्र से ब्रह्महत्या इत्यादि पापों

कुरुक्षेत्रसमा गंगा यत्र कुत्रावगाहिता ॥१८॥ तस्माद्दशगुणा प्रोक्ता यत्र विन्ध्येन सगता ॥ तस्माच्छतगुणा गगा काश्यामुत्तरवाहिनी ॥ १६ ॥ काश्याः शतगुणा प्रोक्ता गगायमुन-सगमे ॥ सहस्रगुणिता सापि भवेत्पश्चिमवाहिनी ॥२०॥ सा राजन् दर्शनादेव ब्रह्महत्यापहा-रिणी ॥ पश्चिमाभिमुखी गंगा कालिन्द्या सह सगता ॥२१॥ हन्ति कल्पकृत पापं सा माघे नृप दुर्लभा ॥ अमृत कथ्यते राजन् सा वेणी भुवि कीर्तिता ॥ २२ ॥ तस्यां माघे मुहूर्तोऽपि

को नाश करने वाली हैं, पच्छिम में बहने वाली गंगाजी का जहाँ पर कालिन्दी नदी से संगम हुआ है ॥ २१ ॥ वहाँ पर दुर्लभ संगम में माघ मास में स्नान करने से कल्प तक किये हुए पाप नाश होते हैं । हे राजन् ! जिसको अमृत कहते हैं वही संसार में त्रिवेणी कहलाती है ॥ २२ ॥ माघ मास में क्षण मात्र के लिये भी देवताओं

को भी दुर्लभ है, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, रुद्र, आदित्य, मरुत् गण ॥ २३ ॥ गन्धर्व, लोकपाल, यक्ष, गुह्यक, किन्नर तथा अणिमा गुणों से सिद्ध तत्त्वज्ञानी लोग ॥ २४ ॥ ब्रह्माणी, पार्वती, लक्ष्मी, शची, मेना (हिमाचल की पत्नी) दिति, अदिति, रति सभी देवपत्नियाँ, तथा नागों की स्त्रियां ॥ २५ ॥ घृताची, मेनका, रम्भा, उर्वशी, तिलोत्तमा, अप्सरा-

देवानामपि दुर्लभः ब्रह्मा विष्णुर्महादेवो रुद्रादित्यमरुद्गणाः ॥ २३ ॥ गन्धर्वा लोकपालाश्च यक्षगुह्यककिन्नराः ॥ अणिमादिगुणाः सिद्धा ये चान्ये तत्त्वदर्शिनः ॥२४॥ ब्रह्माणी पार्वती लक्ष्मीः शची मेनाऽदितिर्दितिः ॥ सर्वास्ता देवपत्न्यश्च तथा नागांगना नृप ॥२५॥ घृताची मेनका रम्भा उर्वशी च तिलोत्तमा ॥ गणाश्चाप्सरसां सर्वे पितृणां च गणास्तथा ॥ २६ ॥ स्नातुमायान्ति ते सर्वे माघे वेण्यां नराधिप ॥ कृतादिषु स्वरूपेण कलौ प्रच्छन्नरूपिणा ॥२७॥ प्रयागे माघमासे तु त्र्यहं स्नातस्य तद्भवेत् ॥ तद्वक्तुमीश्वरो वेत्ति मद्विधैः किन्नु कथ्यते ॥२८॥

गण, तथा सब पितर लोग ॥ २६ ॥ हे राजन् ! सभी माघ में त्रिवेणी में कलियुग में छिपे रूप में स्नान करने के लिये आते हैं ॥ २७ ॥ प्रयाग में माघ मास में तीन दिन स्नान करने से जो फल होता है उसका फल ईश्वर ही जानता है, हमारे सदृश लोग नहीं कह सकते ॥ २८ ॥ संसार में हजार अश्वमेध करने पर भी वह फल प्राप्त नहीं हो सकता

प्राचीन काल में माघ मास में तीन दिन स्नान करने का फल ॥ २९ ॥ हे राजन् ! राक्षस को दिया था उससे वह पापी मुक्त हुआ था, इसके करने से मनुष्य पापों से मुक्त होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ३० ॥ जो मनुष्य

नाश्वमेधसहस्रेण तत्पुण्यं लभते भुवि ॥ त्र्यहस्नानफलं माघे पुरा काञ्चनमालिनी ॥ २९ ॥
राक्षसाय ददौ भूप तेन मुक्तः स पापकृत् ॥ यत्कृत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥३०॥
यः शृणोति नरो भक्त्या विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ३१ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे माघमाहात्म्ये प्रयागस्नानप्रशंसा नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इस माहात्म्य को भक्ति पूर्वक सुनता है वह विष्णुलोक को जाता है ॥ ३१ ॥

श्री पद्मपुराण के माघमाहात्म्य में प्रयाग स्नान की प्रशंसा नामक पंद्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १५ ॥

कार्तवीर्यजी ने कहा—हे भगवन् ! यह राक्षस कौन था और कांचनमालिनी कौन थी, उसने अपना धर्म कैसे दिया और इन दोनों का साथ कैसे हुआ ॥१॥ हे ब्रह्मन् ! हे ऋषि अत्रि के सन्तानों में सूर्य ! यदि आप मुझे योग्य समझते हों तो इस मेरे कौतूहल को पूर्ण करते हुए कहिये ॥ २ ॥ दत्तात्रेयजीने कहा—हे राजन् ! इस विचित्र पुराने इतिहास

कार्तवीर्य उवाच ॥ भगवन् राक्षसः कोऽसौ का सा काञ्चनमालिनी ॥ कथं दत्तवती धर्मं कथं वा संगतिस्तयो ॥ १ ॥ एतत्कथय मे ब्रह्मन्नत्रिसन्तानभास्कर ॥ यदि त्वं मन्यसे योग्य परं कौतूहलं हि मे ॥२॥ दत्तात्रेय उवाच ॥ शृणु राजन् विचित्रं त्वमितिहास पुरातनम् यस्य श्रवणमात्रेण वाजपेयफलं लभेत् ॥३॥ अप्सरा रूपसम्पन्ना नाम्ना काञ्चनमालिनी ॥ प्रयागे माघमासे सा स्नात्वा याति हरालयम् ॥ ४ ॥ निकुञ्जे गिरिराजस्य तिष्ठता घोररूपिणा ॥ तुष्टा गगनमारूढा तेन वृद्धेन राक्षसा ॥ ५ ॥ तेजस्विनी सुहेमाभा सुश्रोणी दीर्घलो-

को सुनो, जिसके सुनते ही वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ कांचन मालिनी नाम की एक बड़ी रूपवती अप्सरा थी, प्रयाग में माघ महीने में वह स्नान करके शिवजी के मन्दिर में जा रही थी ॥ ४ ॥ गिरिराज हिमालय के कुंज में घोररूप में वह (राक्षस) खड़ा, था उस वृद्ध राक्षस ने आकाश मार्ग से जाती हुई ॥ ५ ॥ उस तेजस्विनी, सुवर्ण की

शोभा वाली, सुन्दर कटि वाली, बड़ी बड़ी आँख वाली, चन्द्रमुखी, सुन्दर बाल तथा पीन पयोधर वाली अप्सरा को देखा ॥ ६ ॥ रूप सम्पन्न उसको देख कर ब्रह्मराक्षस ने कहा। राक्षस बोला—हे चन्द्रानने ! हे सुकेशी, हे पीन पयोधरे ! हे कमल के पत्र के समान आँखों वाली ! तुम कौन हो और कहाँ से आती हो ॥ ७ ॥ तुम्हारा वस्त्र क्यों

चना ॥ चन्द्रानना सुकेशी च पीनोन्नतपयोधरा ॥ ६ ॥ तां दृष्ट्वा रूपसम्पन्नामुवाच ब्रह्मराक्षसः ॥ राक्षस उवाच ॥ चन्द्रानना सुकेशी च पीनोन्नतपयोधरा ॥ का त्वं कमलपत्राक्षी कुत आगम्यते त्वया ॥७॥ आर्द्रं च वसनं कस्मादार्द्रा च कबरी कुतः ॥ कुत्र वा गम्यते भीरु कुतस्ते खेचरी गतिः ॥८॥ केन पुण्येन ते भद्रे महत्तेजोमयं वपुः ॥ अतीव रूपसम्पन्नं सम्भूतं च मनोहरम् ॥६॥ त्वद्वस्त्रबिन्दुपातेन मम मूर्ध्नि सुलोचने ॥ क्षीणेन ह्यगमच्छान्तिं क्रूरं मे मानसं सदा ॥ १० ॥ नीरस्य महिमा कोऽयमेतद्व्याचष्टुमर्हसि ॥ त्वं मे शीलवती भासि

भीगा है और तुम्हारा कबरी क्यों गीली है, हे भीरु ! तुम आकाश मार्ग से कहाँ जाती हो ॥ ८ ॥ हे भद्रे ! किस पुण्य से यह तुम्हारा अति तेजस्वी शरीर और अद्वितीय मनोहर रूप है ॥ ६ ॥ हे सुलोचने ! मेरे मस्तक पर तुम्हारे वस्त्र से गिरे हुए एक बूँद जल से मेरा मन जो सर्वदा क्रूर रहता था क्षण भर में शान्त हो गया ॥ १० ॥ इस जल की

क्या महिमा है तुम कह सकती हो, तुम मुझको शीलवती जान पड़ती हो, तुम्हारी आकृति बिना गण की न होगी
॥ ११ ॥ अप्सरा ने कहा—हे राक्षस ! सुनो मैं कामरूपिणी अप्सरा हूँ, मेरा नाम कांचन मालिनी है, मैं प्रयाग से
आती हूँ ॥ १२ ॥ गङ्गा यमुना के संगम में भली भाँति स्नान करने से मेरे वस्त्र भींगे है, हे राक्षस ! मैं उत्तम पर्वत
कैलास पर जा रही हूँ ॥ १३ ॥ वहाँ पर देवता तथा दैत्यों के नमस्कार किये जाने वाले पार्वतीपति रहते हैं, त्रिवेणी

नाकृतिनिर्गुणा भवेत ॥ ११ ॥ अप्सरा उवाच ॥ श्रूयतामप्सराश्चाहं भो रक्षः कामरूपिणी ॥
प्रयागतो ह्यागताऽहं नाम्ना काञ्चनमालिनी ॥१२॥ आर्द्रं च परिधानं मे सुस्नाताऽहं सिता-
सिते ॥ गन्तव्यश्च मया रक्षः कैलासः पर्वतोत्तमः ॥ १३ ॥ तत्राऽऽस्ते पार्वतीनाथः सुरा-
सुरनमस्कृतः ॥ वेणीवारिप्रभावेण रक्षस्ते क्रूरता गता ॥१४॥ जाताऽहं येन पुण्येन गन्धर्वस्य
सुमेधसः ॥ पुत्री च संगता रक्षः उमायाश्च प्रिया सखी ॥१५॥ एतदुक्तं मया रक्षः कथ्यतेऽत्र
पुराभवः ॥ अत्याश्चर्यकरं वृत्तं शृणुष्वाऽवहितो मम ॥१६॥ कलिङ्गाधिपतेः राज्ञः अहमासं

के जल से हे राक्षस ! तेरी क्रूरता निकल गई ॥ १४ ॥ जिस पुण्य के प्रभाव से मैं सुबुद्धि गन्धर्व की कन्या उत्पन्न
हुई तथा हे राक्षस ! उमा की प्रिय सखी हुई ॥ १५ ॥ वह हे राक्षस ! ब्रह्माजी ने मुझसे कहा था,
वह मेरा आश्चर्य करनेवाला वृत्तान्त सुनो ॥ १६ ॥ मैं कलिंग देश के राजा को वेश्या थी

रूप तथा लावण्य से सम्पन्न, सौभाग्य तथा मद से गर्वित ॥ १७ ॥ अन्य युवतियों में से उस पुर शिरोमणि थी, हे राक्षस ! उस जन्म में मैंने इच्छा पूर्वक भोग भोगा ॥ १८ ॥ मेरी यौवन (रूपी) संपत्ति से वह संम्पूर्ण नगर मोहित था, अमूल्य वस्त्र, आभूषण तथा धन ॥ १९ ॥ नाना प्रकार के पोशाग, कपूर, अगरु, चन्दन मैंने अपनी मोहनी रूप से

विलासिनी ॥ रूपलावण्यसम्पन्ना सौभाग्यमदगर्विता ॥१७॥ अन्यासां युवतीनां च तत्पुरेऽहं शिरोमणिः ॥ तज्जन्मनि मया रक्षो भुक्त्वा भोगान्यथेच्छया ॥१८॥ मोहितं तत्पुरं सर्वं मया यौवनसम्पदा ॥ अमूल्यानि च वस्त्राणि भूषणानि धनानि च ॥१९॥ वासांसि च विचित्राणि कर्पूरागुरुचन्दनम् ॥ एतच्चोपार्जितं सर्वं मया मोहनरूपया ॥ २० ॥ नाहं जानामि हेम्नोऽन्तं स्वनिवासे निशाचर ॥ संसेवन्ते युवानो मे चरणौ कामपीडिताः ॥ २१ ॥ मया ते वञ्चिताः सर्वे सर्वस्वेन तु मायया ॥ अन्योऽन्यं सेर्ष्यभावेन मृताः केचित्तु कामिनः ॥२२॥ इत्थं तन्नगरे रम्ये स कालो मे गतस्तदा ॥ प्राप्ते तु वाधके काले शुशोच हृदयं मम ॥२३॥ न दत्तं न हुतं

प्राप्त किये ॥ २० ॥ हे राक्षस ! मैंने अपने निवास स्थान में सुवर्ण का अन्त न जाना, कामपीड़ित युवा पुरुष मेरे चरणों की सेवा करते थे ॥ २१ ॥ मैंने इन सबका सर्वस्व हरण कर लिया, कोई कोई कामी लोग आपस में स्पर्धा करके मृत्यु को प्राप्त हो गये ॥ २२ ॥ इस प्रकार उस रमणीक नगर में मेरा समय बीता, वृद्धावस्था प्राप्त होने पर मैंने अपने मन में विचार किया ॥ २३ ॥ कि मैंने न तो दान किया, न तप किया और न चतुर्वर्ग के

फल देने वाले महादेवजी की मैंने आराधना किया ॥ २४ ॥ न मैंने दुर्गति हरने वाली दुर्गा देवी की पूजा किया और न भोग में लुब्ध होकर मैंने सब पापों को हरने वाले विष्णु भगवान् की आराधना किया ॥ २५ ॥ न तो ब्राह्मणों को तृप्त किया; न तो प्राणियों का हित किया, प्रमाद के कारण मैंने किंचित् मात्र भी पुण्य न किया ॥ २६ ॥ मैंने बहुतेरे पाप

तप्तं न व्रतं चरितं मया ॥ नाराधितो महादेवश्चतुर्वर्गफलप्रदः ॥ २४ ॥ न मया पूजिता
देवी दुर्गा दुर्गार्तिहारिणी ॥ सर्वपापहरो विष्णुर्न स्मृतो भोगलुब्धया ॥ २५ ॥ न च
सन्तर्पिता विप्रा न कृतं प्राणिनां हितम् ॥ अणुमात्रं मया पुण्यं न कृतं च प्रमादतः ॥२६॥
पातकं च कृतं भूरि तेन मे दह्यते मनः ॥ बहुधैव विलप्याऽहं ब्राह्मणं शरणं गता ॥२७॥
ब्रह्मज्ञं वेदविद्वांसं तस्य राज्ञः पुरोधसम् ॥ स हि पृष्टो मया रक्षः कथं मे निष्कृतिर्भवेत् ॥२८॥
पापस्यास्य द्विजश्रेष्ठ कथं यास्यामि सद्गतिम् ॥ स्वेनैव कर्मणा तप्तां वराकीं दीनमानसाम् ॥२९॥

किये इसी से मेरा मन दहकता है, इस प्रकार बहुत सा विलाप करके मैं ब्राह्मणों की शरण में गई ॥ २७ ॥ वह ब्राह्मण ब्रह्मज्ञ, वेद निपुण तथा राजा का पुरोहित था तथा, हे राक्षस ! उस ब्राह्मण से मैंने पूछा कि मेरा निस्तार किस प्रकार से होगा ॥२८॥ हे विप्रवर ! कहिये मेरी सद्गति किस प्रकार होगी, अपने ही कर्म से तपी हुई मुझ दीन चित्तवाली त्रिचारी ॥ २९ ॥ पाप (रूपी) कीचड़ में डबी हुई मुझको झोंटा पकड़ कर उबारिये, हे ब्राह्मण ! हर्ष की दृष्टि से मुझ पर दया के जल

की वर्षा कीजिये ॥ ३० ॥ साधु सज्जन भले बुरे सभी पर दया करते हैं, क्षीर सागर हंस को दूध देता है क्या बत्तक को नहीं देता ? ॥ ३१ ॥ इस प्रकार मेरे वचन को सुनकर उन्होंने मुझ पर दया किया, और उस ब्राह्मण ने प्रीति पूर्वक सब धर्मों से पूर्ण वाक्य मुझसे कहा ॥ ३२ ॥ ब्राह्मण ने कहा—हे सुमुखि ! मैं तेरे सब निषिद्ध आचरणों को

पापपङ्कनिमग्नां त्वं मामुद्धर कचग्रहैः ॥ मयि कारुण्यजं वारिवर्षं हर्षदृशा द्विजः ॥ ३० ॥ सज्जने साधवः सर्वे साधुः साधुरसज्जने ॥ क्षीरार्णवः पयोदाता हंसाय न बकाय किम् ॥३१॥ इत्यसौ मद्वचः श्रुत्वा चकारानुग्रहं मयि॥ ऊचे प्रीतिकरं वाक्यं सर्वधर्ममयं द्विजः ॥ ३२ ॥ द्विज उवाच ॥ निषिद्धाचरणं जाने सर्वं तेऽहं वरानने ॥ कुरु मे सत्वरं वाक्यं याहि क्षेत्रं प्रजापतेः ॥३३॥ तत्र गत्वा कुरु स्नानं तेन पापक्षयस्तव ॥ नाहमन्यत् प्रपश्यामि यत्ते पाप-प्रणाशनम् ॥३४॥ प्रायश्चित्तं परं तीर्थं स्मृतं नान्यन्महर्षिभिः ॥ किन्तु तीर्थे त्यजेद्भीरु मनसाऽप्यशिवां क्रियाम् ॥ ३५ ॥ प्रयागस्नानशुद्धा त्वं स्वर्गं यास्यति निश्चितम् ॥ प्रयागस्नान-

जानता हूँ, तू मेरी बात मान, शीघ्र ही प्रजापति के स्थान में जा ॥ ३३ ॥ वहाँ पर जाकर स्नान कर, इससे तेरे पाप नष्ट होंगे, तेरे पापों को नाश होने की और कोई विधि मैं नहीं देखता ॥ ३४ ॥ महर्षियों ने तीर्थ स्नान करने के सिवाय दूसरा कोई प्रायश्चित नहीं कहा है, परन्तु हे भीरु ! तीर्थ में मन से भी अशुभ क्रिया मत करना ॥ ३५ ॥

प्रयाग में स्नान करने से शुद्ध होकर तू अवश्य स्वर्ग म जायगी, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि प्रयाग में स्नान मात्र से मनुष्य स्वर्ग में जाता है ॥ ३६ ॥ हे भामिनी ! दूसरे देश में किये हुए पाप उसी क्षण प्रयाग में नाश होते हैं बिना तीर्थ में स्नान किये हुए पाप नष्ट नहीं होते ॥ ३७ ॥ हे भीरु ! सुनु, प्राचीन समय में गौतम मुनि की स्त्री को देखकर

मात्रेण नृणां नाको न संशयः ॥३६॥ अन्यदेशकृतं पापं तत्क्षणादेव भामिनि ॥ प्रयागे विलयं याति पापं तीर्थकृतं विना ॥ ३७ ॥ शृणु भीरु पुरा शक्रो गौतमस्य मुनेर्वधूम् ॥ दृष्ट्वा कामवशं प्राप्तस्तां गतो गुप्तकामुकः ॥३८॥ तेनैवोग्रेण पापेन तदैव जनितं फलम् ॥ ऋषिस्त्रीगन्तुरिन्द्रस्य तस्याश्च पुरतस्तदा ॥३९॥ कुरूपं गर्हितं जातं अतिलज्जाकरं वपुः ॥ तद्भर्तुः शापमाहात्म्यात् सहस्रभागचिह्नितम् ॥४०॥ अधोमुखस्तदा भूत्वा देवराजो विनिर्गतः॥ विनिन्दन् स्वकृतं कर्म सोऽभिभूतस्तु लज्जया ॥ ४१ ॥ मेरोः शिरसि तोयाढ्ये शतयोजनविस्तरे ॥ तत्र गत्वा प्रवि-

इन्द्र काम वश हुआ, तब अपने काम को छिपाते हुए उसके पास गया ॥ ३८ ॥ इस बड़े पाप का उसको उसी क्षण फल मिला, ऋषी की स्त्री के समीप जाने से इन्द्र का ॥ ३९ ॥ शरीर अति लज्जायुक्त, निन्दित और कुरुप हो गया, उसके पति के शाप की महिमा से इन्द्र के शरीर में हजारों भग के चिह्न हो गये ॥ ४० ॥ तब मुँह नीचा करके देवराज इन्द्र चला गया, लज्जा से युक्त होकर अपने कर्म की निन्दा करने लगा ॥ ४१ ॥ मेरु पर्वत के शिखर पर सौ योजन

लम्बा एक सुन्दर जल से परिपूर्ण सरोवर था वहाँ जाकर वह सुवर्ण कमल से परिपूर्ण कोटर में घुस गया ॥ ४२ ॥ वहाँ बैठकर अपनी तथा कामदेव को निन्दा करने लगा; तत्काल पाप देने वाली कामता को धिक्कार है ॥ ४३ ॥ इसी के पाप से निन्दित होकर सब लोग नरक में जाते हैं। आयुष्य, कीर्ति, धर्म, यश तथा धैर्य को सर्वदा नाश करने करने वाले ॥ ४४ ॥ दुराचारी कामदेव को धिक्कार; यह आपत्ति का नियत स्थान है देह में स्थित, दुःख से दमन करने

ष्टस्तु हेमाम्भोरुहकोटरे ॥ ४२ ॥ तत्रस्थो गर्हयन्नित्यमात्मानं मन्मथं तथा ॥ धिक्तां सकामतां लोके सद्यः पातकदायिनीम् ॥ ४३ ॥ पापेन नरकं याति सर्वलोकविगर्हितः ॥ आयुःकीर्तिर्यशोधर्मधैर्यध्वंसकरं सदा ॥ ४४ ॥ धिङ्मन्मथं दुराचारमापदां नियतं पदम् ॥ देहस्थं दुर्दमं शत्रुमसन्तुष्टं सदाऽशिवम् ॥४५॥ इत्थं वादिनि प्रच्छन्ने वासवे पद्मवासिनि ॥ आखण्डलं विना भीरु देवलोको न शोभते ॥ ४६ ॥ तदा देवाः सगन्धर्वा लोकपालाः सकिन्नराः ॥ शच्या सह समागन्य पप्रच्छुस्ते बृहस्पतिम् ॥४७॥ भगवन् बलभिद्देवो नैव जानीमहे वयम् ॥

योग्य, शत्रु, असन्तुष्ट तथा सर्वदा अकल्याण करने वाला ॥ ४५ ॥ पद्म से छिपे हुए स्थान में इन्द्र इस प्रकार कह रहे थे; हे भीरु ! इन्द्र के बिना देवलोक की शोभा नहीं होती ॥ ४६ ॥ तब देवता, गन्धर्व, किन्नर, लोकपाल इन्द्राणी (शची) के साथ जाकर बृहस्पति से पूछने लगे ॥ ४७ ॥ हे भगवान् ! हम लोगों को नहीं मालूम कि इन्द्र

कहाँ गये, हम लोग उनको कहाँ खोजैं ॥ ४८ ॥ देवगण से युक्त उनके बिना स्वर्ग वैसे ही शोभा नहीं देता जैसे श्रेष्ठ कुल पुत्र के बिना नहीं सोभता ॥ ४९ ॥ ऐसा उपाय विचारिये जिससे स्वर्गलोक सुशोभित होवे और क्रिया युक्त होकर सनाथ हो जावे, अब इस विषय में देर न करना चाहिये ॥ ५० ॥ इन लोगों का ऐसा वचन सुनकर बृहस्पति ने कहा—

क्व तिष्ठति गतः कुत्र कुत्र वा मृगयामहे ॥ ४८ ॥ न नाकः शोभते तेन विना देवगणैः सह ॥ सुपुत्रेण विना यद्वत्कुलं श्रीमद्गुणान्वितम् ॥ ४९ ॥ उपायश्चिन्त्यतां सद्यः स्वर्लोको येन जायते ॥ सनाथश्च क्रियायुक्तो न विलम्बोऽत्र युज्यते ॥ ५० ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा गुरुर्वचनमब्रवीत् ॥ जानेऽहं स्वापराधेन लज्जया यत्र तिष्ठति ॥ ५१ ॥ रभसा लब्धकार्यस्य भुङ्क्ते स मघवा फलम् ॥ नृणां नीतिपरित्यागाद्विपाकाः स्युर्भयङ्कराः ॥ ५२ ॥ अहो राज्यमदैर्मत्तः कृत्याकृत्यमचिन्तयन् ॥ कृतवान् निन्दितं कर्म दृष्टादृष्टत्त-यङ्करम् ॥ ५३ ॥ कुर्वन्ति बालिशा ह्येवं दैवोपहतबुद्धयः ॥ अपराधस्तथा जन्म स्यादि-

अपने अपराध की लज्जा से वह जहाँ स्थित है वह मैं जानता हूँ ॥ ५१ ॥ इन्द्र बिना विचारे काम करने का फल भोग रहा है, नीति का त्याग करने से मनुष्यों को भयंकर फल होता है ॥ ५२ ॥ अरे ! राज्य के मद से उन्मत्त, कृत्य और अकृत्य की चिन्ता न करते हुए, भयकारी दृष्ट तथा अदृष्ट कर्म करते हुए ॥ ५३ ॥ भाग्य के हत बुद्धि होकर

लोग मूर्खता के कार्य करते हैं जिनके अपराध से इस लोक तथा परलोक के फल नष्ट हो जाते हैं ॥ ५४ ॥ जहाँ पर वह इन्द्र है वहाँ पर हम अभी जावेंगे ऐसा कहकर सब लोग बृहस्पति को लेकर चले ॥ ५५ ॥ सुवर्ण कमलों के कानन से युक्त बड़े सरोवर पर इन्द्र को देखकर उनको प्रसन्न करने लगे जिससे उनको ज्ञान हो जावे ॥ ५६ ॥ तब बृहस्पति के समझाने पर कमल कलियों में से इन्द्र निकले, उनका मुख दीन था, वे कुरूप थे उनके नेत्र लज्जा से

हामुत्र निष्फलम् ॥५४॥ अधुना तत्र गच्छामो यत्र शक्रः स तिष्ठति ॥ इत्युक्त्वा निर्गताः सर्वे बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ ५५ ॥ दृष्ट्वा सरसि विस्तीर्णे स्वर्णपङ्कजकानने ॥ तुष्टुवुर्देवराजं तं प्रबोधो येन जायते ॥ ५६ ॥ ततो गुरोः प्रबोधेन निर्गतः पद्मकुड्मलात् ॥ दीनाननो विरूपस्तु व्रीडाकुञ्चितलोचनः ॥ ५७ ॥ जग्राह चरणाविन्द्रो गुरोस्तस्याग्रजन्मनः ॥ इन्द्र उवाच ॥ त्राहि मां निष्कृतिं ब्रूहि पापस्यास्य बृहस्पते ॥ ५८ ॥ देवराजवचः श्रुत्वा जगौ विप्रो बृहस्पतिः ॥ प्रयागस्नानमात्रेण तत्क्षणादेव पातकात्

बन्द थे ॥ ५७ ॥ इन्द्र ने बृहस्पति के चरण पकड़ लिया। इन्द्र ने कहा– हे बृहस्पति ! मेरी रक्षा करो, इस पाप से उद्धार होने का उपाय कहिये ॥ ५८ ॥ इन्द्र के बचन सुनकर विप्र बृहस्पति ने कहा– प्रयाग में स्नान करने ही से तुम उसी क्षण पाप से ॥ ५९ ॥ मुक्त होगे, हे इन्द्र ! चलो तुमको लेकर हम लोग वहाँ चले, तब पुरोहित के साथ

लेकर इन्द्र वहाँ गये ॥ ६० ॥ और प्रयागतीर्थ में स्नान करके शीघ्र ही पापों से मुक्त हुए, तब बृहस्पति ने प्रसन्न होकर उनको वरदान दिया ॥ ६१ ॥ हे इन्द्र! हमारे प्रसाद से शीघ्र पापों से निर्मुक्त होने पर तेरे शरीर में के हजार योनि के चिह्न हजार नेत्र हो जावें ॥ ६२ ॥ शची का पति (इन्द्र) ब्राह्मण के वाक्य से हजार नेत्रों से ऐसा शुशोभित

॥ ५९ ॥ मुच्यसे देवराज त्वं तत्र यास्यः सहैव ते ॥ अथ पुरोधसा सार्धमागत्य बलमर्दनः ॥ ६० ॥ सस्नौ सितासिते तीर्थे सद्यो मुक्तो ह्यघैस्ततः ॥ अथ देवगुरुस्तस्मै प्रसन्नस्तु वरं ददौ ॥ ६१ ॥ क्षीणपापस्य ते शक्र मत्प्रसादेन सत्वरम् ॥ सहस्रमेतद्योनीनां सहस्रं स्याद्दृशां तव ॥ ६२ ॥ तदैव द्विजवाक्येन शुशुभे स शचीपतिः ॥ लोचनानां सहस्रेण पङ्कजैरिव मानसम् ॥ ६३ ॥

इति श्री पद्मपुराणे उत्तरखण्डे माघमासमाहात्म्ये षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

हुआ जैसे मानसरोवर कमलों से शोभित होता है ॥ ६३ ॥

श्री पद्मपुराण के उत्तरखण्ड के माघमासमाहात्म्य का सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १६ ॥



व्यासजी ने कहा—तब देवता सहित ऋषियों से पूजा किया जाकर तथा गन्धर्वों से स्तुति किया जाकर इन्द्र अपनी अमरावती नगरी को गया ॥ १ ॥ इस प्रकार प्रयाग में स्नान करने से इन्द्र पाप रहित हो गये, तू भी हे कल्याणि ! देवताओं से सेवा किये जाने वाले प्रयाग को जाओ ॥ २ ॥ वहाँ पर जाने से पापों के नाश होंगे तथा स्वर्ग की अवश्य प्राप्ति होगी। अप्सरा ने कहा—इस प्रकार से इतिहास सहित उसके सुमङ्गल वचन को सुन कर ॥ ३ ॥ संभ्रम

व्यास उवाच ॥ ततो वृन्दारकैः सार्धं ऋषिभिश्चाभिपूजितः ॥ गन्धर्वैः स्तूयमानस्तु गतः शक्रोऽमरावतीम् ॥१॥ इत्थं सद्यो विपापोऽभूत् प्रयागे पाकशासनः ॥ अपि त्वं याहि कल्याणि प्रयागं देवसेवितम् ॥ २ ॥ सद्यः पापविनाशाय तथा स्वर्गतये दृढम् ॥ अप्सरा उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा सेतिहासं सुमङ्गलम् ॥३॥ तदैव सम्भ्रमापन्ना पादौ नत्वा द्विजस्य तु ॥ त्यक्त्वा बन्धुजनं सर्वं दासदासीं गृहं धनम् ॥४॥ सकलान् विषयान्सद्यो विषग्रासानिव स्फुटम् ॥ वपुश्च क्षणविध्वंसि पश्यन्ती निर्गता ह्यहम् ॥ ५ ॥ नरकार्णवसम्पातदारुणान्तकवह्निना ॥

में पड़ी हुई उसने ब्राह्मण के पैरों पर प्रणाम किया और सब बन्धुजन तथा दास दासी और घर तथा धन त्याग कर ॥४॥ हे राक्षस ! सब विषयों को प्रत्यक्ष विषग्रास के समान त्याग कर और शरीर को क्षण भर में नाश होने वाली देख कर मैं घर से निकली ॥ ५ ॥ नरक रूपी समुद्र में गिरने वाला, प्रलयाग्नि के समान दारुण, तथा हृदय रूपी व्याघ्र

के तप्यमान होते हुए ॥ ६ ॥ मैंने माघ मास में गंगा यमुना के संगम में जाकर स्नान किया, हे वृद्ध निशाचर। उस स्नान के माहात्म्य को सुन ॥ ७ ॥ तीन दिन के स्नान से मेरे पाप नाश हो गये और बचे हुए सत्ताइस दिन के स्नान से जो पुण्य हुआ उससे मैं देवता हो गई ॥ ८ ॥ और गिरिजा की प्रिय सखी होकर कैलास में आनन्द करती हूँ तथा प्रयागराज के प्रसाद से मैं अपनी जाति का स्मरण रखती हूँ ॥ ९ ॥ हे क्रूर हृदय! प्रयाग के माहात्म्य

हृदये कुणपव्याघ्र तदा तत्तप्यमानया ॥ ६ ॥ मया गत्वा कृतं स्नानं माघे मासि सितासिते ॥ तस्य स्नानस्य माहात्म्यं शृणु वृद्धनिशाचर ॥ ७ ॥ त्र्यहात् पापक्षयो जातः सप्तविंशतिभिर्दिनैः ॥ शेषैर्मे यदभूत् पुण्यं तेन देवत्वमागता ॥ ८ ॥ रममाणा तु कैलासे गिरिजायाः प्रिया सखी ॥ जातिस्मरा च जाताऽहं प्रयागस्य प्रसादतः ॥ ९ ॥ स्मृत्वा स्मृत्वा प्रयागस्य माहात्म्यं निकषात्मज ॥ स्नातुं सर्वामरैर्जुष्टं माघे माघे व्रजाम्यहम् ॥ १० ॥ इति राक्षस यत्पृष्टं त्वया विस्मितचेतसा ॥ तन्मया कथितं सर्वं चरित्रं प्रीतये तव ॥ ११ ॥ मत्प्रीतये चरित्रं स्वं त्वं ब्रूहि मम राक्षस ॥ कर्मणा केन जातोऽसि विरूपोऽतिभयङ्करः ॥ १२ ॥ श्मश्रुलो दीर्घदंष्ट्रश्च क्रव्यादो

को वारम्वार स्मरण करके मैं सब देवताओं के साथ माघ मास में वहाँ स्नान करने जाती हूँ ॥ १० ॥ हे राक्षस! आश्चर्य युक्त होकर जो तुमने पूछा वह सब वृत्तान्त मैंने तुमको प्रसन्न करने के लिये कहा ॥ ११ ॥ हे राक्षस! तुम भी मुझे प्रसन्न करने के लिये अपना सब चरित्र कहो, किस कर्म से तुम कुरूप और भयंकर हुए ॥ १२ ॥ दाड़ी,

मोछ तथा बड़े दाढ़ वाले तुम पर्वत के गुहा में रहते हो । राक्षस ने कहा—जो इच्छा पूर्ति का पदार्थ देता है या लेता है, गुप्त बात को कहता है या पूछता है ॥ १३ ॥ हे भद्रे ! वह सज्जनों की प्रीति से ही होता है, वह सब (गुण) तुम में है, हे वामलोचने ! मैं अपने को निःसन्देह कृतकृत्य समझता हूँ ॥ १४ ॥ इस मुझ क्रूरजन्मा के भविष्य का उद्धार तुम्हीं

गिरिगह्वरे ॥ राक्षस उवाच ॥ इष्टं ददाति गृह्णान्ति गुह्यमाख्याति पृच्छति ॥१३॥ प्रीत्या हि सज्जनो भद्रे तत्तु सर्वं त्वयि स्थितम् ॥ त्वया सम्भावितो नूनं मन्येऽहं वामलोचने ॥१४॥ भाविनीं निष्कृतिं सद्यस्त्वयाऽस्य क्रूरजन्मनः ॥ अतो वक्ष्यामि ते भद्रे दुष्कृतं यत्स्वयं कृतम् ॥१५॥ निवेद्य सज्जने दुःखं यतः सर्वः सुखी भवेत् ॥ शृणु सुश्रोण्यहं काश्यां बह्वृचो वेदपारगः ॥ १६ ॥ जातः पुरा द्विजश्रेष्ठः कुले महति निर्मले ॥ राज्ञां दुष्कृतिनां भीरु शूद्राणां च तथा विशाम्॥१७॥वाराणस्यां कृतो घोरो मया दुष्टप्रतिग्रहः ॥ बहुधा बहुवारं च निषिद्धः कुत्सितो बहु

से शीघ्र होगा, अतएव हे भद्रे ! जो पाप मैंने स्वयं किया था तुमसे कहता हूँ ॥ १५ ॥ क्योंकि सज्जन को दुःख निवेदन करने से सब सुखी होता है, हे सुश्रोणि ! सुनो, मैं काशी में वेदों की अनेक ऋचाओं में पारंगत था ॥ १६ ॥ प्राचीन समय में बड़े निर्मल श्रेष्ठ ब्राह्मण के कुल में उत्पन्न हुआ था; हे भीरु ! राजा, पापी, शूद्र तथा वैश्यों से ॥ १७ ॥

मैंने काशी में भयंकर बड़े बड़े प्रतिग्रह लिये, बहुधा अनेक बार ये बड़े निन्दित और निषिद्ध थे ॥ १८ ॥ हे भद्रे ! मैंने दुष्ट प्रतिग्रह लेने में चाण्डाल को भी नहीं छोड़ा; मुझ मूढ़बुद्धि से और भी अनेक पाप हुए ॥ १९ ॥ कोई ऐसा पाप नहीं है जो मैंने न किया हो, हे वरवर्णिनि ! अब (पुण्य) क्षेत्र के भी दूसरे पापों को सुनो ॥ २० ॥ अविमुक्त क्षेत्र में अणुमात्र भी पाप करने से वह मेरु पर्वत के समान (बड़ा) हो जाता है, उस जन्म में मैंने किंचित मात्र

॥१८॥ चाण्डालस्यापि न त्यक्तो मया भद्रे प्रतिग्रहः ॥ अन्यच्च पातकं तत्र ममाऽभून्मूढचेतसः

॥१९॥ तन्नास्ति दुष्कृतं कर्म मया तत्र न यत्कृतम् ॥ अन्यच्च श्रूयतां दोषः क्षेत्रस्य वरवर्णिनि

॥२०॥ अविमुक्तेऽणुमात्रं यत्तदघं मेरुतां व्रजेत् ॥ न धर्मस्तु मया कश्चित् सञ्चितस्तत्र जन्मनि

॥ २१ ॥ ततो बहुतिथे काले मृतस्तत्रैव शोभते ॥ अविमुक्तप्रभावेण न चाहं नरकं गतः

॥२२॥ अविमुक्ते मृतः कश्चिन्नरकं नैति किल्बिषी ॥ अविमुक्ते कृतं किन्तु पापं वज्रीभवेद्

दृढम् ॥ २३ ॥ वज्रलेपेन पापेन तेन मे जन्म राक्षसम् ॥ रौद्रं क्रूरतरं पापं सम्भूत हिमपर्वते

भी धर्म का संचय नहीं किया ॥ २१ ॥ हे शोभने ! मैं बहुत दिनों के बाद वहीं मृत्यु को प्राप्त हुआ, तीर्थ में मरने के कारण मैं नरक में नहीं गया ॥ २२ ॥ अविमुक्त (तीर्थ में मरने वाला पापी नरक में नहीं जाता, किन्तु तीर्थ में किया हुआ पाप वज्र के समान दृढ़ हो जाता है ॥ २३ ॥ इस वज्रलेप पाप के कारण मैं भयंकर, अतिक्रूर, पापी राक्षस हिमालय

पवत पर जनमा ॥ २४ ॥ (इसके पूर्व) दो वार गिद्ध योनि में, तीन वार व्याघ्र, दो वार सर्प, एक वार उल्लू, तथा इसके बाद गाँव के सुअर की योनि में उत्पन्न हुआ था ॥ २५ ॥ उस जन्म में यह राक्षस का दसवाँ जन्म है, जिसमें पछत्तर हजार वर्ष वीत गये ॥ २६ ॥ हे भद्रे ! इस दुःखरूपी समुद्र से मेरा निस्तार नहीं है, हे सुभ्रु ! इस स्थान

॥२४॥ द्विर्जातो गृध्रयोनौ प्राक् त्रिर्व्याघ्रो द्विः सरीसृपः ॥ एकवारमुलूकश्च विड्वराहस्ततः परम् ॥२५॥ इदं तु दशमं जन्म राक्षसं यत्र जन्मनि ॥ अतीतानि सहस्राणि वर्षाणां पञ्च सप्ततिः ॥२६॥ नास्ति मे निष्कृतिर्भद्रे एतस्माद्दुःखसागरात् ॥ अत्र त्रियोजनं सुभ्रु निर्जन्तु हि मया कृतम् ॥२७॥ अनागसां च भूतानां बहूनां क्षयः कृतः ॥ कर्मणा तेन मे तत्तु दह्यते सततं मनः ॥ २८ ॥ त्वद्दर्शनसुधासिक्तं गतं शैत्यं मनो मम ॥ तीर्थं फलति कालेन सद्यः सङ्गः सतां खलु ॥ २९ ॥ अतः सत्सङ्गतिं सुभ्रु प्रशंसन्ति महात्मनः ॥ एतत्त कथितं सर्वं

को तीन योजन तक मैंने जन्तुहीन कर दिया ॥ २७ ॥ निरपराधी वहुतेरे प्राणियों का नाश किया, इन्हीं कर्मों से मेरा चित्त बराबर दहकता है ॥ २८ ॥ तुम्हारे दर्शन रूपी अमृत से सीचे जाने पर मेरे चित्त में ठंढक आई है, तीर्थ का फल तो समय पाकर मिलता है परन्तु सज्जनों का संग तुरन्त ही फल देता है ॥ २९ ॥ हे सुभ्रु ! इसी से महात्मा

लोग सत्संत की प्रशंसा करते हैं, मैंने अपने दुःख के ये सब कारण तुम्हारे कहे ॥ ३० ॥ हे सुभ्रु ! ऐसा विरला ही सज्जन होगा जो दूसरे के दुःख से दुखी न होता हो, जो उचित है सो तो तुम जानती है, अब इससे बढ़कर और क्या कहूँ ॥ ३१ ॥ अब इस बात का विचार करो कि मैं इस दुःखरूपी समुद्र के पार कैसे जाऊँ, सज्जनों का ऐश्वर्य

स्वस्य दुःखस्य कारणम् ॥३०॥ विरलः सज्जनः सुभ्रु परदुःखेन दूयते ॥ जानास्यत्रयोचितं त्वं हि किञ्चिन्नो वच्म्यतः परम् ॥३१॥ अस्य दुःखोदधेः पारं कथं यामीति चिन्तयन् ॥ सज्जनानां समा भूतिः सर्वेषामुपजीविनाम् ॥३२॥ क्षीरार्णवः पयो दत्ते हंसाय न बकाय किम् ॥ दत्तात्रेय उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा दयार्द्रीकृतमानसा ॥ ३३ ॥ धर्मदाने मनः कृत्वा जगौ काञ्चनमालिनी ॥ अप्सरा उवाच ॥ करिष्ये निष्कृतिं रक्ष इदानीं खलु मा शुच ॥ ३४ ॥ प्रतिज्ञां तु दृढां कृत्वा यतिष्ये तव मुक्तये ॥ बहवोऽपि कृता माघे वर्षे वर्षे यथाविधि ॥३५॥

सब उपजीवियों के हित के लिए होता है ॥ ३२ ॥ क्या क्षीर सागर हंस को ही दूध देता है, बगुले को नहीं ? । दत्तात्रेयजी ने कहा—ऐसा उसका वचन सुनकर चित्त में दया लाकर ॥ ३३ ॥ तथा धर्मदान में मन लगाकर काँचन मालिनी ने कहा । अप्सरा बोली— हे राक्षस ! मैं अवश्य शीघ्र ही तुम्हारा निस्तार करूँगी ॥३४॥ मैंने दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली है,तुम्हारी मुक्ति के लिए मैं प्रयत्न करूँगी, मैंने विधिपूर्वक प्रतिवर्ष अनेक माघ स्नान किये हैं ॥ ३५ ॥ और

श्रद्धापूर्वं मयाभद्र ब्रह्मक्षेत्रे सितासिते ॥ तद्ददामि न सन्देहः तस्यधर्मस्य राक्षस ॥३६॥ गूढो धर्मोहि कर्तव्य इत्यूचुः पण्डिता जनाः ॥ आर्ते दानं प्रशंसन्ति मुनयो वेदवादिनः ॥३७॥ सागरे वर्षतो भद्र किं मेघस्य फलं भवेत ॥ ददामि माघजं पुण्य कृतमेक सितासिते ॥३८॥ तेन ते स्वर्गतिः सद्यः भविष्यति न संशयः ॥ अनुभूतं मया रक्षः स्वयं तत्पुण्यजं फलम् ॥३६॥ तत्तु दस्यामि ते मित्र सद्यः पापविनाशनम् ॥ निष्पीड्याऽथ ततो वासो जल कृत्वा कराम्बुजैः ॥ ४० ॥ ददौ सा माघजं पुण्य तस्मै वृद्धाय रक्षसे ॥ दत्तात्रेय उवाच ॥ शृण

का पुण्य मैं तुझे देती हूँ ॥ ३८ ॥ उससे तुझे निःसन्देह अभी स्वर्ग-प्राप्ति होगी, हे राक्षस ! मैंने स्वयं उस पुण्य के फल का अनुभव किया है ॥ ३९ ॥ हे मित्र ! शीघ्र ही पाप को नाश करने वाले उस पुण्य को मैं तुझे देती हूँ, तब वस्त्र को निचोड़ उसके जल को करकमल में लेकर ॥ ४० ॥ उसने माघ स्नान से उत्पन्न पुण्य सहित उस

वृद्ध राक्षस को दिया। दत्तात्रेयजी ने कहा—हे राजन्! माघ मास में स्नान करने के विचित्र प्रभाव को सुनो ॥ ४१ ॥
तत्क्षण पुण्य प्राप्त करके उस (वृद्ध) ने राक्षसी शरीर त्याग दिया और तेजमय सूर्य के समान देवता रूप हो गया ॥ ४२॥
आनन्द से आँखों को फुलाकर, देवताओं के विमान पर चढ़कर, आकाश में अपनी क्रान्ति से दिशाओं को चमकाता हुआ
॥ ४३ ॥ दिव्यरूप धारण किये हुए, दूसरे सूर्य की तरह सुशोभित हुआ, तब उस काञ्चनमालिनी की प्रशंसा करने लगा

राजन् विचित्रं हि प्रभावं माघमासजम् ॥४१॥ तदैव प्राप्तपुण्यः सन् विमुक्त्वा राक्षसीं तनुम् ॥
सम्भूतो देवताकारस्तेजोभास्करविग्रहः ॥४२॥ देवयानं समारूढो हर्षेणोत्फुल्ललोचनः॥ द्योत-
मानस्तदा व्योम्नि भासयन् प्रभया दिशः ॥ ४३ ॥ दिव्यरूपधरो रेजे द्वितीय इव भास्करः ॥
ततोऽभिनन्दयामास स तां काञ्चनमालिनीम् ॥४४॥ भद्रे वेत्तीश्वरो देवः कर्मणां यः फलप्रदः॥
त्वया ह्युपकृतं सर्वं यत्र मे नास्ति निष्कृतिः ॥४५॥ इदानीमपि कारुण्यात् प्रसादानुग्रहं कुरु॥
शिक्षां विधेहि मे देवि सर्वनीतिमयीं शुभाम् ॥४६॥ सर्वधर्मकरीं नूनं न कुर्वे पातकं यथा ॥

॥ ४४ ॥ हे भद्रे! कर्मों के फल देने वाला ईश्वर ही जान सकता है कि तुम सबपर उपकार करती हो नहीं तो मेरा
निस्तार न होता ॥ ४५ ॥ अब भी कृपा करके मेरे ऊपर अनुग्रह करो, हे देवि! सब नीतियों से पूर्ण शुभ शिक्षा मुझे
दो ॥ ४६ ॥ सब धर्मों के करने वाली शिक्षा दो जिसमें मैं पाप न करूँ, तुम्हारी आज्ञा पाकर इसको सुनकर मैं स्वर्ग

में जाऊँगा ॥ ४७ ॥ दत्तात्रेयजी ने कहा—हे राजन्! उसके कहे हुए धर्ममय प्रिय वचन को सुनकर काञ्चनमालिनी ने बड़ी प्रीतिपूर्वक उससे धर्म कहा ॥ ४८ ॥ उस दिव्य रूप धारण किये हुए, शान्त दूसरे सूर्य के समान व्यक्ति से कहा। काञ्चनमालिनी ने कहा— सर्वदा धर्म की सेवा करो प्राणियों की हिंसा त्याग दो, साधु पुरुषों की सेवा करो,

तां श्रुत्वा त्वदनुज्ञातः पश्चाद्यामि सुरालयम् ॥४७॥ श्रीदत्तात्रेय उवाच ॥ एतन्निशम्य तेनोक्तं प्रियं धर्म मयं वचः ॥ अतिप्रीत्याऽब्रवीद्धर्मं राजन् काञ्चनमालिनी ॥४८॥ दिव्यरूपधरं शान्तं द्वितीयमिव भास्करम् ॥ काञ्चनमालिनी उवाच ॥ धर्मं भजस्व सततं त्यज भूतहिंसां सेवस्व साधुपुरुषान् जहि कामशत्रुम् ॥ अन्यस्य दोषगुणकीर्तनमाशु मुक्त्वा सत्यं वदार्चय शिवं स्मर वासुदेवम् ॥ ४९ ॥ देहेऽस्थिमांसरुधिरेऽहमिति त्यज त्वं जायासुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च ॥ पश्याऽनिशं जगदिदं क्षणभङ्गनिष्ठं वैराग्यभावरसिको भव योगनिष्ठः ॥ ५० ॥

काम (इत्यादि) शत्रु को जीतो, दूसरे के गुण दोष का वर्णन त्यागकर सत्य बोलो शिव का तथा वासुदेव भगवान् का पूजन करो ॥ ४९ ॥ देह, अस्थि, मांस तथा रुधिर में अहङ्कार को छोड़ो, पत्नी पुत्र इत्यादि को सर्वदा ममता त्यागो, संसार को दिन रात क्षण-भंगुर देखो, वैराग्य भाव में चित्त लगाकर योगी बनो ॥ ५० ॥ मैंने प्रीति

पूर्वक तुमसे धर्म कहे हैं, शील युक्त हो इन सबको चित्त में रक्खो, राक्षस की शरीर को त्यागकर तथा देवता की शरीर धारण कर और तेज रूप होकर शीघ्रही स्वर्ग का सुख भोगों ॥ ५१ ॥ धर्म सुनकर प्रसन्न होकर तथा सन्तुष्ट होकर राक्षस ने कहा । राक्षस ने कहा— तुम नित्य प्रसन्न हो, तुम्हारा सर्वदा कल्याण हो ॥ ५२ ॥ सूर्य चन्द्र की स्थिति तक तुम

प्रीत्या मया निगदितं तव धर्मजातं चित्ते निधेहि सकलं भव शीलयुक्तः ॥ संत्यक्तराक्षसवपुर्धृतदेवदेहो ज्योतिर्मयो व्रज यथासुखमाशु नाकम् ॥ ५१ ॥ श्रुतधर्मस्ततो हृष्टः सन्तुष्टो राक्षसोऽब्रवीत् ॥ राक्षस उवाच ॥ भव प्रमुदिता नित्यं सर्वदा शिवमस्तु ते ॥५२॥ आचन्द्रार्कं रमस्व त्वं कैलासे शिवसन्निधौ ॥ उमयाऽखण्डितं प्रेम तवास्तु वरवर्णिनि ॥५३॥ धर्मनिष्ठा तपोनिष्ठा मातस्त्वं भव सर्वदा ॥ माऽस्तु लोभः शरीरे ते आपन्नार्तिं सदा हर ॥५४॥ दत्तात्रेय उवाच ॥ इत्युक्त्वा स प्रणम्याथ स तां काञ्चनमालिनीम् ॥ जगाम रक्षसः स्वर्गं गन्धर्वैर्बहुशः स्तुतः

शिव के समीप आनन्द करो, हे वरवर्णिनि ! उमा के साथ तुम्हारा अखण्ड प्रेम बना रहे ॥ ५३ ॥ हे माता तुम सर्वदा धर्मनिष्ठा, तथा तपनिष्ठा बनी रहो, तुम्हारे शरीर में लोभ न हो, दुखियों के क्लेश को सदा हरण करो ॥ ५४ ॥ दत्तात्रेयजी ने कहा— ऐसा कहकर उस काञ्चनमालिनी को प्रणाम करके अनेक गन्धर्वों में स्तुति किया जाता हुआ वह

राक्षस स्वर्ग में गया ॥ ५५ ॥ तब देवकन्याओं ने वहाँ आकर प्रसन्न होकर काञ्चनमालिनी के मस्तक फूलों की वृष्टि किया ॥ ५६ ॥ और उसको छाती से लगाकर इन कन्याओं ने कहा—हे भद्रे ! तुमने राक्षस का विचित्र उद्धार किया ॥ ५७ ॥ इस दुष्ट के भय से कोई इस जंगल में प्रवेश नहीं करता था, अब हम लोग निर्भय होकर यहाँ पर सुख

॥५५॥ देवकन्यास्तदाऽऽगत्य ववपुः पुष्पवृष्टिभिः ॥ तस्याः काञ्चनमालिन्या मूर्ध्नि हर्षसमाकुलाः ॥५६॥ तामालिंग्य ततः प्रोचुः कन्यकास्तु प्रियं वचः ॥ कन्या ऊचुः ॥ कृतं भद्रे त्वया चित्रं रक्षसो हि विमोचनम् ॥ ५७ ॥ दुष्टस्यास्य भयात् कश्चित् विश्यत्यस्मिन्न कानने ॥ अधुना निर्भया ह्यत्र विचरामो यथासुखम् ॥ ५८ ॥ दत्तात्रेय उवाच श्रुत्वा तद्वचनं राजन् तासां काञ्चनमालिनी ॥ ह्यष्टा तेनैव दानेन कृतकृत्या सती तदा ॥ ५९ ॥ तं राक्षसं काञ्चमालिनी तदा गन्धर्वकन्या परिमोच्य सत्वरम् ॥ क्रीडन्त्यभूमिः प्रययौ हरालयं प्रीत्याऽश्रुपूर्णातिप-

पूर्वक विचरेंगी ॥ ५८ ॥ दत्तात्रेयजी ने कहा— हे राजन् ! काञ्चनमालिनी उनके वचन को सुनकर उस दान से प्रसन्न और कृतार्थ हुई ॥ ५९ ॥ तब वह परोपकारिणी गन्धर्व कन्या काञ्चनमालिनी उस राक्षस को शीघ्र मुक्त करके आँखों में प्रीति के आँसू भरे इनके साथ क्रीडा करती हुई शिव के स्थान को गई ॥ ६० ॥ वर कन्याओं से कहे हुए इस संवाद

को जो मनुष्य भक्ति पूर्वक सुनता है उसको राक्षसों से बाधा नहीं होती और उसकी बुद्धि धर्म में होती है ॥ ६१ ॥

रोपकारिणी ॥ ६० ॥ संवादमेतं वरकन्यकेरितं भक्त्या परं यो हि शृणोति मानवः ॥ न
बाध्यते जातु सदा स राक्षसैर्धर्मे मतिस्तस्य भृशं प्रजायते ॥ ६१ ॥

इति श्री पद्मपुराणे उत्तरखण्डे माघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे
राक्षसमोक्षो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

श्री पद्मपुराण के उत्तरखण्ड के माघमाहात्म्य के वशिष्ठ और दिलीप के संवाद में राक्षसमोक्ष नाम का सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १७ ॥

वसिष्ठजी ने कहा—मैंने दत्तात्रेयजी का कहा हुआ माघमोहात्म्य कहा, अब मैं माघ मास के स्नान से उत्पन्न फल को कहता हूँ ॥ १ ॥ हे परन्तप ! माघ स्नान सब यज्ञों में श्रेष्ठ, सब दानों का फल देने वाला, तथा सब व्रत और तप के तुल्य है ॥ २ ॥ हे दिलीप ! माघ स्नान से मनुष्य लोग (मातृ पितृ) कुल के पितरों को स्वर्ग में

वसिष्ठ उवाच ॥ कथितं माघमाहात्म्यं दत्तात्रेयेण भाषितम् ॥ अधुनाऽहं प्रवक्ष्यामि माघस्य स्नानजं फलम् ॥१॥ सर्वक्रतुवरिष्ठं तत्सर्वदानफलप्रदम् ॥ सर्वव्रततपस्तुल्यं माघस्नानं परंतप ॥२॥ स्नानेन माघस्य दिलीप मानवाः पितॄन्दिवि स्थाप्य कुलद्वयस्य ॥ स्वर्गं प्रयान्ति स्वयमुज्ज्वलानना वरैर्विमानै रुचिरैश्च कामगैः ॥३॥ यो माघमासि नभसि सूर्यकराभिताम्रे स्नानं समाचरित चारुनदीप्रवाहो ॥उद्धृत्य सप्तपुरुषान् पितृमातृवंशे स्वर्गं प्रयाति वरमाल्यधरो नरोऽसौ ॥ ४ ॥ ये मानवाः पापकृतोऽपि सर्वदा सदा दुराचाररता विमार्गगाः ॥ स्नात्वा हि माघे

स्थापन करके स्वयं उज्ज्वल मुख होकर स्वेच्छाचारी श्रेष्ठ सुन्दर विमानों पर (चढ़कर) स्वर्ग को जाते हैं ॥ ३ ॥ जो माघ मास में नदी के सुन्दर प्रवाह में आकाश में सूर्य की तांबे के रंग की किरण रहते (अर्थात् अरुणोदय में) स्नान करता है वह पिता तथा माता के वंश के सात पुरुषों का उद्धार करके सुन्दर माला धारण करके स्वर्ग में जाता है ॥ ४॥

सर्वदा पाप करने वाले, सदा दुराचार में मग्न तथा कुमार्गी मनुष्य भी माघमास में स्नान तथा हरि का पूजन करने से पाप के बड़े समुदाय से निर्मुक्त होकर भगवान् के समान शरीर वाले हो जाते हैं ॥ ५ ॥ सत्य से हीन, माता पिता से दूषित, विना आश्रम के अथवा अपने आश्रम के छोड़े हुए तथा जो लोग पाखंडी हैं वे भी प्रयाग में माघमास में तीन दिन स्नान करने से सज्जनों की गति प्राप्त करते हैं ॥ ६ ॥ संसार में पुण्यतीर्थों में माघमास का स्नान मनुष्यों को अति

हरिमर्चयन्ति ये मुञ्चन्ति तेऽपीह महाघसञ्चयम् ॥५॥ सत्येन हीनाः पितृमातृदूषिता अनाश्रमस्थाश्रमधर्मवर्जिताः ॥ ये दाम्भिकास्तेऽपि नराः सतां गतिं स्नानैः प्रयान्त्यत्र हि माघसम्भवैः ॥६॥ पुण्येषु तीर्थेषु च माघमासजं स्नानं नराणामतिदुर्लभं भुवि ॥ तस्माद्यथा ब्रह्मविदां स्थितिर्वरा सम्प्राप्यते नात्र विचारणा मम ॥७॥ माघे तपोदानजपप्रसेवनं स्नानं हरेः पूजनमक्षयंनृप ॥ तस्माद्यथाशक्ति नरैः प्रयत्नात् स्नात्वा प्रदेयं वसनादिकाञ्चनम् ॥ ८ ॥ माघेऽन्नदाताऽमृतपः सुरालये हेम्नश्च दाता बलभित्समीपगः ॥ दीपाग्निवासांसि ददन्नरः सदा सूर्यस्य लोके वसति

दुर्लभ है इससे मनुष्य ब्रह्मवेत्ताओं की गति को प्राप्त होता है—इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥ हे राजन् ! माघ में तप दान तथा जप करना और हरि भगवान् का पूजन सब अक्षय होते हैं । अतएव मनुष्य को प्रयत्न से स्नान करके यथाशक्ति वस्त्र, अन्न तथा सुवर्ण का दान करना चाहिये ॥ ८ ॥ माघ में अन्न दान करने वाला स्वर्ग में अमृत पीता है, सुवर्ण दान

करने वाला इन्द्र के समीप जाता है, दीपक अग्नि तथा वस्त्र दान देने वाला मनुष्य प्रभावयुक्त होकर सूर्य लोक में निवास करता है ॥ ९ ॥ यज्ञ से, दान से, उज्वल तप से, दृढ़ ब्रह्मचर्य से तथा श्रेष्ठ योग सेवा से पापी लोग उतने शुद्ध नहीं होते जितने माघमास में तीर्थ में स्नान करने से होते हैं ॥ १० ॥ जो लोग माघमास में आधे उगे हुए सूर्य में श्रेष्ठ तीर्थ में स्नान करते हैं वे पापी भी दुःखों के समुदाय के कष्ट को नहीं सहते तथा यम की यातना भी नहीं भोगते ॥ ११ ॥

प्रभामयः ॥ ९ ॥ यज्ञैश्च दानैश्च तपोभिरुज्ज्वलैः सुब्रह्मचर्यैर्वरयोगसेवया ॥ शुद्धा भवन्तीह तथा न पापिनः स्नानैर्यथा तीर्थभवैस्तु माघजैः ॥ १० ॥ दुःखौघसन्तातिमसह्य यातनां यामीं न ते यान्त्यपि पापकारिणः ॥ ये माघमासे वरतीर्थमज्जनंकुर्वन्ति चार्द्धोदित्तसूर्यमण्डले ॥११॥ स्नात्वा च माघे हरिमर्चयन्ति ये स्वर्गच्युता भूपतयो भवन्ति ते ॥ भव्याः सुरूपाः सुभगाः प्रियंवदा-धर्मान्विता भूरिधना : शतायुषः ॥ १२ ॥ दीप्तानले काष्ठचयो यथा हुतो भस्माव-शेषो भवतीह तत्क्षणात् ॥ स्नानेन माघस्य तथा विलीयते क्षुद्रोऽपि पापौघमहाघसञ्चयः ॥१३॥

माघ में स्नान करके जो हरिभगवान् का पूजन करते हैं वे स्वर्ग से लौटकर राजा होते हैं, तथा दिव्य. स्वरूपवान्, भाग्यवान् प्रिय बोलने वाले, धर्मयुक्त, बड़े धनी और सौ बरस की आयुष्य वाले होते हैं ॥ १२ ॥ जिस प्रकार जलती हुई अग्नि में लकड़ी कासमूह उसी क्षण भस्म हो जाता है और उसका कुछ शेष नहीं रह जाता, उसी प्रकार से माघ मास में स्नान करने से छोटे तथा बड़े बड़े पापों के समुदाय भी नष्ट हो जाते हैं ॥ १३ ॥ शरीर, वाणी तथा मन से जान या

अनजान से किये हुए सभी पाप किसी श्रेष्ठ तीर्थ में माघमास स्नान करने से हृदय में स्थित विष्णुभगवान् जैसा शीघ्र ही जला देते हैं ॥ १४ ॥ हे राजन् ! पापों के फल भोगते हुए भी मनुष्य यदि प्रमाद से भी कभी माघ में स्नान कर लें तो इसी से उनके पाप नष्ट हो जाते हैं यह निश्चय है ॥ १५ ॥ गन्धर्व की कन्या प्राचीन काल में राजा के शाप

कायेन वाचा मनसाऽपि पातकं ज्ञातं यदज्ञानमलं कृतं नरैः ॥ स्नानं तु माघे वरतीर्थसम्भवं सर्वं दहेद्विष्णुरिवाशु हृद्गतः ॥१४॥ सम्भुज्यमानाऽघफलं हि पार्थिव प्रमादतोऽपीह नृणां कदाचन ॥ स्नानं तु माघस्य यदि प्रसज्जते तदैव तत्संक्षयमेति निश्चितम् ॥ १५ ॥ गन्धर्वकन्याः पृथिवीशशापजं सम्भुज्यमानाऽघफलं दुरत्ययम् ॥ स्नानाद्विमुक्ताः खलु माघसम्भवाद्वाक्यात् पुरा लोमशजातमद्भुतम् ॥ १६ ॥ श्रुत्वैतत्पार्थिवः प्रीत्या नत्वा तत्पादपङ्कजम् ॥ श्रद्धया परया नम्रस्तं पप्रच्छ पुरोहितम् ॥ १७ ॥ दिलीप उवाच—भगवन् ब्रूहि कन्याभिः शापो ह्यभिगतः कुतः ॥ कस्यापत्यानि तास्तासां नाम किं कीदृशं वयः ॥१८॥ कथं लोमशवाक्येन

से पाप के भयंकर फल को भोगती हुई, लोमश ऋषि के वचन से माघ मास में स्नान करके पाप से मुक्त हुई, यह आश्चर्य है ! ॥ १६ ॥ राजा ने यह सुन गुरु चरण कमल पर नमस्कार करके, परम श्रद्धा से विनीत भाव से पुरोहित से पूछा ॥ १७ ॥ दिलीप ने कहा—हे भगवन् ! कन्याओं को कहाँ से शाप मिला ? वे कन्या किसकी थीं, उनके क्या नाम थे

-पशाच्यात् शापसम्भवात् ॥ विमुक्ताः कुत्र ताः सस्नुर्माघं ताः कति संख्यया ॥ १६ ॥ वसिष्ठ उवाच—श्रूयतां राजशार्दूल धर्मगर्भां परां कथाम् ॥ यथाऽरणिर्वह्निगर्भा धर्मसूर्वह्निसूरपि ॥२०॥ गन्धर्वः सुखसगीतिस्तस्य कन्या विमोहिनी ॥ सुशीलस्य सुशीला च सुस्वरा स्वरवेदिनः ॥२१॥ सुतारा चन्द्रकान्तस्य चन्द्रिका सुप्रभस्य च ॥ इमानि वरनामानि तासामप्सरसां नृप ॥२२॥ कुमार्यः पञ्च ताः सर्वा वयसा सुसमाहिताः ॥ शोभन्ते ताः स्त्रियो नित्यं भोगिन्य इव सर्वदा ॥ २३ ॥ चन्द्रादिव विनिष्क्रान्ताश्चन्द्रिकेव समुज्ज्वलाः ॥ चन्द्राननाः

और उनकी क्या उमर थी ? ॥ १८ ॥ किस प्रकार वे लोमश ऋषि के वाक्य से पिशाची शाप से विमुक्त हुईं, उन्होंने माघ मास में कहाँ स्नान किया, और संख्या में कितनी थीं ? ॥ १६ ॥ वसिष्ठजी ने कहा—हे श्रेष्ठ राजा ! इस धर्मपूर्ण अपूर्व कथा को सुनो, जिस प्रकार अरणि से अग्नि निकलती है उसी प्रकार यह कथा धर्म और सन्तान को उत्पन्न करती है ॥ २० ॥ सुख सङ्गोति नामक गन्धर्व की कन्या विमोहिनी थी, सुशीला की कन्या तथा स्वरवेदी की कन्या सुस्वरा नाम की थी ॥ २१ ॥ चन्द्रकान्त की कन्या सुतारा तथा सुप्रभ की कन्या चन्द्रिका थी, हे राजन् ! ये सुन्दर नाम इन अप्सराओं के थे ॥ २२ ॥ ये पाँचों कन्या सब वय में समान थीं, नित्य भोग करने वाली स्त्रियों के समान सर्वदा शोभती थीं ॥२३॥ ये चन्द्रमा से निकली हुई, चन्द्रमा के समान बड़ी उज्ज्वल थीं, चन्द्रानना तथा सुकेशी चन्द्रमा

के अमृत समान रसयुक्त थीं ॥२४॥ नेत्रों को आनन्द करने वाली वैसी ही थी जैसे रात खिलनेवाले कमल को चन्द्र प्रभा; ये कन्या अति ललित, बड़ी मनोहर ॥ २५ ॥ ऊँचे पयोधर वाली पद्मनी, वैशाख मास की कमलिनी के समान थीं, यौवन दरसाती हुई नये पत्तों वाली लता के समान थीं ॥ २६ ॥ सुवर्ण के समान गौर वर्ण की सुवर्ण के समान चमकती

सुकेशिन्यश्चन्द्रामृतरसाधराः ॥२४॥ नेत्रेष्वानन्दकारिण्यः कौमुदी कैरवेष्विव ॥ लावण्यपिण्डसम्भूता वररूपा मनोहराः ॥२५॥ उद्भिन्नकुचपद्मिन्यः पद्मिन्य इव माधवे ॥ उन्मील्य यौवनं कान्तं वल्लीव नवपल्लवैः ॥२६॥ हेमगौराश्च हेमाभा हेमालङ्कारभूषिताः ॥ हेमचम्पकमालिन्यो हेमच्छविसुवाससः ॥ २७ ॥ स्वरग्रामावलीढासु विविधामूर्च्छनासु च ॥ तानगानविनोदेषु वेणुवीणाप्रवादने ॥२८॥ मृदङ्गनादसम्भिन्नलास्यमार्गलयेषु च ॥ चित्रादिषु विनोदेषु कलासु च विशारदाः ॥ २९ ॥ एवम्भूतास्तु ताः कन्या मुमुदुः क्रीडनवरैः ॥ पितृभिर्लालिताः

हुई तथा सुवर्ण के अलंकार से विभूषित स्वर्ण की चम्पाकली धारण किये तथा सुवर्ण की छवि वाले सुन्दर वस्त्र पहिरे ॥ २७ ॥ स्वर ग्रामों (समूहों) से मिश्रत तथा नाना प्रकार की मूर्च्छना, तान गान, विनोद तथा बाँसुरी और बीन बजाने में ॥ २८ ॥ मृदङ्गनाद, भिन्न-भिन्न प्रकार के लास्य, मार्ग तथा लय में और विचित्र विनोद और कलाओं में निपुण थीं ॥ २९ ॥ इस प्रकार की ये कन्या सुन्दर क्रीड़ा से आनन्द करती थीं, माता पिता से लाड़ की जाती हुई ये एक

बार कुबेर के स्थान में विचरती थीं ॥३० ॥ कौतुक से एक बार पाँचों ने मिल कर माघ मास में एक वन से दूसरे वन में मन्दार के फूल तोड़ती हुई ॥ ३१ ॥ गौरी की आराधना के लिये ये वराङ्गना अच्छोद (सुन्दर जल वाले) सरोवर पर गईं, सुवर्ण के सुन्दर कमल तथा जल कमलों को लेकर ॥ ३२ ॥ हीरे के समान स्वच्छ स्फटिक पूर्ण सरोवर में स्नान

सत्यश्चेरुश्च धनदालये ॥ ३० ॥ कौतुकादेकदा पञ्च मिलित्वा मासि माधवे ॥ कन्या मन्दार पुष्पाणि विचिन्वन्त्यो वनाद्वनम् ॥ ३१ ॥ गौरीं समाराधयितुं वराङ्गनाः कदाचिदच्छोद-सरोवरं ययुः ॥ हेमाम्बुजानि प्रवराणि ताः पुनस्तस्मादुपादाय वरोत्पलैः सह ॥ ३२ ॥ वैडूर्यशुद्धस्फटिकप्रकुट्टिमे स्नात्वा तडागे परिधाय चाम्बरम् ॥ मौनेन च स्थण्डिलपिण्डिकामयीं स्वर्णस्य सिक्ताभिरुमां विनिर्ममुः ॥ ३३ ॥ समर्च्य तां चन्दनचन्द्रकुङ्कुमैरभ्यर्च्य गौरीं वर-पङ्कजादिभिः ॥ नानोपचारैश्च सुभक्तिभाविता लास्यप्रयोगैर्ननृतुः कुमारिकाः ॥ ३४ ॥ गन्धारमाश्रित्य वरं स्वरं ततो गेयं सुतारध्वनिभिः समूर्च्छनम् ॥ एणीदृशस्ताः प्रजगुः कला-

करके तथा वस्त्र पहिन कर मौन धारण किए हुये उस स्थान के सोनहले बालुओं से उन्होंने उमा की मूर्ति बनाया ॥३३॥ और चन्दन, कपूर, कुङ्कम से तथा सुन्दर कमलों से इस मूर्ति की पूजा करके ये कुमारियाँ नाना प्रकार के उपचारों से भक्ति से पूजन करके ताल देकर नाचने लगीं ॥ ३४ ॥ फिर सुन्दर गान्धार सुर में ऊँची ध्वनी से मूर्छना

सहित ये मृगनयनी अच्छे प्रबन्ध की गीत सुन्दर सुर में गाने लगीं ॥ ३५ ॥ जब ये कन्या रसों की वर्षा करने वाले तथा आनन्द देने वाले सुन्दर सुर में गा रही थीं और नाचने में निमग्न थीं, उसी समय अच्छोद नाम के श्रेष्ठ तीर्थ में वेदनिधि मुनि के पुत्र अग्निप ऋषि स्नान को गये ॥ ३६ ॥ यह युवा ऋषि

त्वरं चारुप्रबन्धं गतिमिश्र सुस्वरम् ॥ ३५ ॥ तस्मिन् सुनादे रसवर्षहर्षदे कन्यास्वलं निर्भरवृत्तिवृत्तिषु ॥ अच्छोदतीर्थप्रवरे तदा गतः स्नातुं मुनेर्वेदनिधेः सुतोऽग्निपः ॥ ३६ ॥ रूपेण निःसीमतरो वराननः पाथोजपत्रायतलोचनो युवा ॥ विस्तीर्णवक्षाः सुभुजोऽतिसुन्दरः श्यामच्छविः काम इवापरो हि सः ॥३७॥ स ब्रह्मचारी सुशिखो विराजते दण्डेन युक्तो धनुषैव मन्मथः ॥ एणाजिनप्रावरणः सुसूत्रधृक् हेमाभमौञ्जीकटिसूत्रमेखलः ॥३८॥ तं दृष्ट्वा ब्राह्मणं वालास्तस्तत्र सरसीतते ॥ जहृषुः कौतुकाविष्टाः कोऽयं नो नयनातिथिः ॥ ३९ ॥ संत्य-

रूप में अद्वितीय, सुन्दर मुख का, कमल के पत्ते समान लम्बे नेत्र वाला, विशाल छाती वाला, सुन्दर भुजा वाला, श्याम छवि का, अति सुन्दर, दूसरे कामदेव के सदृश था ॥ ३७ ॥ शिखा सहित वह ब्रह्मचारी दण्ड लिए हुए धनुष धारण किए हुए कामदेव के समान शोभायमान था। वह मृगचर्म ओढ़े सुन्दर यज्ञोपवीत धारण किए हुए कमर में सोने की सी मूँज की करधनी पहिरे था ॥ ३८ ॥ उस ब्राह्मण को वहाँ सरोवर तट पर देख कर वे कन्या बड़ी प्रसन्न

हुईं और आश्चर्य युक्त होकर (आपस में कहने लगीं कि) ५६ हम लोगों के नेत्रों का कौन अतिथि है ॥ ३९ ॥ नाचना गाना छोड़कर वे सब इसको देखने की लालसा में पड़ गईं और बहेलिये के बाण से घायल हरिणी के समान वे कामदेव के बाण से घायल हो गईं ॥ ४० ॥ ये पाँचों मुग्ध कन्या घबड़ाहट में "देखो, देखो" ऐसा कहती हुईं उस

त्तगीतनृत्यास्तास्तस्यालोकनलालसाः ।। हरिण्यो लुब्धकेनेव विद्धाः कामेन सायकैः ॥४०॥
पश्य पश्येति जल्पन्त्यो मुग्धाः पञ्च सुसम्भ्रमम् ॥ तस्मिन् विप्रवरे यूनि कामदेवभ्रमं ययुः ॥४१॥
पुनः पुनस्तमभ्यर्च्य नयनैः पंकजैरिव ॥ पश्चाद्विचारमारब्धमप्सरोभिः परस्परम् ॥ ४२ ॥
यद्ययं कामदेवो हि रतिहीनः कथं भवेत् ॥ अथायमश्विनौ देवौ तौ देवौ युगचारिणौ ॥४३॥
गन्धर्वः किन्नरो वाथ सिद्धो वा कामरूपधृक् ॥ ऋषिपुत्रोऽथवा कश्चिद्वा पुरुषोत्तमः ॥४४॥
अथवा कोऽपि देवोऽयं धात्रा सृष्टो हि नःकृते ॥ यथा भाग्यवतामर्थे निधानं पूर्वकर्मभिः ॥४५॥

श्रेष्ठ ब्राह्मण युवा के चित्त में कामदेव का भ्रम उत्पन्न करने लगीं ॥ ४१ ॥ बारम्बार अपने कमलरूपी नयनों से उसका पूजन करती हुईं इन अप्सराओं ने विचार करना आरम्भ किया ॥ ४२ ॥ कि यदि यह कामदेव हों तो रति के विना कैसे हो सकते हैं, यदि यह वेव अश्विनी कुमार होते तो दोनों साथ होते ॥ ४३ ॥ यह कोई गन्धर्व हैं, किन्नर है अथवा कामरूप धारण किये कोई सिद्ध है, अथवा किसी ऋषि का पुत्र है या कोई उत्तम मनुष्य है ॥ ४४ ॥ यह कोई भी

हो, विधाता ने इसको हम लोगों के लिये ही बनाया है, जैसे पूर्व कर्मों के प्रभाव से भाग्यवान् की सम्पत्ति प्राप्त होती है ॥ ४५ ॥ उसी तरह करुणाजल की लहर से चलायमान आर्द्र चित्त से गौरी हम कुमारियों के लिये उत्तम वर लाई हैं ॥ ४६ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! पाँचों कन्या परस्पर कह रही थीं कि यह तुमसे वरा गया, तथा मुझसे वरा गया जैसे तुमसे वरा

तथास्माकं कुयारीणां गौर्या नीतो वरोत्तमः ॥ करुणाजलकल्लोलप्लवाद्रीकृतचित्तया ॥४६॥
मया वृतस्त्वया चायं त्वया वृत्तस्तथा मया ॥ एवं पञ्चसु कन्यासु वदन्तीषु नृपोत्तम ॥४७॥
श्रुत्वा तद्वचनं तत्र कृतमाध्याह्निकक्रियः ॥ आलोच्य हृदये सोऽपि विघ्नमेतदुवस्थितम् ॥४८॥
ब्रह्मविष्णुगिरिशादयः सुरा ये च सिद्धमुनयः पुरातनाः ॥ तेऽपि योगबलिनो विमोहिता
लीलया तदबलाभिरद्भुतम् ॥४६॥ योषितां नयनतीक्ष्णसायकभ्रूलतासु दृढचापनिर्गतैः ॥
धन्विना मकरकेतुना हतः कस्य नो पतति हा मनोमृगः ॥५०॥ तावदेव नयधीर्विराजते ताव-

गया वैसे मुझसे वरा गया ॥ ४७ ॥ वहाँ पर इनके वचन को सुनकर मध्याह्न की क्रिया करके उस (ब्रह्मचारी) ने मन में विचार किया कि यह तो बड़ा विघ्न उपस्थित हुआ ॥ ४८ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इत्यादि देवता तथा प्राचीन वृद्ध मुनि और योगबल वाले ऋषि लोग भी अबलाओं की लीला से मुग्ध हो गये, यह बड़ा आश्चर्य है ॥ ४६ ॥ स्त्रियों के भ्रूलता रूपी कठोर धनुष से निकले हुए नयन रूपी तीखे वाणों से हा ! धनुषधारी कामदेव से हत किसका मन रूपी

मृग वेधा नहीं जाता ॥ ५० ॥ तभी तक नीति और बुद्धि रहती है, तभी तक पाप से भय रहता है, तभी तक अत्यन्त दृढ़-चित्तता रहती है, तभी तक कुल की गणना रहता है ॥ ५१ ॥ तभी तक तप की गम्भीरता, तभी तक मनुष्य यम नियम का पालन कर सकते हैं, जब तक स्त्रियों के नयन रूपी बाणों से काम मोहित मनुष्य शीघ्र वेधा नहीं जाता ॥५२॥

देव वृजिनाद्भयं भवेत् ॥ तावदेव दृढचित्तता भृशं तावदेव गणना कुलस्य च ॥५१॥ तावदेव तपसः प्रगल्भता तावदेव यमसेवनं नृणाम्॥यावदेव वनितेक्षणेषुभिर्मुह्यते द्रुतमदनं पूरुषः ॥५२॥ मोहयन्तु मदयन्तु रागिणां योषितः सुललितैर्मनोहरः मोहयन्ति मदयन्ति मामिमा धर्मरक्षण-परं हि वैर्गुणैः ॥५३॥ मांसरक्तमलमूत्रनिर्मिते योषितां वपुषि निर्घृणेऽशुचौ ॥ कामिनस्तु परिकल्प्य चारुतां मा रहन्तु भुवि मूढचेतसः ॥ ५४ ॥ दारुणो हि परिकीर्त्यतेऽङ्गनासन्निधिर्विमलबुद्धिभिर्बुधैः ॥ यावदत्र न समीपगा इमास्तावदेव हि गृहं व्रजाम्यहम् ॥ ५५ ॥ समीपे

विलासी जन के मन को स्त्रियाँ मनोहर सुन्दर लीला से मोहन करें और उन्मत्त करें (परन्तु) मुझे क्यों उन्मत्त करती और मोहती हैं, किन गुणों से धर्म की परम रक्षा हो सकती है ॥ ५३ ॥ स्त्रियों के मांस, रक्त, मल मूत्र से बने घिनौने, अपवित्र शरीर में कामी लोग सुन्दरता की कल्पना करके मूढचित्त वाले रमण न करें तो भला है ॥ ५४ ॥ विमल बुद्धि वाले महात्माओं ने स्त्रियों का समीप रहना कष्ट कारक कहा है (अतएव) जब तक ये समीप नहीं आतीं

मैं घर चला जाता हूँ ॥ ५५ ॥ जब तक ये वराङ्गना उसके पास नहीं आइं (उसके पहिले ही) वह ब्राह्मण वैष्णव प्रभाव से अन्तर्धान हो गया ॥५६॥ हे राजन्! जब यह अपने योगबल से अन्तर्धान हो गये, तब इस बुद्धिमान् ऋषिपुत्र का अद्भुत कर्म देख कर ॥ ५७ ॥ घबड़ाये हुए नेत्रों वाली ये कन्या हरिण के समान कातर हो गईं और घबड़ाये हुए

तस्य यावन्नैतां गच्छन्ति वराः स्त्रियः ॥ वैष्णवेन प्रभावेण तावदन्तर्दधे द्विजः ॥५६॥ तस्य योगबलाद् भूप गतस्यादर्शनं तदा ॥ दृष्ट्वा तदद्भुतं कर्म ऋषिपुत्रस्य धीमतः ॥ ५७ ॥ वित्रस्तनयना बालाः कुरङ्ग्य इव कातराः ॥ सम्भ्रान्तहृदयाः शून्या ददृशुस्ता दिशो दश ॥५८॥ कन्यका ऊचुः—इन्द्रजालं स्फुटं वेत्ति मायां जानाति वा पुनः ॥ दृष्टोऽप्यदृष्टरूपोऽभूदित्यूचुश्च परस्परम् ॥ ५९ ॥ व्याप्तं च हृदयं तासां तदैव विरहाग्निना ॥ ज्वलद्दावानलेनेव सुस्निग्ध सान्द्रकाननम् ॥६०॥ त्यक्त्वैन्द्रजालिकीं विद्यां कान्तं दर्शय सत्वरम् ॥ स्वात्मान

नेत्रों से शून्य दसों दिशाओं में देखने लगीं ॥ ५८ ॥ कन्याओं ने कहा—यह भली-भाँति इन्द्रजाल अथवा माया जानता है, देखते-देखते अदृष्ट हो गया—ऐसा वे आपस में कहने लगीं ॥ ५९ ॥ तब इन सभों का हृदय विरह की अग्नि से व्याप्त हो गया (मानों) स्निग्ध और सघन वन दावानल में जलने लगा ॥ ६० ॥ हे कान्त! इन्द्रजाल की विद्या

त्याग कर अपना दर्शन दो तुमको पहिले ग्राम में मक्खी के समान करना उचित नहीं है ॥ ६१ ॥ हा अभाग्य ! विधाता ने तुमको रच कर हम लोगों को क्यों दिखलाया; जान पड़ता है कि हम लोगों को बड़ा कष्ट देने ही के निमित्त तुम बनाये गये हो ॥ ६२ ॥ क्या तुम्हारा चित्त निर्दयी है, क्या हम लोगों में तुम्हारी रुचि नहीं है, हे कान्त ! क्या तुम

नर्मतो युक्तं प्राग्ग्रासे मक्षिकोपमम् ॥ ६१ ॥ हा कष्टं दर्शितः कस्माद्धात्रा त्वं घटितः कुतः ज्ञातं महान् हि सन्तापहेतुस्त्वं हि विनिर्मितः ॥६२॥ कच्चित्ते निर्दयं चेतः कच्चिदस्मासु नो मतिः ॥ कच्चिद् धूर्तोऽसि हे कान्त कच्चिन्मुष्णासि नो मनः ॥६३॥ कच्चिन्न प्रत्ययोऽस्मासु कच्चिदस्मान् परीक्षसे॥कच्चिन्नृत्यकलाशीलः कच्चिन्मायाविशारदः॥६४॥कच्चिच्चित्ते प्रवेष्टुं च वेत्सि विज्ञान-लाघवम् ॥ कच्चिन्निष्क्रमणोपायं न जानासि कुतः पुनः ॥ ६५ ॥ कच्चिद्विनाऽप-राधं तु त्वामस्मासु प्रकुप्यसे ॥ कच्चिद् दुःखं न जानासि परेषां विप्रलम्भजम् ॥ ६६ ॥

धूर्त हो या क्या तुम हम लोगों के मन को चुराते हो ॥ ६३ ॥ क्या तुम हम लोगों का विश्वास नहीं करते, अथवा हम लोगों की परीक्षा लेते हो; क्या तुम नाचने की कला में निपुण हो या माया में चतुर हो ॥ ६४ ॥ क्या किसी के चित्त में प्रवेश करने के विज्ञान के लाघव को जानते हो और इसमें से निकलने के उपाय को नहीं जानते ॥ ६५ ॥ क्या बिना किसी अपराध के तुम हम लोगों पर क्रोध करते हो, क्या दूसरों को धोखा देने से उत्पन्न दुःख को तुम नहीं

जानते ॥ ६६ ॥ हे हृदयेश्वर ! तुम्हारे दर्शन के बिना हम न जावेंगी, फिर से तुम्हार दर्शन की आशा करती हुई हम जी रही हैं ॥ ६७ ॥ जहाँ पर आप गये हो वहीं पर हम लोगों को शीघ्र ले चलो, तुम्हारा दर्शन हम लोगों के सन्ताप को तुरत हर लेगा तो वैसा ही करो ॥ ६८ ॥ सर्वथा दर्शन दो, और दया करो, सज्जन लोग किसी के नाश को

त्वद्दर्शनं विना नूनं हृदयेश्वर साम्प्रतम् ॥ न जीवामोऽथ जीवामः पुनस्त्वद्दर्शनाशया ॥ ६७ ॥ वयं च नीयतां तत्र शीघ्रं यत्र गतो भवान् ॥ त्वद्दर्शनं हरेत् सद्यः सन्तापं नः कुरुष्व तत् ॥ ६८ ॥ सर्वथा दर्शनं देहि कारुण्यं भज सर्वदा ॥ पर्यन्तं न प्रपश्यन्ति कस्यचित् सज्जना जनाः ॥ ६९ ॥

इति श्री पद्मपुराणे उत्तरखण्डे माघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे गन्धर्वकन्याविरहप्राप्तिर्नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

नहीं देखते ॥ ६९ ॥

श्री पद्मपुराण में माघमाहात्म्य के दिलीप वसिष्ठ के सम्वाद में गन्धर्व कन्याओं की विरह प्राप्ति नाम का अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १८ ॥

व्यासजी ने कहा—उन कन्याओं ने इस प्रकार विलाप किया, और बहुत देर तक प्रतीक्षा करके माता पिता के भय से शीघ्र घर को जाने लगीं ॥ १ ॥ उसके प्रेम के बन्धन में बँधी हुई अत्यन्त विरह में व्याकुल होकर धैर्य धारण करके किसी प्रकार से अपने घर आईं ॥ २ ॥ घर पर आकर वे सब जलयन्त्र के पास गिर पड़ीं, उनकी माताओं ने

व्यास उवाच—इत्थं विलप्य ताः कन्याः प्रतीक्ष्य च बहुक्षणम् ॥ पितुर्भयाद् गृहं गन्तुं शीघ्रमारेभिरे तः ॥१॥ तत्प्रेमनिगडैर्बद्धा भृशं विरहविक्लवाः ॥ कथञ्चिद्धैर्यमालम्ब्य ताः स्वं स्वं गृहमागताः ॥२॥ आगत्य पतिताः सर्वा जलयन्त्रसमीपतः ॥ किमेतन्मातृभिः पृष्टा कुतः कालात्ययोऽभवत् ॥ ३ ॥ कन्या ऊचुः—क्रीडन्त्यः किन्नरीभिस्तु सार्धं संगीतकं मुदा ॥ संस्थितास्तेन न ज्ञातं दिवसादि सरोवरे ॥ ४ ॥ पथि श्रान्ता वयं मातः सन्तापस्तेन नस्तनौ ॥ मोहेन महता वक्तुं न केनाप्युत्सहामहे ॥ ५ ॥ वसिष्ठ उवाच—इत्युक्त्वा लुलु-

पूछा—यह क्या ? तुम लोगों को इतना विलम्ब कहाँ हुआ ॥३॥ कन्याओ ने कहा–किन्नरियों के साथ खेलती हुई और आनन्दपूर्वक गाती हुई हम लोग सरोवर पर थीं। इसी से दिन का पता न चला ॥ ४ ॥ हे माता ! हम लोग मार्ग की थकी हैं, इसी से हम लोगोंके शरीरमें सन्ताप है, अति मोहके कारण हम लोगों को कुछ कहने का उत्साह नहीं होता ॥५॥

वसिष्ठजी ने कहा—ऐसा कह कर वे कुमारियाँ मणि भूति पर लेटने लगीं और अपने भाव को छिपाती हुई मुग्ध कन्या माताओं से बात करने लगीं ॥ ६ ॥ उस समय कोई आनन्दपूर्वक क्रीड़ा-मयूर को नहीं नचाती, न कोई कौतहल से पिंजड़े के सुग्गे को पढ़ाती है ॥ ७ ॥ कोई नेवले का लाड़ नहीं करती, न कोई मैंना को पुकारती है, अति मुग्ध होकर

ठुस्तत्र मणिभूमौ कुमारिकाः ॥ आकार गोपयन्त्यस्ता मुग्धा जल्पन्ति मातृभिः ॥ ६ ॥
काचिन्नर्तयति क्रीडामयूरं न मुदा तदा ॥ न पाठयति त कीरं पञ्जरेऽन्या कुतूहलात् ॥७॥
लालयन्नकुलं नान्या नो ह्वापयति सारिकाम् ॥ अपराऽतीव सम्मुग्धा नैव खेलति सारसैः ॥८॥
भेजिरे न विनोदं ताः रेमिरे नैव मन्दिरे ॥ ऊचिरे बान्धवैर्बाला वीणावाद्यं न चक्रिरे ॥६॥
कल्पद्रुमप्रसूनं यद्रसवत्तं सुधोपमम् ॥ मन्दारकुसुमामोदि न पपुर्मधुरं मधु ॥१०॥ योगिन्य
इव ताः कन्या नासाग्रे न्यस्तलोचनाः अलक्ष्यध्यानसम्पन्नाः पुरुषोत्तमानसाः ॥ ११ ॥ चन्द्र-

कोई सारसों से नहीं खेलती ॥ ८ ॥ वे न तो विनोद करती थीं और न घर में क्रीड़ा करती थीं, वे न तो भाई बन्धु से बोलती थीं और न वीणा बजाती थीं ॥ ६ ॥ वे अमृत के समान रस वाले कल्पवृक्ष के फूल तथा मन्दार के फूलों को नहीं सूँघती न तो मीठी मधु पीती हैं ॥ १० ॥ वे कन्या योगिनियों की तरह नेत्रों को नाक के अगले भाग में गड़ाये अलक्ष्य ध्यान से युक्त उस दिव्य पुरुष में चित्त लगाये थीं ॥ ११ ॥ कभी तो चन्द्रकान्त मणि पर जल के

बूँद गिराती थीं। कभी क्षण भर खिड़की में बैठकर नेत्रों को इधर उधर घुमाती थीं ॥ १२ ॥ क्षण भर कमलिनी के लम्बे पत्तों की सेज बनाती थीं और कभी वे ठण्डे केले के पत्तों द्वारा सखियों से पंखा झलवाती थीं ॥ १३ ॥ इस प्रकार वे स्त्रियाँ रात्रि को युग के समान मानती हुईं, किसी तरह धैर्य धारण करके ज्वर पीड़ित के समान विह्वल हुईं

कान्तमणिच्छन्ने स्रवद्वारिकणद्रवे ॥ क्षणं वातायने स्थित्वा दोलायन्त्रे क्षणं क्षणम् ॥१२॥ रचयन्ती क्षणं शय्यां दीर्घिकाम्भोजिनीदलैः ॥ वीज्यमानाः सखीभिस्ताः शीतलैः कदलीदलैः ॥१३॥ इत्थं युगसमां रात्रिमनयंस्ता वरस्त्रियः ॥ कथञ्चिद्धीरतां कृत्वा विह्वलाः सज्वरा इव ॥१४॥ प्रातर्व्योममणिं दृष्ट्वा मन्यमानाः स्वजीवितम् ॥ विज्ञाप्य मातरं स्वां स्वां गौरीं पूजयितुं गताः ॥१५॥ स्नात्वा तेन विधानेन पुष्पैर्धूपैस्तथा पुनः ॥ विधाय पूजनं देव्या गायन्त्यस्तत्र ताः स्थिताः ॥१६॥ एतस्मिन्नन्तरे विप्रस्नातुं सोऽपि समागतः ॥ पितुराश्रमतस्तस्मादच्छोदे वै सरोवरे ॥१७॥ दृष्ट्वा दृष्ट्वेति च पुनरित्यूचुस्ताश्च कन्यकाः ॥ मित्रं

॥ १४ ॥ प्रातःकाल सूर्य नारायण को देख कर अपने को जीवित मानती हुईं अपनी अपनी माताओं से कह कर वे गौरी की पूजा करने को गईं ॥ १५ ॥ उसी विधि से स्नान करके पुष्प तथा धूप से (गौरी) पूजन करके ये देवियाँ वहीं पर गाने लगीं ॥ १६ ॥ इस बीच में वह ब्राह्मण भी स्नान करने के लिये अपने पिता के आश्रम से उस

अच्छोद सरोवर पर आया ॥ १७ ॥ उसको देखकर उन कन्याओं ने वारम्बार 'वाह वाह' किया, जैसे कमलिनी
रात्रि के अन्त में सूर्य को देखकर कहती हैं ॥ १८ ॥ उस ब्रह्मचारी को देखकर उनके नेत्र खिल उठे, तब वे कन्या उस
ब्रह्मचारी के समीप गईं ॥१६ ॥ और एक ने एक दूसरे का हाथ पकड़ कर चारों ओर से भुजपाश में उसको बाँध लिया

दृष्ट्वैव रात्र्यन्ते नलिन्य इव कन्यकाः ॥१८॥ उत्फुल्लनयना जातास्तं दृष्ट्वा ब्रह्मचारिणम् ॥
गत्वा तदैव ताः कन्याः समीपं ब्रह्मचारिणः ॥ १६ ॥ सव्यापसव्यवंधेन भुजपाशं च
चक्रिरे ॥ गतोऽसि धूर्त पूर्वेद्युर्गन्तुमद्य न लभ्यते ॥२०॥ वृतस्त्वं नूनमस्माभिर्नात्र तेऽस्ति
विचारणा ॥ इत्युक्तो ब्राह्मणः प्राह प्रहसन् बाहुपाशगः ॥२१॥ युष्माभिरुच्यते भद्रमनुकूलं
प्रियं वचः ॥ प्रथमाश्रमनिष्ठस्य किन्तु नाद्यापि मे व्रतम् ॥ २२ ॥ वेदाभ्यसनशीलस्य पारं
याति गुरोः कुले ॥ आश्रमे यत्र यो धर्मो रक्षणीयः स पण्डितैः ॥२३॥ विवाहोऽयमतो मन्ये

और कहने लगीं कि हे धूर्त ! उस दिन तो भाग गया था परन्तु आज नहीं भाग सकता ॥ २० ॥ हम लोगों ने तुमको
वर लिया है, अब इनमें तुमको कुछ विचार न करना चाहिए, ऐसा कहने पर बहुपाश से बँधे हुए ब्राह्मण ने हँस कर
कहा ॥ २१ ॥ तुम लोगों ने कल्याण के प्रिय तथा अनुकूल वचन कहा है, परन्तु मैं प्रथम आश्रम अर्थात् विद्याभ्यास
में स्थित हूँ और अभी मेरा व्रत ॥ २२ ॥ गुरुकुल में वेदाभ्यास करते हुए समाप्त नहीं हुआ है. पंडितों को चाहिये

॥७६॥

कि जिस आश्रम में रहें उसके धर्म की रक्षा करें ॥ २३ ॥ हे कन्याओं ! मैं इस आश्रम में विवाह करना धर्म नहीं समझता; उसके वाक्य को सुन कर वे कन्यायें उससे इस प्रकार बोलीं ॥ २४ ॥ जैसे वैशाख मास में पूरी ध्वनि से उत्साह सहित कोयल बोलती है, धर्म से अर्थ, अर्थ से काम तथा काम से धर्म के फल का उदय होता है ॥२५॥ ऐसा ही

न धर्म इति कन्यकाः ॥ आकर्ण्य तस्य वाक्यानि तमूचुस्ता वचस्ततः ॥२४॥ सकलध्वनि सोत्कण्ठाः कोकिला इव माधवे ॥ धर्मादर्थोऽर्थतः कामः कामाद्धर्मफलोदयः ॥२५॥ इत्येवं निश्चितं शास्त्रं वर्णयन्ति विपश्चितः ॥ सकामा धर्मबाहुल्यात् पुरस्ते समुपस्थितः ॥२६॥ सेव्यतां विविधैर्भोगैः स्वर्गभूमिरियं ततः ॥ श्रुत्वा तद्वचनं तासां प्राह गम्भीरया गिरा ॥२७॥ तथ्यं वो वचनं किन्तु समाप्याहं स्वकं व्रतम् ॥ प्राप्याऽनुज्ञां गुरोः कुर्वे वैवाहं कर्म नान्यथा ॥२८॥ इत्युक्त्वा पुनरूचुस्ताः स्फुटं मूढोऽसि सुन्दर ॥ दिव्यौषधं ब्रह्मधियो रसायनं सिद्धि-

शास्त्र में निश्चित किया गया है और पण्डित लोग भी ऐसाही वर्णन करते हैं, हम लोग काम सहित धर्म की अधिकता से तुम्हारे पास आई हैं ॥ २६ ॥ नाना प्रकार के भोगों से इस स्वर्ग भूमि का भोग करो, तब इनके वचन को सुनकर गम्भीर वाणी से उसने कहा ॥ २७ ॥ तुम लोगों का कहना सत्य है परन्तु मैं अपना व्रत समाप्त करके तथा गुरुजी की आज्ञा प्राप्त करके विवाह की क्रिया करूँगा, अन्यथा न करूँगा ॥ २८ ॥ उसके इस प्रकार कहने पर उन कन्याओं

ने स्पष्ट रूप से कहा—हे सुन्दर ! तुम मूर्ख हो, दिव्य औषधि, ब्रह्म बुद्धि, रसायन, सिद्धि, अच्छे कुल की सुन्दर स्त्रियाँ, मन्त्र तथा सिद्ध रस—इन पदार्थों के आने पर बुद्धिमान को धर्मरूप से इनका निषेध न करना चाहिये ॥ २६ ॥ भाग्य से यदि कार्य की सिद्धि हो जाये तो नीति जानने वाले इनकी उपेक्षा नहीं करते, क्योंकि उपेक्षा फल देने वाली नहीं

निधिः साधुकुला वराङ्गनाः ॥ मन्त्रस्तथा सिद्धरसश्च धर्मतो नेमा निषेध्याः सुधिया समागताः ॥२६॥ कार्यं हि दैवाद्यदि सिद्धिमागतं तस्मिन्नुपेक्षां न च याति नीतिगः ॥ यस्मादुपेक्षा न पुनः फलप्रदा तस्मान्न दीर्घीकरणं प्रशस्यते ॥ ३० ॥ सान्द्रानुरागाः कुलजन्मनिर्मलाः स्नेहार्द्रचित्ताः सुगिरः स्वयंवरा ॥ कन्याः सुरूपाः खलु चारुयौवना धन्या लभन्तेऽत्र नरास्तु नेतरे ॥३१॥ क्व वयं सुरसुन्दर्यः क्व भवांस्तापसो बटुः ॥ दुर्घटस्य विधाने हि मन्ये धाताऽतिपण्डितः ॥३२॥ तस्मादस्मानिदानीं तु स्वीकुर्यान्मङ्गलं भवान् ॥ गान्धर्वेण विवाहेन

होती (इसी से किसी कार्य के) टालने में प्रशंसा नहीं होती ॥ ३० ॥ केवल भाग्यवान् पुरुष ही प्रेम से पूर्ण, निर्मल कुल में उत्पन्न, स्नेह से युक्त, मीठी बोलने वाली, स्वयंवर चाहने वाली, सुरूप, युवा तथा मनोहर कन्याओं को प्राप्त करते हैं—दूसरे नहीं ॥ ३१ ॥ कहाँ हम अद्वितीय सुन्दरियाँ, कहाँ आप तपस्वी बालक, हम जानते हैं कि बेमेल के मिलाने में विधाता अवश्य चतुर है ॥ ३२ ॥ अतएव आप इस समय हम लोगों के मंगल को गन्धर्व विवाह से स्वीकार कीजिये।

नहीं तो हम लोग जीवित न रहेंगी ॥ ३३ ॥ उनके इस वाक्य को सुन कर उस धर्म जानने वालों में श्रेष्ठ ब्राह्मण ने कहा—हे मृग नयनियों ! धर्म परायण मनुष्य अपने धर्म को कैसे त्याग सकते हैं ॥ ३४ ॥ धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष ये चारों विधिपूर्वक सफल होते हैं, और विपरीत होने से निष्फल होते हैं ॥३५॥ मैं व्रती रहकर विना योग्य समय

ह्यन्यथा नो न जीवितम् ॥३३॥ श्रुते वाक्ये ततः प्राह ब्राह्मणो धर्मवित्तमः ॥ भो मृगाक्ष्यः कथं त्याज्यो धर्मो धर्मपरैर्नरैः ॥३४॥ धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्चैव चतुष्टयम् ॥ यथोक्तं सफलं ज्ञेयं विपरीतं तु निष्फलम् ॥३५॥ नाकालेऽहं व्रती कुर्यां ततो दारपरिग्रहम् ॥ न क्रिया फलमाप्नोति क्रियाकाल न वेत्तियः ॥३६॥ यतो धर्मविचारेऽस्मिन् प्रसक्तं मम मानसम् ॥ तस्माच्छृणुत भो कन्या न समीहे स्वयंवरम् ॥३७॥ एवं ज्ञात्वाऽऽशयं तस्य समीक्ष्यैताः परस्परम् ॥ करात्करं विमुच्याथ जग्राहांघ्री प्रमोहिनी ॥ ३८ ॥ भुजौ जगृहतुस्तस्य

के विवाह न करूँगा, जो मनुष्य क्रिया के काल को नहीं जानता उसकी क्रिया फल को प्राप्त नहीं होती ॥ ३६ ॥ हे कन्याओं ! सुनो, मेरा चित्त इस समय धर्म के विचार में लगा है, अतएव मैं स्वयंवर की इच्छा नहीं करता ॥ ३७ ॥ इस प्रकार उसके आशय को जान कर इन्होंने परस्पर देख कर तथा हाथ छोड़कर इन मोहिनियों ने उसके चरण पकड़ लिये ॥ ३८ ॥ सुशीला तथा सुस्वरा ने इसकी भुजाओं को पकड़ा, सुतारा ने आलिङ्गन किया और चन्द्रिका

तवभी प्रलय की अग्नि के समान यह ब्रह्मचारी निर्विकार अर्थात् काम की भावना से
ने मुख चूम लिया ॥ ३९ ॥ तब भी प्रलय की अग्नि के समान यह ब्रह्मचारी निर्विकार अर्थात् काम की भावना से
रहित था, उसने क्रोध से मूर्च्छित होकर इनको शाप दिया ॥ ४० ॥ तुम लोग डाइन की तरह मेरे शरीर में लिपटी हो,
तो तुम पिशाचिनी हो जाओ, उससे जल्दी से ऐसा शाप दिये जाने पर वे उसको छोड़कर सामने खड़ी हो गईं

सुशीला सुस्वरा तथा ॥ आलिलिङ्ग सुतारा च चचुम्बे चन्द्रिका मुखम् ॥३९॥ तथापि निर्वि-
कारोऽसौ प्रलयानलसन्निभः ॥ शशाप ब्रह्मचारी ताः क्रोधेनात्यन्तमूर्च्छितः ॥४०॥ पिशाच्य
इव मां लग्नास्तत्पिशाच्यो भविष्यथ ॥ एवं तेनाशु शप्तास्तास्तं त्यक्त्वा पुरतः स्थिताः ॥४१॥
किमेतच्चेष्टितं पाप ह्यनागसि जने त्वया ॥ प्रिये कृत्येऽप्रियं कृत्वा धिक्तां धर्मज्ञतां तव ॥४२॥
अनुरक्तेषु भक्तेषु मित्रेषु द्रोहकारिणः ॥ पुंसां लोकद्वये सौख्यं नाशमेतीति न श्रुतम् ॥४३॥
तस्मात्त्वमपि नः शापात्पिशाचो भव सत्वरम् ॥ इति कोपरता बाला निश्वसन्त्यः क्षुधाकुलाः॥४४॥

॥४१॥ (और कहने लगीं) हम लोगों ने क्या पाप किया जो तुमने मुझ निरपराधियों को शाप दे दिया, प्रिय करने में
अप्रिय किया की, तुम्हारी धर्मज्ञता को धिक्कार है ॥ ४२ ॥ हम लोगों ने सुना है कि प्रेमियों से, भक्तों से तथा मित्रों से
द्रोह करने वाले मनुष्यों को सुख दोनों लोक में नष्ट होते हैं ॥ ४३ ॥ अतएव तुम भी हम लोगों के शाप से शीघ्र ही
पिशाच हो जाओ, इस प्रकार क्रोध से व्यग्र कन्यायें हाँफती हुईं भूख से व्याकुल हो गईं ॥ ४४ ॥ तब हे राजन् !

परस्पर के क्रोध से उस सरोवर पर वे कन्यायें और वह ब्रह्मचारी सब पिशाच पिशाचिनी हो गये ॥ ४५ ॥ और पिशाच पिशाचिनी दारुण शब्द में चिल्लाते हुए अपने पहिले पाप के कर्म के फल को भोगने लगे ॥४६॥ हे राजन्! पूर्व जन्म के किये हुए शुभ तथा अशुभ कार्य अपनी छाया के समान अपने काल ही में प्रकट होते हैं, इनको देवता भी बदल नहीं

तदैवान्योऽन्यसंरम्भात्तस्मिन् सरसि पार्थिव ॥ ताः कन्या ब्रह्मचारी च सर्वे पैशाच्यमागताः ॥४५॥ पिशाच्यः स पिशाचश्च क्रन्दमानाः सुदारुणम् ॥ क्षपयन्ति विपाकं तं पूर्वोपात्तस्य कर्मणः ॥४६॥ स्वकाले प्रभवत्येव पूर्वोपात्तं शुभाशुभम् ॥ स्वच्छायामिव दुर्वारं देवानामपि पार्थिव ॥४७॥ क्रन्दन्ति पितरस्तासां मातरस्तस्य तत्र च ॥ अाः प्रमादो हि बालानां दैवं हि दुरतिक्रमम् ॥४८॥ तत्र ऊर्ध्वं पिशाचास्ते अहोरात्रं सदुःखिताः ॥ इतश्चेतश्च धावन्तो वसन्ति सरसस्तटे ॥४९॥ एवं बहुतिथे काले लोमशो मुनिसत्तमः ॥ पौषशुक्लचतुर्दश्यां अच्छोदे स्नातुमाययौ ॥५०॥ तं दृष्ट्वा ब्राह्मणं सर्वे पिशाचाः क्षुत्समाकुलाः ॥ धावन्तो

सकते ॥ ४७ ॥ वहाँ पर इनके माता पिता (आकर) रोने लगे और कहने लगे वाह रे बालकों का प्रमाद! दैव गति का उल्लंघन नहीं हो सकता ॥ ४८ ॥ इसके बाद ये पिशाच रात दिन दुःखी रहते हुए सरोवर के तट पर इधर उधर घूमते रहते थे ॥ ४९ ॥ इस प्रकार (रहते हुए) बहुत दिन के बाद मुनियों में श्रेष्ठ लोमशजी पौष शुक्ल चतुर्दशी को अच्छोद सरोवर पर स्नान करने आये ॥ ५० ॥ क्षुधा से व्याकुल पिशाचों ने इनको देखा, उनकी हत्या करने के लिए

ये सब लोग गोल बाँध कर उनकी ओर दौड़े ॥ ५१ ॥ परन्तु वे लोमश ऋषि के तेज से जलने लगे और उनके सम्मुख खड़े न रह सके, दूर हट गये ॥ ५२ ॥ वेदनिधि ब्राह्मण भी वहाँ पर आ गये, हे राजन् ! उन्होंने लोमश ऋषि को देख कर साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥ ५३ ॥ और मस्तक पर अञ्जलि को बाँध कर मनोहर वचन कहने लगे।

हन्तुकामाश्च मिलिता यूथवर्तिनः ॥ ५१ ॥ दह्यमानाः सुतीव्रेण तेजसा लोमशस्य च ॥ असमर्थाः पुरः स्थातुं सर्वे ते दूरतः स्थिताः ॥ ५२ ॥ तत्र वेदनिधिर्विप्रस्तदैव हि समागतः ॥ समीक्ष्य लोमशं राजन् साष्टाङ्गं प्रणिपत्य सः ॥ ५३ ॥ उवाच सूनृतां वाचं बद्ध्वा शिरसि चाञ्जलिम् ॥ वेदनिधिरुवाच—महाभाग्यवशाद्विप्र साधूनां सङ्गमो भवेत् ॥ ५४ ॥ गङ्गादिपुण्यतीर्थेषु यो नरः स्नाति सर्वदा ॥ यः करोति सतां सङ्गं तयोः सत्सङ्गमो वरः ॥५५॥ गुरूणां सङ्गमो विप्र दृष्टादृष्टफलो भुवि ॥ स्वर्गदो रोगहारी च किन्तु स्यात् साधुसङ्गमः ॥ ५६ ॥ वसिष्ठ उवाच—इत्युक्त्वा कथयामास पूर्ववृत्तान्तमद्भुतम् ॥ इमा गन्धर्व-

वेदनिधिजी ने कहा—बड़े भाग्य से साधुओं का संगम होता है ॥ ५४ ॥ जो मनुष्य गङ्गा इत्यादि तीर्थों में सर्वदा स्नान करता है और जो सज्जनों का सङ्ग करता है, इन दोनों प्रकार के मनुष्यों में सत्सङ्ग करनेवाला श्रेष्ठ होता है ॥५५॥ हे विप्र ! संसार में गुरुजनों का संगम दृष्ट तथा अदृष्ट फल को देता है, परन्तु साधुजन का संगम स्वर्ग को देता है तथा

रोगों को हरण करता है ॥ ५६ ॥ वसिष्ठजी ने कहा—ऐसा कह कर प्राचीन अद्भुत वृत्तान्त वर्णन करने लगे कि ये
गन्धर्व की कन्यायें हैं और यह मुनि मेरा पुत्र है ॥५७॥ सभी शाप से विमोहित होकर, हे मुनिश्रेष्ठ! मुख नोचा किये
आपके सामने खड़े हैं ॥ ५८ ॥ आपके दर्शन से आज बालकों का निस्तार होगा, जिस प्रकार सूर्य के उदय होने पर

सर्वे पिशाचरूपेण मिथः शापविमोहिताः ॥ दीनानन्-
कन्यास्ता मुने सोऽयं ममात्मजः ॥५७॥ त्वद्दर्शनेन बालानां निस्तारोऽद्य भविष्यति ॥
नास्तु तिष्ठन्ति तवाग्रे मुनिसत्तम ॥५८॥ श्रुत्वैतल्लोमशो राजन् कृपार्द्रीकृतलोचनः ॥
सूर्योदये तमःस्तोमः किन्न लीयेत गह्वरे ॥५९॥ लोमश उवाच—मत्प्रसादाच्च बालानां
प्रत्युवाच महातेजास्तं मुनिं पुत्रदुःखितम् ॥ ६० ॥
स्मृतिः सपदि जायताम् ॥ धर्मं च वच्मि तं येन मिथः शापो लयं व्रजेत् ॥ ६१ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे माघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे गन्धर्वकन्याशापवर्णनं नामोनविंशोऽध्यायः॥१९॥

अन्धकार का पुञ्ज गुफा में लीन होता है ॥ ५९ ॥ हे राजन्! ऐसा सुनते ही लोमश ऋषि के आँखों में जल भर आया
और उस पुत्रदुःखी महातेजस्वी ऋषि से कहने लगे ॥ ६० ॥ लोमशजी ने कहा—मेरे प्रसाद से बालकों को शीघ्र स्मृति
उत्पन्न हो, मैं उनको धर्म कहता हूँ जिससे इनका परस्पर का शाप नष्ट हो जायगा ॥ ६१ ॥

श्री पद्मपुराण के माघमहात्म्य में वशिष्ठ और दीलिप के संवाद में गन्धर्व कन्या के शाप का वर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १९ ॥

वेदनिधिजी ने कहा—हे महर्षि ! धर्म को कहिये जिससे ये बालक मुक्त हों, विलम्ब करने का समय नहीं है क्योंकि शाप की अग्नि बड़ी कष्ट कारक है ॥ १ ॥ लोमशजी ने कहा—ये लोग मेरे साथ विधि पूर्वक माघ स्नान करें, माघ के अन्त में ये शाप से मुक्त होंगे, अन्यथा इनका निस्तार न होगा ॥ २ ॥ हे विप्र ! मुझे यह पूर्ण निश्चय है कि शुभ

वेदनिधिरुवाच—महर्षे कथ्यतां धर्मो मुच्येरन्येन बालकाः ॥ शापाग्निर्दारुणा यतः ॥१॥ लोमश उवाच—सार्धं मया प्रकुर्वन्तु माघस्नानं विधानतः ॥ नायं कालो विलम्बस्य शापं मोचयन्ति माघान्ते नान्यथा निष्कृतिर्भवेत् ॥२॥ शापः पापफलं विप्र पापनाशो भवेन्नृणाम् ॥ माघस्नानेन सत्तीर्थे इति नो निश्चिता मतिः ॥३॥ सप्तजन्मकृतं पापं वर्तमानं च पातकम् ॥ माघस्नानं दहेत् सर्वं पुण्यतीर्थे विशेषतः ॥४॥ प्रायश्चित्तं न पश्यन्ति यस्मिन् पापे मुनीश्वराः ॥ माघस्नानं परं तीर्थे प्रायश्चित्तं समीरितम् ॥५॥ पातकं पुण्यतीर्थेषु नश्येत्तदपि

तीर्थ में माघ स्नान करने से ही मनुष्यों के पाप रूपी शाप का फल नाश होता है ॥ ३ ॥ सात जन्म का किया हुआ पाप तथा वर्तमान जन्म का पाप सभी माघ स्नान से भस्म हो जाता है, विशेष कर पुण्य तीर्थ में स्नान करने से ॥ ४ ॥ मुनीश्वर लोग जिस पाप का प्रायश्चित्त नहीं देखते उसका प्रायश्चित्त श्रेष्ठ तीर्थ में माघ स्नान ही बतलाते हैं ॥ ५ ॥ पुण्य तीर्थों में पाप नष्ट होते हैं तब भी माघ मास में ज्ञान पूर्वक मानसरोवर में स्नान करने से मोक्ष का फल प्राप्त

होता है ॥ ६ ॥ हिमालय पर्वत पर के तीर्थ सब पापों को नाश करने वाले हैं, परन्तु अच्छोद में स्नान करने से इन्द्रलोक प्राप्त होता है; वेद पारंगत ब्राह्मणों ने कहा है कि ॥ ७ ॥ बदरी बन में माघ स्नान करना सब काम को देने वाला, मोक्ष को देने वाला, पाप तथा दुःखों को हरने वाला और सब फलों को देने वाला होता है ॥ ८ ॥

माघतः ॥ ज्ञानकृन्मानसे माघस्तस्मान्मोक्षफलप्रदः ॥६॥ हिमवत्पृष्ठतीर्थेषु सर्वपापप्रणाशनः ॥ इन्द्रलोकप्रदोऽच्छोदे निर्दिष्टो वेदपारगः ॥७॥ सर्वकामप्रदो माघो मोक्षदो बदरीवने ॥ पापहा दुःखहारी च सर्वकामफलप्रदः ॥८॥ रुद्रलोकप्रदो माघो नार्मदः पापनाशनः ॥ यामुनः सूर्यलोकाय तथा कल्मषघातकः ॥९॥ सारस्वतोऽघविध्वंसी ब्रह्मलोकफलस्तथा ॥ विशालफलदो माघो विशालायां द्विजोत्तम ॥१०॥ पापेन्धनस्य दावाग्निर्गर्भहेतुक्रियापहः ॥ विष्णुलोकाय मोक्षाय जाह्नव्यां परिकीर्तितः ॥ ११ ॥ सरयू गण्डकी सिन्धुश्चन्द्रभागा च कौशिकी ॥

नर्मदा नदी का माघ स्नान पाप नाश करने वाला तथा रुद्रलोक देने वाला होता है, तथा यमुना में का स्नान पाप को हटाता है और इससे सूर्यलोक प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ सरस्वती नदी का जल पाप को नाश करने वाला तथा ब्रह्मलोक के फल को देने वाला है, हे द्विजश्रेष्ठ ! विशाला नदी में माघ स्नान का बड़ा फल होता है ॥ १० ॥ यह पाप रूपी इन्धन का दावानल है। तथा गर्भ के कारण-भूत कर्मों का नाश करता हैं, गंगाजी में स्नान करने से

विष्णु लोक की प्राप्ति और मोक्ष का होना प्रसिद्ध है ॥ ११ ॥ सरयू, गण्डकी, सिन्धु, चन्द्रभागा, कौशिकी, तापी, गोदावरी, भीमा, पयोष्णी, कृष्णा, वेणी ॥ १२ ॥ कावेरी, तुङ्गभद्रा तथा अन्य समुद्र में गिरने वाली नदियों में माघ-मास में स्नान करने से मनुष्य पाप रहित होकर स्वर्ग में जाता है ॥ १३ ॥ नैमिषारण्य में स्नान करने से विष्णु

तापी गोदावरी भीमा पयोष्णी कृष्णवेणिका ॥ १२ ॥ कावेरी तुङ्गभद्रा च अन्या याश्च समुद्रगाः ॥ स्नात्वा माघे नरो याति स्वर्गलोकं विकल्मषः ॥ १३ ॥ नैमिषे विष्णुसारूप्यं पुष्करे ब्रह्मणोऽन्तिकम् ॥ आखण्डलस्य लोको हि कुरुक्षेत्रे तु माघतः ॥१४॥ माघो देव-ह्रदे विप्र योगसिद्धिफलप्रदः ॥ प्रभासे मकरादित्ये स्नानाद्रुद्रगणो भवेत् ॥ १५ ॥ माघात् पृथूदके विप्र प्राप्यते वैष्णवं पदम् ॥ देवक्यां देवतादेहो नरो भवति माघतः ॥१६॥ माघस्नानेन भो विप्र गोमत्यां न पुनर्भवः ॥ हेमकूटे महाकाले ॐकारेऽमरकण्टके

भगवान् की समानरूपता, पुष्कर में ब्रह्मा का सामीप्य, तथा कुरुक्षेत्र में माघ मास में स्नान करने से इन्द्रलोक प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ हे विप्र ! देवह्रद में माघ स्नान करने से योग सिद्धि का फल होता है ॥१५ ॥ मकर के सूर्य में प्रभास तीर्थ में स्नान करने से रुद्रगण होता है, हे विप्र ! पृथूदक में माघ स्नान करने से वैष्णव पद प्राप्त होता है, देवकी में माघ स्नान करने से मनुष्य देवता का शरीर प्राप्त करता है ॥ १६ ॥ हे विप्र ! गोमती में माघ स्नान करने से पुनर्जन्म

नहीं होता; हेमकूट, महाकाल, ओंकारेश्वर तथा अमरकण्टक में ॥ १७ ॥ नीलकण्टक तथा अर्बुद में माघ स्नान करने से रुद्रलोक प्राप्त होता है, हे विप्र! मकर की संक्रान्ति के सूर्य में सब नदियों में ॥ १८ ॥ स्नान करने से मनुष्यों की सब कामना पूर्ण होती है, हे द्विजश्रेष्ठ! प्रयाग में माघ स्नान बड़े भाग्य से प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ क्योंकि

॥१७॥ नीलकण्ठेऽर्बुदे माघो रुद्रलोके महीयते ॥ सर्वासां सरितां विप्र सम्भेदे मकरे रवौ ॥१८॥ स्नानेन सर्वकामानामवाप्तिर्जायते नृणाम् ॥ माघस्तु प्राप्यते धन्यैः प्रयागे द्विज-सत्तम ॥१९॥ अपुनर्भवदं तत्र सितासितजलं यतः ॥ गायन्ति देवाः सततं दिवि स्थिता माघः प्रयागे किल नो भविष्यति ॥२०॥ स्नात्वा नरा यत्र न गर्भवेदनां पश्यन्ति तिष्ठन्ति च विष्णुसन्निधौ ॥ मज्जन्ति ये द्वित्र्यहमत्र मानवास्तीर्थे प्रयागे बहुपापकञ्चुकाः ॥ २१ ॥ व्रजन्ति ते नो निरयेषु धर्मवित् स्वर्गेषु ते चारु चरन्ति देववत् ॥ तीर्थैर्व्रतैर्दानतपो-

वहाँ का सफेद और काला जल मोक्ष को देने वाला है। स्वर्ग में देवता लोग निरन्तर गायन करते हैं कि हम लोगों का स्नान माघ मास में प्रयाग में अवश्य होगा ॥ २० ॥ जहाँ पर स्नान करके गर्भ की वेदना को मनुष्य नहीं देखते तथा विष्णु के समीप रहते हैं, अनेक पाप किये हुये भी जो मनुष्य दो तीन दिन भी प्रयाग तीर्थ में स्नान करते हैं॥२१॥ वे धर्मवेत्ता लोग नरक में नहीं जाते परन्तु स्वर्ग में देवता की तरह विचरते हैं, प्राचीन समय में विधाता ने तीर्थ, व्रत, दान, तप और यज्ञ को तराजू के एक पलरे में रक्खा। २२॥ तथा दूसरे पलरे में प्रयाग को माघ स्नान रक्खा तब

माघ स्नान ही श्रेष्ठ होने से भारी निकला, वायु, जल, पत्ती खाना इत्यादि शरीर सुखाने वाले उग्र तपों से चिरकाल में सञ्चित किए हुए ॥ २३ ॥ योगों से जो गति मनुष्य प्राप्त नहीं करता है वह गति मनुष्य प्रयाग में माघ मास में स्नान करने से प्राप्त करता है, जो मकर संक्रान्ति में सूर्योदय में गंगा यमुना के संगम में प्रयाग में नहीं स्नान करते ॥ २ ॥४

भिरध्वरैः सार्धं विधात्रा तुलया धृतः पुरा ॥ २२ ॥ माघः प्रयागस्य तयोर्द्वयोरभून्माघो गरीयानत एव सोऽधिकः ॥ वाताम्बुपर्णाशनदेहशोषणैस्तपोभिरुग्रैश्चिरकालसञ्चितैः ॥२३॥ योगैश्च संयान्ति नरा न तां गतिं स्नानात् प्रयागस्य हि यान्ति यां गतिम् ॥ स्नाता न ये माकरभास्करोदये तीर्थे प्रयागे सुरसिन्धुसङ्गमे ॥ २४ ॥ तेषां गृहद्वारमलं करोति किं भृङ्गावली कुञ्जरकर्णताडिता ॥ यो राजसूयाश्वमेधयज्ञतः स्नानात् फलं सम्प्रददाति चाधिकम् ॥ २५ ॥ पापानि सर्वाणि विलोप्य लीलया नूनं प्रयागः स कथं न सेव्यते ॥ २६ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे माघमासमाहात्म्ये विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

क्या उनके घर के द्वार को हाथी के कानों से उड़ाये हुए भौरों के समुदाय अलंकृत करते हैं (अर्थात् ऐसे मनुष्य धनवान् नहीं हो सकते) राजसूय और अश्वमेध के फल से ही बढ़कर फल माघ स्नान से होता है ॥ २५ ॥ अतएव सब पापों को सहज में हटाने वाला उस प्रयाग स्नान का क्यों न सेवन किया जाय ॥ २६ ॥

श्री पद्मपुराण के माघमाहात्म्य का बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २० ॥

लोमशजी ने कहा—प्राचीन समय में अवन्ती देश में वीरसेन नाम का राजा था, उसने नर्मदा तीर पर जाकर राजसूय यज्ञ किया ॥ १ ॥ सुवर्ण मार्ग में विराजित सोलह अश्वमेध किये, जो विधि पूर्वक सोने के आभूषणों से तथा यज्ञ के स्तम्भों से विभूषित थे ॥ २ ॥ उस राजा ने ब्राह्मणों को पर्वत के समान अन्न के ढेर दिये,

लोमश उवाच—अवन्तीविषये राजा वीरसेनोऽभवत् पुरा ॥ नर्मदातीरमाश्रित्य राजसूयं चकार सः ॥ १ ॥ षोडशैरश्वमेधैश्च स्वर्णवाटविराजितैः ॥ स्वर्णभूषणयूपाढ्यैरीजे सोऽपि यथाविधि ॥ २ ॥ प्रददौ धान्यराशींश्च द्विजेभ्यः पर्वतोपमान् ॥ वदान्यो देवताभक्तो गोप्रदः स सुवणदः ॥ ३ ॥ ब्राह्मणो भद्रको नाम मूर्खो हीनकुलस्तथा ॥ कृषीवलो दुराचारः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥४॥ सीरकर्मसमुद्विग्नो बन्धुभिश्च समुज्भितः ॥ इतस्ततः परिभ्रम्य निर्गतो वृत्तिपीडितः ॥५॥ दैवतः सोऽयमाविश्प प्रयागं स समागतः ॥ महामाघीं पुरस्कृत्य सस्नौ

वह बड़ा दानी देवता का भक्त तथा सुवर्ण सहित गौ का दान करने वाला था ॥ ३ ॥ भद्रक नाम का एक ब्राह्मण था जो मूर्ख, कुलहीन, कृषिकार्य करने वाला, दुराचारी तथा धर्मत्याग किये हुए था ॥ ४ ॥ खेती के काम में लगा हुआ वह भाई-बन्धु से छोड़ा हुआ था, जीविका से पीड़ित होकर वह इधर-उधर घूमता हुआ चला गया ॥ ५ ॥

वह देवयात्रियों के साथ प्रयाग में आया और उसने मकर संक्रान्ति में माघ मास में तीन दिन स्नान किया ॥ ६ ॥
वह श्रेष्ठ ब्राह्मण स्नान मात्र से पाप रहित होकर प्रयाग से चल कर जहाँ से गया था वहीं पर आ गया ॥ ७ ॥ तब
वह राजा और वह ब्राह्मण एक ही दिन मृत्यु को प्राप्त हुए; मैंने इन दोनों की इन्द्र के समीप में समान गति देखी ॥८॥

तत्र दिनत्रयम् ॥६॥ अनघः स्नानमात्रेण भूत्वेह स द्विजोत्तमः ॥ प्रयागाच्चलितस्तत्र पुनर्य-
स्मात् समागतः ॥७॥ स राजा सोऽपि विप्रश्च विपन्नावेकदा तदा ॥ तयोर्गतिः समा दृष्टा
मया शक्रस्य सन्निधौ ॥८॥ तेजो रूपं बलं स्त्रैण देवयानं विभूषणम् ॥ पारिजातस्य माला
च नृत्यं गीतं तयोः समम् ॥६॥ इति दृष्ट्वा तु माहात्म्यं क्षेत्रस्य कथमुच्यते ॥ माघः सिता-
सिते विप्र राजसूयसमो भवेत् ॥१०॥ धनुस्त्रिंशत्तु विस्तीर्णे सितनीलाम्बुसङ्गमे ॥ अपुनरावृत्ति
र्माघाच्च राजसूयी पुनर्भवेत् ॥११॥ माघमासीयवातोऽपि सितासितजलं स्पृशन् ॥ अधम्य

तेज, रूप, बल, स्त्री, देवयान, आभूषण तथा परिजात की माला में तुल्य थे और इन दोनों को सामने नृत्य और गीत
होती थीं ॥ ६ ॥ ऐसा देखकर उस क्षेत्र का क्या माहात्म्य कहा जाय। हे विप्र! प्रयाग में माघ स्नान राजसूय यज्ञ
के समान होता है ॥ १० ॥ श्वेत और नील अर्थात् गङ्गा यमुना के सङ्गम में तीस धनुष की लम्बान तक माघ स्नान
करने से संसार में फिर जन्म नहीं होता, राजसूय यज्ञ करने वाला संसार में फिर भी जन्म लेता है ॥ ११ ॥ गङ्गा

यमुना के संगम को स्पर्श की हुई माघ मास की वायु भी अधर्म को स्पर्श नहीं करती तथा वह भी बड़े बड़े पातकों को अवश्य नाश करती है ॥१२॥ बहुत कहने से क्या, हे ब्राह्मण ! निश्चित रूप से सुनिये—किसी भी तीर्थ में किये हुये पाप का फल माघ मास में (प्रयाग में) स्नान करने से नष्ट होता है ॥ १३ ॥ यहाँ पर तुमसे पिशाचमोचन नाम का एक

न स्पृशेन्नूनं महापातकहा हि सः ॥१२॥ किमत्र बहुनोक्तेन श्रूयतां द्विज निश्चितम् ॥ समुद्भूतफलं पापं तीर्थे माघः प्रणाशयेत् ॥१३॥ अत्र ते कथयिष्यामि सावधानमतिः शृणु ॥ पिशाचमोचनं नाम इतिहासं पुरातनम् ॥१४॥ शृण्वन्त्वप्सरसो बालाः शृणोतु त्वत्सुतस्तथा ॥ मत्प्रसादात् स्मृति लब्ध्वा पैशाच्यान्मुक्तिकामिनः ॥१५॥ पुरा वेदद्युतिर्विप्रो वैष्णवो वेदपारगः ॥ पिशाचं मोचयामास कृपागम्भीरसागरः ॥१६॥ वेदनिधिरुवाच—कुत्र स्थितः कस्य पुत्रो नियमः कोऽस्य चाभवत् ॥ केन वा वैष्णवो वृत्तः कः पिशाचश्च मोचितः ॥१७॥

प्राचीन इतिहास कहता हूँ, सावधान चित्त होकर सुनो ॥ १४ ॥ इसको अप्सरा की कन्यायें सुनें और तुम्हारा पुत्र भी सुने, मेरे प्रसाद से स्मृति प्राप्त करके ये पिशाचयोनि से मुक्त हो जावेंगे ॥ १५ ॥ प्रचीन समय में वेदद्युति नाम का कृपा तथा गम्भीरता के सागर वेद पारंगत एक वैष्णव था, उस ने पिशाच को निर्मुक्त किया था ॥ १६ ॥ वेदनिधिजी ने कहा—वह कहाँ का रहने वाला था ! किसका पुत्र था ? और इसका क्या नियम था ? किसने उसको वैष्णव

बनाया और किस पिशाच को उसने मुक्त किया ॥ १७ ॥ हे महामुनि ! यह सब विस्तार पूर्वक कहिये, आपके प्रसाद से इस महापुण्य को सुनने का बड़ा कौतूहल है ॥१८॥ लोमशजी ने कहा प्लक्ष से निकली हुई सुन्दर सरस्वती के तट पर पर्वत के सहारे में इसका आश्रम था ॥ १९ ॥ शाल, ताल, तमाल, बेल, बगुल, इमली, चिरवेल, आम, चंपक,

एतद्विस्तरतः सर्वं कीर्तय त्वं महामुने ॥ कौतूहलं महापुण्यं शृणुमस्त्वत्प्रसादतः ॥ १८ ॥
लोमश उवाच—प्लक्षप्रस्रवणे रम्ये सरस्वत्यास्तु निर्गमे ॥ तत्राश्रमपदं तस्य शैलमाश्रित्य शोभते ॥१९॥ शालैस्तालैस्तमालैश्च बिल्वैर्बकुलपादपैः ॥ तिन्तिणीचिरबिल्वैश्च चूतचम्पककाञ्चनैः ॥ २० ॥ करञ्जैः कोविदारैश्च केसरैः कुञ्जराशनैः ॥ तिलकैः कर्णिकारैश्च कुम्भीखदिरतिन्दुकैः ॥ २१ ॥ वानीरैः शोलुजम्बीरैः पीलूदुम्बरवेतसैः ॥ खाखोटैराटरूषश्च करहाटैर्वटद्रुमैः ॥२२॥ घोटाकुटजपालाशैरशोकैः शोकहारिभिः ॥ जम्बूनिम्बकदम्बैश्च चीरिकाकरमर्दकैः ॥२३॥ बीजपूरैः सनारङ्गैः रम्भाराजिविराजितैः ॥ पनसैः रसवद्भिश्च नारिकेलैः

कांचन, ॥ २० ॥ करञ्ज, कोविदार, केसर, पीपल, तिलक, कर्णिकार, चुम्भी, तिन्दुक ॥ २१ ॥ वानीर, शोलु जम्बीर, पीलू, गूलर वेंत, खाखोट, आड़ू, करहाट तथा वरगद के वृक्ष ॥ २२ ॥ घोटा, कुटज, परास, अशोक, जामुन, नीम, कदम्ब, खिरनी, करौंधा ॥ २३ ॥ बीजपूर, नारङ्गी तथा केले के वृक्षों के समुदाय से सुशोभित, रस वाले नारियल,

सदाफल इत्यादि वृक्षों से पूर्ण ॥ २४ ॥ सप्तपर्ण, त्रिपर्ण, सिरिस, सुन्दर आँवला, कर्कन्धू, लकुट, परिभद्र तथा वच इत्यादि वृक्षों से ॥ २५ ॥ केतकी, शिशुमार, तगर, कुन्द, मल्लीक, कमल, नील कमल, कन्हार, मालती तथा चमेली इत्यादि से ॥ २६ ॥ हे ब्राह्मण ! इस प्रकार नाना प्रकार के वृक्षों से यह आश्रम रमणीक था; वन के मध्य में पुण्य

सदाफलैः ॥२४॥ सप्तपर्णैस्त्रिपर्णैश्च शिरीषामलकैः शुभैः ॥ कर्कन्धुलकुचैरच्चैः पारिभद्रैर्वचादिभिः ॥२५॥ केतकैः शिशुमारैश्च तगरैः कुन्दमल्लिकैः ॥ पद्मेन्दीवरकल्हारमालतीयूथिकादिभिः ॥२६॥ आश्रमो रमणीयः स द्रुमैर्नानाविधैर्द्विज ॥ मध्येवनं नदी याति पुण्यतोया सरस्वती ॥२७॥ कूजन्ति सारसास्तत्र मदस्निग्धकलं सदा ॥ नदन्ति कोकिला मत्ता गुञ्जन्ति च मधुव्रताः ॥२८॥ बहु कोलाहलं विप्र तद्वनं शुकसारिभिः ॥ चरन्ति विविधास्तस्मिन् श्वापदाः काननोत्तमे ॥२९॥ सदाफलं सदापुष्पं परागकणधूसरम् ॥ आच्छन्न काननं सर्वं मधु-

जल वाली सरस्वती नदी बहती थी ॥ २७ ॥ वहाँ पर सारस मधुर स्वर से कूँजते थे, उन्मत्त कोयल शब्द करते थे तथा भौंरे गूँजते थे ॥ २८ ॥ हे विप्र ! सुग्गे तथा मैना का बड़ा कोलाहल रहता था, उस उत्तम वन में नाना प्रकार के पशु चरते थे ॥ २९ ॥ वह वन सर्वदा फल, फूल तथा परागकण से धूमिल रहता था, सम्पूर्ण वन मधुमक्खियों के छत्तों

से व्याप्त था ॥ ३० ॥ नये नये पत्ते तथा मंजरियों से परिपूर्ण लतायें वृक्षों में ऐसी लिपटी थीं जैसे प्रिया से आलिंगन किया हुआ वल्लभ शोभित होता है ॥ ३१ ॥ उस (ब्राह्मण) के शाप से भय से वहाँ पर वायु भी मन्द चलती थी, मेघ पत्थर-पाला नहीं बरसाते थे तथा सूर्य (जल वनस्पति इत्यादि को) नहीं सुखाता था ॥ ३२ ॥ विना उपद्रव के

च्छत्रैः समन्ततः॥३०॥नवपल्लवसञ्जातमञ्जरीवरवल्लिभिः॥आश्लिष्टमभितो रम्य प्रियाभिरिव वल्लभम् ॥३१॥ तस्य शापभयात्तत्र वातो वाति समन्ततः ॥ न वर्षन्त्यश्मभिर्मेघा न शोषयति भास्करः ॥३२॥ वनं सोपद्रवं तत्र सदा सिद्धनिषेवितम् ॥ आह्लादजननं नित्यं वनं चैत्ररथं यथा ॥३३॥ तस्मिन् वसति धर्मात्मा देवद्युतिर्द्विजोत्तमः ॥ पुत्रः सुमित्रविप्रस्य लब्धो लक्ष्मी-वराद्द्विजः ॥३४॥ नियमः श्रूयतां तस्य सर्वदा नियतात्मनः ॥ ग्रीष्मे पञ्चतपा नित्यं रवौ न्यस्त विलोचनः ॥३५॥ वर्षत्कादम्बिनीजालवर्षास्वभ्रावकाशकः ॥ वाते प्रवाति निष्कम्पो दुःसहे

इस वन में सिद्ध लोग सर्वदा रहते थे, और यह वन चैत्ररथ-वन के सदृश आनन्द देने वाला था ॥ ३३ ॥ इसी में द्विजश्रेष्ठ धर्मात्मा देवद्युति रहता था, वह सुमित्र ब्राह्मण का पुत्र था जो लक्ष्मी के वर से उत्पन्न हुआ था ॥ ३४ ॥ अब इसके नियम को सुनो, यह सर्वदा आत्मा को स्थिर किये रहता था, गर्मी के दिनों में नित्य अपने नेत्र सूर्य की ओर रखता था ॥ ३५ ॥ वर्षा काल में खुले मैदान में बैठ कर तपस्या करता था, दुःसह वायु चलने पर हिमाचल पर्वत

की तरह निष्कम्प रहता था ॥ ३६ ॥ वह ब्राह्मण हेमन्त ऋतु में सारस्वत सरोवर में बैठता था और निर्मल जल का स्पर्श करके त्रिकाल सन्ध्योपासन करता था ॥ ३७ ॥ पितर, देव तथा ऋषियों की श्रद्धा पूर्वक नित्य तर्पण करता था, अग्नि में श्रद्धा से होम करता था, अतिथि की पूजा करता था ॥३८॥ चान्द्रायण व्रत की विधि से वह सर्वदा काल विताता

हिमवानिव ॥३६॥ स वसत्यप्सु हेमन्ते ह्रदे सारस्वते द्विजः ॥ उपस्पृशति काले स त्रिवारं वारि निर्मलम् ॥३७॥ पितृन् देवान् ऋषीन्नित्यं सन्पयति श्रद्धया ॥ वह्नौ जुहोति वैताने श्रद्धयाऽतिथिपूजकः ॥३८॥ चान्द्रायणविधानेन कालं नयति सर्वदा ॥ ब्रह्मयज्ञपरो नित्यं सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥३६॥ भ्रमन् विश्राम्यति श्रान्तः सदैव प्रार्थयन् हरिम् ॥ स्वयं विगलितैः पुष्पैः फलैर्वृत्ति समीहते ॥४०॥ अनुद्विग्नस्तपोनिष्ठो वेदवेदाङ्गपारगः धमनीभिः करालोऽसावस्थिमात्रकलेवरः ॥४१॥ इत्थं जगाम वर्षाणां सहस्रं तस्य कानने ॥ तदा जज्वाल

था, प्रतिदिन ब्रह्मयज्ञ करता था, सत्यबादी और जितेन्द्रिय था ॥ ३६ ॥ घूमते-घूमते थक कर विश्राम करता था और भगवान् हरि को भजता था। आपसे आप गिरे हुए फल और पत्तियों का आहार करता था ॥ ४० ॥ विना किसी प्रकार से उद्विग्न हुए, तपोनिष्ठ, वेद वेदाङ्गों में पारंगत इस ब्राह्मण की केवल नाड़ियाँ देख पड़ती थीं और इसके शरीर में केवल अस्थि मात्र बच गई थी ॥ ४१ ॥ इस प्रकार उसको इस वन में हजार वर्ष बीत गये, तब उसके तप के

तेज से यह पर्वत प्रज्वलित हो उठा ॥ ४२ ॥ उस महात्मा के तेज को कोई प्राणी सह न सकता था, वह ब्राह्मण तप के प्रभाव से अग्नि के समान देदीप्यमान देख पड़ता था ॥ ४३ ॥ उस वन में शत्रुता त्याग कर सब प्राणी रहते थे, मृग व्याघ्र, चूहे, बिल्ली सभी निर्भय होकर एक साथ खेलते थे ॥ ४४ ॥ दूसरे से भी अति दुर्लभ नियम को सुनो, वह नित्य

शैलोऽसौ तपसा तस्य तेजसा ॥४२॥ सोढुं न शक्यते भूतैस्तेजस्तस्य महात्मनः ॥ वैश्वानर इवाभाति प्रज्वलंस्तपसा द्विजः ॥४३॥ गतवैराणि भूतानि समजायन्त तद्वने ॥ मृगव्याघ्राखुमार्जारा मिथः क्रीडन्ति निर्भयाः ॥४४॥ अन्योऽपि नियमस्तस्य श्रूयतामतिदुर्लभः ॥ नारायणं त्रिकालं सः सम्पूजयति नित्यशः ॥४५॥ पुष्पाणां तु सहस्रेण विकचेन सुगन्धिना ॥ वेदसूक्तैर्विधानेन विष्णुध्यानपरायणः ॥४६॥ विष्णोः संप्रीतये विप्रः कुरुते कर्म चाखिलम् ॥ दधीचेर्वरदानात् स सञ्जातो वैष्णवोत्तमः ॥४७॥ एकदा मासि वैशाख एकादश्यां मुदा मुनिः ॥ पूजां कृत्वा हरे रम्यां विचित्रामकरोत् स्तुतिम् ॥४८॥ तदैव खगमारुह्य देवदेवो

नारायण की तीनों काल में पूजा करता था ॥ ४५ ॥ खिले हुए सुगन्धित हजारों फूलों को चढ़ा कर वेदसूक्त की विधि से वह विष्णु के ध्यान में लीन रहता था ॥ ४६ ॥ वह ब्राह्मण विष्णु भगवान् को प्रसन्न करने के लिये यह सब कार्य करता था, दधीचि ऋषि के वरदान से वह उत्तम वैष्णव हुआ था ॥ ४७ ॥ एक बार उस मुनि ने वैशाख मास में एकादशी के दिन प्रसन्नता से हरि भगवान् की सुन्दर पूजा करके विचित्र स्तुति किया ॥ ४८ ॥ उसी समय देवों के

देव भगवान् हरि गरुड़ के ऊपर चढ़ कर उसकी स्तुति से प्रसन्न होकर स्वयं उसके पास आये ॥ ४६ ॥ चतुर्भुज, विशालाक्ष, अलंकारों से विभूषित, मेघ की छवि के तुल्य गरुड़ पर चढ़े हुए भगवान् को प्रत्यक्ष देख कर ॥ ५० ॥ उस ब्राह्मण का संपूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो गया और आनन्द के आँसू आँखों में भर गये, मन में कृतकृत्य होकर वह

हरिः स्वयम् ॥ आजगाम पुरस्तस्य तया स्तुत्याऽतिहर्षितः ॥ ४६ ॥ तं दृष्ट्वा गरुडारूढं प्रत्यक्षं जलदच्छविम् ॥ चतुर्बाहुं विशालाक्षं सर्वालङ्कारभूषितम् ॥ ५० ॥ उद्भूतपुलको विप्रः सानन्दजललोचनः ॥ जगाम शिरसा भूमौ कृतकृत्यमनास्तदा ॥ ५१ ॥ न ममौ तेन हर्षेण स ब्रह्माण्डोदरेऽपि हि ॥ न सस्मार निजं देहं ब्रह्मीभूत इवाभवत् ॥५२॥ ततः सम्भाषितः प्रीत्या हरिणा वैष्णवो मुनिः ॥ श्रीभगवानुवाच—देवद्युते विजानामि मद्भक्तस्त्वं मदाश्रयः ॥५३॥ सन्यस्ताखिलकर्मासि मद्भावो मन्मनाः सदा ॥ वरं ब्रूहि प्रसन्नोऽस्मिस्त्रोत्रेणानेन तेऽनघ॥५४॥लोमशःउवाच—इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं प्रत्युवाच स तापसः ॥ हर्षगद्गदया वाचा

उनके पास गया और उसने उनको दण्डवत किया ॥ ५१ ॥ वह आनन्द के कारण ब्रह्माण्ड में भी समा न सका, उसने अपनी शरीर का भी स्मरण नहीं किया और ब्रह्मरूप हो गया ॥ ५२ ॥ तब भगवान् हरि ने प्रीति पूर्वक उस वैष्णव मुनि से कहा । श्री भगवान् ने कहा—हे देवद्युति ! मैं जानता हूँ कि तुम मेरे भक्त और मेरे आश्रय हो ॥ ५३ ॥ संपूर्ण कर्मों को त्याग कर तुम सर्वदा जीवन पर्यन्त मुझमें लीन हो, हे पाप रहित ! तुम्हारे स्तोत्र से मैं प्रसन्न हूँ, तुम

वर माँगो ॥ ५४ ॥ लोमशजी ने कहा—इस प्रकार भगवान् हरि के वाक्य को सुनकर उस तपस्वी ने आनन्द के मारे आँखों को बन्द किये हुए लड़खड़ाती हुई वाणी से कहा। देवद्युति ने कहा—हे देवों के देव! हे कमललोचन! अपनी माया से ही शरीर धारण करने वाले ॥ ५५ ॥ हे देव! आपका दर्शन जो देवताओं को सर्वदा दुर्लभ है उससे मैं कृतकृत्य

हर्षसुच्छन्नलोचनः ॥ देवद्युतिरुवाच—देवदेवारविन्दाक्ष स्वमायाधृतविग्रह ॥ ५५ ॥ त्वद्दर्शनात् सदा देव दुर्लभो नापरो वरः ॥ ब्रह्मादयः सुराः सर्वे योगिनः सनकादयः ॥५६॥ त्वां साक्षात् कर्तुमिच्छन्ति सिद्धाश्च कपिलादयः ॥ अहं ममेति ये पाशा मोहमूलाः शुभाशुभाः ॥ ५७ ॥ सहेतुकाश्च दह्यन्ति त्वयि दृष्टे परावरे ॥ जन्मनः कर्मणो बुद्धेराविर्भूतं फलं मम ॥ ५८ ॥ यद् दृष्टोऽसि जगन्नाथ दुष्प्राप्यं किमतः परम् ॥ न वरार्थं हि देवेश त्वत्पादकमलं हृदि ॥५९॥

हुआ, अब मुझे और कुछ नहीं चाहिए, ब्रह्मादि सब देवता तथा सनकादिक ऋषि ॥ ५६ ॥ कपिलादि सिद्ध लोग आपका साक्षात् दर्शन करना चाहते हैं हम हमारा (अर्थात् अहंकार) रूपी जो शुभाशुभ बन्धन मोह के मूल हैं ॥ ५७ ॥ आपके अपूर्व दर्शन के कारण समूल नष्ट हो जाते हैं; मेरे जन्म, कर्म तथा बुद्धि का फल प्रत्यक्ष हो गया ॥ ५८ ॥ जो मुझको आपका अलभ्य-दर्शन प्राप्त हुआ, हे जगत् के स्वामी! इससे बढ़ कर और क्या हो सकता है, देवेश! मैं वर के लिये आपके चरण कमल का हृदय में धारण करना नहीं माँगता ॥ ५९ ॥ मैं सर्वदा अन्तरात्मा से भक्ति

पूर्वक आपका चिन्तन करूँ मैं यही वह माँगता हूँ कि आपमें मेरी भक्ति सदा अचल रहे ॥ ६० ॥ हे कमलानाथ ! मैं केवल यही वर माँगता हूँ, दूसरा नहीं माँगता, ऐसा उसका वचन सुनकर हरि भगवान् ने ॥ ६१ ॥ प्रसन्न चित्त होकर उससे कहा हे द्विजश्रेष्ठ! ऐसा ही हो, तुम्हारे किसी तप में कोई विघ्न न होगा ॥ ६२ ॥ जो मनुष्य तुम्हारे कहे हुए

चिन्तयाम्यनिशं भक्त्या त्वद्गतेनान्तरात्मना ॥ इममेव वरं याचे त्वद्भक्तिरचला मम ॥६०॥ अतस्तु कमलानाथ प्रार्थये नापरं वरम् ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य प्रसन्नहृदयो हरिः ॥६१॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा एवमस्तु द्विजोत्तम ॥ अन्यस्ते तपसः कश्चित्प्रत्यूहो न भविष्यति ॥६२॥ एतच्च त्वत्कृतं स्तोत्रं ये पठिष्यन्ति मानवाः ॥ तेषां मद्विषया भक्तिर्निश्चला च भविष्यति ॥६३॥ धर्मकार्यं च यत् किञ्चत् साङ्गं सर्वं भविष्यति ॥ ज्ञाने च परमा निष्ठा तेषां स्थास्यति सर्वदा ॥६४॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे माघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे देवद्युतिवरप्रदानं नाम एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

स्तोत्र का पाठ करेंगे, उनकी मुझमें निश्चल भक्ति होगी ॥ ६३ ॥ जो कुछ धर्म कार्य है वह भी सब सांगोपाङ्ग पूर्ण होगा और उन लोगों की ज्ञान में परम निष्ठा होगी ॥ ६४ ॥

श्री पद्मपुराण के माघमाहात्म्य में वसिष्ठ और दिलीप के संवाद में देवद्युति का वरदान नामक इकीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २१ ॥

वसिष्ठजी ने कहा—ऐसा कह कर देवों के देव भगवान् जनार्दन अन्तर्धान हो गये, तब से देवद्युति नारायण के ध्यान में लीन हो गये ॥ १ ॥ वेदनिधि ने कहा—हे महर्षि ! मैं कृतकृत्य हुआ, जिस प्रकार से गंगाजी में स्नान करने से मनुष्य पवित्र होता है उसी प्रकार से इस विष्णु की कथा से मै आज पवित्र हुआ हूँ ॥ २ ॥ मुझको बड़ा कौतूहल है इसलिये

वसिष्ठ उवाच—इत्युक्त्वा स तिरोभूतो देवदेवो जनार्दनः ॥ देवद्युतिस्तदाऽऽरभ्यंनारायण-परोऽभवत् ॥१॥ वेदनिधिरुवाच—महर्षेऽनुगृहीतोऽस्मि कथया पावनीकृतः ॥ अनया विष्णु-सङ्गत्या गङ्गयेवाहमद्यवै ॥२॥ किं तत् स्तोत्रं समाख्याहि प्रसन्नो येन माधवः ॥ तस्याऽनघस्य विप्रस्य महत् कौतूहलं मम ॥३॥ त्वत्प्रसादादहं विप्र मन्ये प्राप्तं मनोहरम् ॥ महतां सङ्गतिः कस्य महत्त्वाय न कल्पते ॥४॥ कथयस्व प्रसादेन विष्णोः स्तोत्रमनुत्तमम् ॥ येन तुष्टः स भगवान् ददौ तस्य च दर्शनम् ॥५॥ लोमश उवाच—कथयामि रहस्यं तत् यज्जाप्यं स्तोत्रमु-

(कृपाकर) उस स्तोत्र को कहिये जिससे पाप रहित ब्राह्मण ने माधव भगवान् को प्रसन्न किया था ॥ ३ ॥ हे विप्र ! आपकी कृपा से मैं अपने को सिद्ध मनोरथ समझता हूँ, बड़ों की संगति किसको महत्त्व के लिये नहीं होती ॥ ४ ॥ कृपा करके विष्णु के उस अद्वितीय स्तोत्र को कहिये जिससे प्रसन्न होकर भगवान् ने उसको दर्शन दिया था ॥ ५ ॥ लोमशजी ने कहा—मैं तुमसे वह रहस्य कहता हूँ, यह जो जपने योग्य उत्तम स्तोत्र है उसको पहिले गरुड़जी ने पढ़ा

था, उनसे यह मुझे प्राप्त हुआ ॥ ६ ॥ हे विप्र ! यह अध्यात्म (विद्या) का तत्त्व है, बड़ा उदय करने वाला, शुभ, सब पापों को हरने वाला, और आत्मज्ञान कराने में श्रेष्ठ है ॥ ७॥ वासुदेव को, विश्व में व्याप्त को, चक्रधारण करने वाले को, भक्तों के प्रिय को, कृष्ण को जगत् के स्वामी को, तेज स्वरूप भगवान् को नमस्कार हो ॥ ८ ॥ जब स्तुति

त मम् ॥ प्राग्गृहीतं सुपर्णेन गरुडान्मम चागतम् ॥६॥ अध्यात्मगर्भसारं तन्महोदयकरं शुभम् ॥ सर्वपापहरं विप्र स्वात्मज्ञानकरं परम् ॥७॥ ॐ नमो वासुदेवाय नमो विश्वस्य चक्रिणे ॥ भक्तिप्रियाय कृष्णाय जगन्नाथाय तेजसे ॥८॥ स्तोता स्तुत्यः स्तुतिः सर्वं जगद्विष्णुमयं यदा ॥ तदा संस्तूयते केन बुद्धिर्भेदकरी नृणाम् ॥९॥ यस्य देवस्य निःश्वासो वेदाः साङ्गाः ससूत्रकाः ॥ का स्तुतिः प्रमुदे तस्य भक्त्याऽहं मुखरोऽभवम् ॥१०॥ वेदो न वेत्ति यं साक्षान्न च वाग्वेत्ति नो मनः ॥ मद्विधस्तं कथं स्तौति भक्तिमान् वा कथं भवेत् ॥११॥ चक्रवद् भ्रमते

करने वाला, जिसकी स्तुति की जाय वह, तथा स्तुति सभी जगत् विष्णुमय है तब किससे स्तुति की जाय (क्योंकि) मनुष्य की बुद्धि भेद करने वाली होती है ॥ ९ ॥ जिस देव के निःश्वास (श्वास का बाहर को निकालना) सूत्र तथा अङ्गों सहित वेद हैं, भला कौन सी स्तुति उनके प्रसन्नता के लिये होगी, परन्तु भक्ति से मैं वाचाल हुआ हूँ ॥ १० ॥ जिसको साक्षाद् (रूप में) वेद नहीं जानते, न वाणी, न मन जानता है, उसकी स्तुति मुझ सरीखा (ज्ञानहीन) कैसे



कर सकता है और भक्तिमान कैसे हो सकता है ॥ ११ ॥ चर तथा अचर सम्पूर्ण त्रैलोक्य (आपकी आज्ञा से) चक्र के समान घूम रहा है। इसी कारण हे देव! आप उत्तम शस्त्र वाले चक्रपाणि (गाये जाते) कहलाते हो ॥ १२ ॥ ब्रह्मा के तथा विष्णु के आदि (रूप) तुम ही हो ब्रह्मा के शरीर हो, सबके उत्पन्न करने वाले, ब्रह्मा के भी आदि

सर्वं त्रैलोक्यं-सचराचरम् ॥ ततस्त्वं गीयसे नाथ चक्रपाणिर्वरायुधः ॥ १२ ॥ ब्रह्मादिब्रह्म विष्णुस्त्वं त्वमेव ब्रह्मणो वपुः ॥ स्रष्टा ब्रह्मनिदानं च शुद्धं ब्रह्म त्वमेव च ॥ १३ ॥ कायं कायि युगं या चिद्धित्वा स्पृशति कायिनम् ॥ कायदोषैरनाघ्रातस्तया त्वं भासि योगिनाम् ॥ १४ ॥ देवभावेन जागर्ति न निद्राति निजात्मनि ॥ सुखसन्दोहबुद्धिर्या सा त्वं विष्णो न संशयः ॥ १५ ॥ महदादिद्विधाभावास्तथा वैकारिको गुणः ॥ त्वमेव नाथ तत्सर्वं नानात्वं

कारण शुद्ध ब्रह्म तुम ही हो ॥ १३ ॥ अचित् (शरीर) तथा जीव इन दोनों का भेद जब शरीरधारी को स्पर्श करता है तब उसको ज्ञान उत्पन्न होता है, आप (उपरोक्त) काय के दोष से छू़ँवे (छुये) भी नहीं जा सकते ॥ १४ ॥ आप (सर्वदा) देवभाव से जागते हो, अपने आत्मरूप में कभी नहीं सोते, विष्णु तुम निःसन्देह सुख समुदाय रूपी ही हो ॥ १५ ॥ (सुख समुदाय रूपी बुद्धि देहरूप से जागती है अर्थात् देहाभिमान से ही प्रकाशित होती है, अपनी आत्मा में अपने अपने रूप से सोती नहीं अर्थात् पराङ्मुख नहीं होती, तुम सब सुखों के समुदाय सम्बन्धी बुद्धि हो, केवल इसी आनन्द के कारण प्राणी जीवित रहते हैं—ऐसा श्रुति वाक्य है) हे नाथ! आप ही पाँचों कर्मेन्द्रिय, पंचमहाभूत तथा

मन के विविध भाव हो, रुद्र ब्रह्मादि तुम्हारे बने हुए ही रूप हैं, तुम पृथक्-पृथक् हो, यह मूर्खता की कल्पना है ॥ १६ ॥ हे ब्रह्मन्! (क) ब्रह्मा, (ईश) रुद्र तथा (केशव) विष्णु इन तीन कल्पनाओं से तुम संसार की कल्पना वैसे ही करते हो जैसे पिता पुत्र की करता है ॥ १७ ॥ आपकी एक चित् मूर्ति ने सम्पूर्ण संसार को विना दोष (अर्थात् राग, मोह, द्वेष इत्यादि) के और विना गुण (अर्थात् सजातीय, विजातीय, स्वगतभेद इत्यादि) के बना रक्खा है। कवियों में

मूढ़कल्पना ॥ १६ ॥ केशकेशवरूपाभिः कल्पना तिसृभिस्तथा ॥ त्वमेव कल्पसे ब्रह्मन् पुत्रादिभिः पुमानिव ॥१७॥ विदोषं विगुणं चैकं चिन्मूर्तिमखिलं जगत् ॥ कवीनां भाति यद्रूपं तं विष्णुं नौमि निर्गुणम् ॥ १८ ॥ यस्मिन् ज्ञातेन कुर्वन्ति कर्मजातं श्रुतीरितम् ॥ निरैषणं जगन्मित्रं शुद्धं ब्रह्म नमामि तत् ॥१६॥ स्वं स्वेतरं च सन्मात्रं यत्प्रबोधादुपासते॥ योगिनः सर्वभूतेषु सद्रूपं नौमि तं हरिम् ॥२०॥ ब्रह्माहमिति गायन्ति यजन्त्येकचरा द्विजाः॥

जो रूप शोभा देता है उस निर्गुण विष्णु भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १८ ॥ जिसमें ज्ञान रखने से श्रुतियों में कहे हुए कर्मों को लोग करते हैं, इच्छा रहित संसार के मित्र उस शुद्ध ब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १६ ॥ मैं उस सत् रूप हरि को नमस्कार करता हूँ जिनकी योगि लोग सब प्राणियों में आत्मरूप में, अपरात्मा के रूप में तथा सबके आत्मरूप में उपासना करते हैं ॥ २० ॥ जिसको अद्वैत ब्राह्मण लोग "मैं ब्रह्म हूँ" ऐसा कहते हुए गाते और

यज्ञ करते हैं और अपने को आपके समान देखते हैं उस माधव भगवान् को नमस्कार करता हूँ ॥ २१ ॥ मैं उस चित् रूपी आत्मा को नमस्कार करता हूँ जो मनुष्यों के माया तथा मोह से उत्पन्न विचित्र आभास, अहंकार तथा ममता को जानकर नष्ट करते हैं ॥ २२ ॥ संसार में मनुष्यों के मोह रूपी वायु से सर्वदा भभकने वाली ज्वाला आपके

पश्यन्तो हि त्वया तुल्यं देवं तन्नौमि माधवम् ॥२१॥ माया मोहो विचित्राभस्तथाऽहं ममता नृणाम् ॥ विलीयन्ते विदित्वा यं नमस्तस्म चिदात्मने ॥ २२ ॥ मोहानलोल्लसज्ज्वालाज्व-लल्लोकेषु सर्वदा ॥ यत्पदाम्भोदरच्छायां प्रविष्टो नामुदह्यते ॥२३॥ यस्य स्मरण मात्रेणन मोहो नैव दुर्गतिः ॥ न रोगा नैव दुःखानि तमनन्तं नमाम्यहम् ॥२४॥ कामयन्ते प्रजा नैव ह्येषणाभ्यः समुत्थिताः ॥ लोकमात्मैव पश्यन्ति यं बुद्ध्वैकचरा नराः ॥२५॥ शब्दार्थः संवि-दर्थश्च विष्णोर्नास्त्यपरो यदि ॥ सत्येन तेन संसारो मा मां स्पृशतु माधव ॥ २६ ॥ नारा-

चरण कमल की छाया पड़ने से नहीं जलाती ॥ २३ ॥ मैं उस अनन्त (रूप) को नमस्कार करता हूँ जिसके स्मरण मात्र से ही मोह, दुर्गति, रोग तथा दुःख कुछ भी प्राप्त नहीं होते ॥ २४ ॥ जिसको प्राप्त कर लेने पर प्रजा और किसी दूसरे की इच्छा नहीं करती, जिसको जान कर अद्वैत वादी मनुष्य आत्मा के सदृश देखते हैं ॥ २५ ॥ यदि विष्णु शब्द का अर्थ और इनके विषय का ज्ञान पृथक् न हो (अर्थात् एक ही हो) तो इस सत्य से हे माधव !

संसार मेरा स्पर्श न करे। अर्थात् मैं संसार के माया में फँस कर तेरे ही ध्यान में लीन रहूँ ॥ २६ ॥
यदि वेदान्त दर्शन से सम्मत नारायण सम्पूर्ण संसार में व्याप्त हैं तो इसी सत्य से मेरी विष्णु
भगवान् में निर्विघ्न भक्ति हो ॥ २७ ॥ जो बीज नहीं है अर्थात् किसी वस्तु के कारण नहीं
हैं तो भी विना बीज के अर्थात् हेतु के स्वयं विद्यमान हैं, जो बीजों के बीज से युक्त हैं वह भगवान् विष्णु ज्ञान रूपी

यणो जगद्व्यापी यदि वेदान्तसम्मतः ॥ सत्येन तेन निर्विघ्ना विष्णोर्भक्तिर्ममास्तु वै ॥२७॥
यो न बीजं विना बीजं बीजे यो बीजभावतः ॥ स विष्णुर्भवबीजं मे शितविद्याऽसिना द्यतु
॥२८॥ त्रितनुनटवद्यस्तु सृष्टिस्थितिलयेषु च ॥ गुणैर्भवति कार्येषु स प्रसीदतु मे हरिः
॥२९॥ दशदेहावतीर्णो यो धर्मत्राणाय केवलम् ॥ अभ्यर्थितः सुरैः सर्वैः स प्रसीदतु मे
हरिः ॥३०॥ ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं प्राणिहृन्मन्दिरेऽमलः ॥ एको वसति यो देवः स प्रसीदतु मे

खड्ग से हमारे संसार के बीज को टुकड़े टुकड़े कर दें ॥ २८ ॥ जो संसार की सृष्टि, स्थिति तथा लय के लिये
नट के समान (ब्रह्मा, विष्णु, महेश के) तीन रूप धारण करते हैं और इन कार्यों में सत्व रज, तम इन तीनों गुणों
से विद्यमान रहते हैं वह भगवान् मुझ पर प्रसन्न हों ॥ २९ ॥ जिन्होंने सब देवताओं से प्रार्थना किये जाने पर
दश वार देह धारण किया (अर्थात् दश अवतार लिया) वह भगवान् मुझ पर प्रसन्न हों ॥ ३० ॥ ब्रह्मादि
से स्तम्ब पर्यन्त प्राणियों के हृदय रूपी मन्दिर में जो एक निर्मल देव निवास करते हैं, वह भगवान् मुझ पर प्रसन्न

हों ॥३१॥ सृष्टि के पूर्व जिस देव ने पहिले देखा, जो एक से अनेक हुआ, जिसने सृष्टि करके देवताओं में प्रवेश किया वह भगवान् मुझपर प्रसन्न हों ॥ ३२ ॥ हृदयरूपी आकाश में (अन्तर्यामी होने के कारण) वर्तमान, आकाश के समान सर्वत्र व्यापक, आकाश के भी आदि (अर्थात् उत्पन्न करने वाले) इन्द्रियों के रहित, इन्द्रियो की क्रिया में प्रेरणा रूप कार्य करने वाले, आकाश गामी (हृदय रूपी आकाश में अन्तर्यामी होकर विचरने वाले) खं ब्रह्म, प्रलय

हरिः ॥३१॥ ईक्षांचक्रे स देवाग्रे यं एकश्च बहुस्तथा ॥ प्रविष्टो देवताः सृष्ट्वा स प्रसीदतु मे हरिः ॥३२॥ हृत्खगः खसमः खादिः खातितः खक्रियः खगः ॥ खं ब्रह्म खादिभुक् चान्ते खमूर्तिस्त्वं मखाशनः ॥३३॥ यद्भासा यन्मुदा यस्य सत्तया संत्यजेद्यमी। जाड्य दुःखा- समत्वं च स भवानेव तन्मयः ॥३४॥ त्वत्सृष्टं मोदते विश्वं त्वत्त्यक्तमशुचिर्भवेत् ॥ त्वत्संगतो- ऽप्यसंगस्त्वं विकारस्तेन तेन हि ॥३५॥ भूतयोगजचैतन्यं चार्वाकास्तामुपासते ॥ सौगताः

के अन्त में आकाश इत्यादि को नष्ट करने वाले, आकाश मूर्ति तुम यज्ञ भोक्ता हो ॥ ३३ ॥ जो रूप ज्ञान से जड़ता (अज्ञान) को तथा रूप सुख से दुःख को नाश करते हों, जिसके सद्रूप की सत्ता से संसार आकारयुक्त हुआ है जो अविद्या पूर्ण संसार का त्याग करते हो, वही जगन्मय आप हो ॥ ३४ ॥ आपका बनाया हुआ विश्व आनन्द करता है, आपसे त्याग किये जाने पर अपवित्र हो जाता है, उसका साथ करने पर भी तुम विना साथ के बने रहते हो, इसीसे तुममें कोई विकार नहीं है ॥ ३५ ॥ जिनको चार्वाक; पञ्च भूत के योग से उत्पन्न हुआ चैतन्य मानते हुए

उपासना करते हैं, और प्रौढ़ तर्क से आपको क्षणभंगुर बुद्धि कहते हैं ॥ ३६ ॥ जैन लोग तुमको शरीर का परिणाम मानते हैं तथा सांख्यवादी तुम्हीं को प्राकृति से पर पुरुष मानकर ध्यान करते हैं ॥ ३७ ॥ जन्म इत्यादि से रहति पूर्ण, चैतन्य रूप, सर्वदा आनन्द लक्षण वाले तुमको उपनिषद् श्रेष्ठों से श्रेष्ठ ब्रह्म चिन्तन करते हैं ॥ ३८ ॥ आकाश इत्यादि

स्तुवते तर्कैस्त्वां बुद्धिं क्षणभङ्गुराम् ॥ ३६ ॥ शरीरपरिणामं त्वां मन्मन्ते जिनदेवताः ॥
ध्यायन्ति पुरुषं सांख्यास्त्वामेव प्रकृतेः परम् ॥३७॥ जन्मादिरहितं पूर्णं चित्सदानन्दलक्षणम्॥
त्वामौपनिषदा ब्रह्म चिन्तयन्ति परात्परम् ॥ ३८ ॥ खादिभूतानि देहश्च मनो बुद्धीन्द्रि-
याणि च ॥ विद्याविद्ये त्वमेवात्र नान्यत्त्वत्तोऽस्ति किञ्चन ॥३९॥ प्रभवः सर्वभूतानां त्वमेव
शरणं मम ॥ त्वमग्निस्त्वं हविस्त्वं स्रुक् होता मन्त्रः क्रिया फलम् ॥४०॥ त्वमस्ति नास्ति वैकुण्ठे
त्वामहं शरणं गतः ॥ त्वं कर्मफलदाता च दीक्षितानां क्रियात्यये ॥ ४१ ॥ त्वं हेतुः सर्व-

पंच महाभूत, देह, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, विद्या, अविद्या तुम्हीं सब कुछ हो, तुमसे पृथक् कुछ भी नहीं है ॥३९॥ तुम्हीं सब प्राणियों के उत्पन्न करने वाले हो, तुम्हीं मुझको शरण देने वाले हो, तुमही अग्नि, हवि, इन्द्र, होता, मन्त्र, क्रिया, फल सभी हो ॥ ४० ॥ तुम कर्म के फल को देने वाले तथा दीक्षितों के क्रिया की पूर्णता हो बैकुण्ठ में तुम्हारे सिवाय दूसरा कोई नहीं है, मैं तुम्हारी ही शरण में हूँ ॥ ४१ ॥ सब प्राणियों के तुमही हेतु हो, तुम हमारे शरण देने वाले

हो । जिस प्रकार युवतियों को तरुण में तथा तरुण को युवती में ॥ ४२ ॥ चित्त की प्रीति रहती है, उसी तरह मेरी भी प्रीति तुमही में रहे, हे हरे ! जो पापी और दुराचारी भी मनुष्य आपको प्रणाम करता है ॥ ४३ ॥ उसको यम के दूत उसी प्रकार नहीं देखते जैसे उल्लू सूर्य को नहीं देखता, तीनों (आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक)

भूतानां त्वमेव शरणं मम ॥ युवतीनां यथा यूनि यूनां च युवतौ यथा ॥ ४२ ॥ मनोऽभिरमते तद्वन्मनो मे रमतां त्वयि ॥ अपि पापं दुराचारं नरं त्वत्प्रणतं हरे ॥४३॥ नेक्षन्ते किङ्करा याम्या उलूकास्तपनं तथा ॥ तापत्रयमघौघश्च तावत्पीडयते जनम् ॥ ४४ ॥ यावच्छ्रयति नो नाथ भक्त्या त्वत्पादपङ्कजम् ॥ ४५ ॥ यं न स्पृशन्ति गुणजातिशरीरधर्मा यं न स्पृशन्ति गतयः खमिवेन्द्रियाणि ॥ यं न स्पृशन्ति मुनयो गतसङ्गमोहास्तस्मै नमो भगवते हरये प्रतीचे ॥४६ ॥ यद्ध्यानसंवननचूर्णवशीकृतान्ता ऐश्वर्यचारुगुणिनो सुखमोक्षलक्ष्मीम् ॥ आलिङ्ग्य

ताप तथा पापों के समूह तभी तक मनुष्य को पीड़ा देते हैं ॥ ४४ ॥ जब तक हे नाथ ! वह आपके चरण कमल की सेवा नहीं करता ॥ ४५ ॥ जिसको गुण, जाति तथा शरीर के धर्म स्पर्श नहीं करते, जिसको गतियाँ स्पर्श नहीं करतीं, जिसको इन्द्रियाँ आकाशवत् वशीभूत नहीं कर सकतीं, जिसको मोह युक्त मुनि लोग साक्षात् नहीं कर सकते उस विशिष्ट भगवान् हरि को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ जितते ऐश्वर्य अर्थात् ज्ञानरूपी सुन्दर गुण हैं, तथा जिन्होंने सुख स्वरूप

मोक्ष रूपी लक्ष्मी का आलिंगन किया है, जो आत्मस्वरूप सुखभाजन हैं तथा ध्यानरूप जीवदायी चूर्ण से जिन्होंने मृत्यु को वश में किया है इस प्रकार के मुनियों से सेवित हरि भगवान् को नमस्कार ॥४७॥ जिसका स्वभाव जन्मादि से अलग है, जिनमें काम क्रोध इत्यादि छहो ऊर्मिवर्ग शान्त हो जाते हैं, जिसको काम आदि दोष कष्ट नहीं देते—उस आमल

शेरत इहात्मसुखैकभाजस्तस्मै नमोऽस्तु हरये मुनिसेविताय ॥४७॥ जन्मादिभावविकृतैर्विरह-स्वभावो यस्मिन्नयं परिचिनोति षडूर्मिवर्गः ॥ यं ताडयन्ति न सदा मदनादिदोषास्तं वासुदेव-ममलं प्रणतोऽस्मि हार्दम् ॥४८॥ स्थूलं विलाप्य करणे करणं निदाने तत्कारणं करणकारणव-र्जिते च ॥ इत्थं विलाप्य यमिनः प्रविशन्ति यत्र तस्मै नमोऽस्तु हरये मुनिसेविताय ॥ ४९ ॥ यज्ज्ञानसङ्गतमलं विजहात्यविद्यां यज्ज्ञानवह्निपतितं जगदेति दाहम् ॥ यज्ज्ञानमुल्लसदसि-द्यति संशयारिं तं त्वां हरिं विशदबोधघनं नमामि ॥ ५० ॥ चराचराणि सर्वाणि भूतान्यस्य

वासुदेव भगवान् को मैं सहृदय प्रमाण करता हूँ, ॥ ४८ ॥ स्थूल करण में, तथा करण के विलीन करके, और इसके कारण को करण कारण में वर्जित करके, इस प्रकार मुनि लोग जिसमें प्रवेश करते हैं उस मुनि सेवित भगवान् हरि को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ४९ ॥ जिसके ज्ञान की संगति से अविद्या का मल स्वच्छ हो जाता है, जिसकी ज्ञान रूपी अग्नि में पड़ कर संसार दाह को प्राप्त होता है, जिसके ज्ञान की तलवार संशयरूपी शत्रु का नाश करती है,

उस विशद बोध वाले दुःख नाश करने वाले भगवान् को में प्रणाम करता हूँ ॥ ५० ॥ सम्पूर्ण चर अचर तथा प्राणी भगवान् हरि के शरीर हैं, सत्य व्रत से भगवान् मुझको प्रत्यक्ष दर्शन दें ॥ ५१ ॥ जिस प्रकार नारायण सम्पूर्ण स्थावर तथा जंगम संसार को व्याप्त करते हैं उसी सत्य से भगवान् केशव अपना दर्शन दें ॥ ५२ ॥ जब नारायण में और

हरेर्वपुः ॥ तथा व्रतेन सत्येन पुरस्तिष्ठतु मे हरिः ॥ ५१ ॥ यथा नारायणः सर्वं जगत्स्थावर, जङ्गमम् ॥ तेन सत्येन मे देवः स्वं तर्शयतु केशवः ॥ ५२ ॥ भक्तिर्यथा हरौ मेऽस्ति तद्वरिष्ठा गुरौ यदि ॥ ममास्ति तेन सत्येन स्वं दर्शयतु मे हरिः ॥ ५३ ॥ तस्यैवं शपथैः सत्यैर्भक्ति तस्यानुचिन्तयन् ॥ दर्शयामास चात्मानं स प्रीतः पुरुषोत्तमः ॥ ५४ ॥ ततो दत्त्वा वरं तस्मै पूरयित्वा मनोरथम् ॥ जगाम कमलाकान्तः स्तुत्या विप्रेण तोषितः ॥ ५५ ॥ कृतकृत्यो द्विजः सोऽपि वासुदेवपरायणः ॥ शिष्यैः सार्धं जपन् स्तोत्रं तस्मिन्नास्ते तपोवने ॥ ५६ ॥ कीर्तयेद्य

उनसे भी अधिक गुरु में मेरी भक्ति है, तो इसी सत्य से भगवान मुझको प्रत्यक्ष दर्शन दें ॥ ५३ ॥ इसी प्रकार के शपथों से उसकी सच्ची भक्ति जानकर भगवान् पुरुषोत्तम ने प्रसन्न होकर उसको अपना दर्शन दिया ॥ ५४ ॥ तब भगवान् कमलापति उस ब्राह्मण की स्तुति से प्रसन्न होकर उसके मनोरथ को पूर्ण करके तथा वर देकर चले गये ॥ ५५ ॥ वह ब्राह्मण भी कृतकृत्य होकर भगवान् वासुदेव में लीन हो गया, और शिष्यों के साथ स्तोत्र पढ़ता हुआ

॥६६॥

तपोवन में रहने लगा ॥ ५६ ॥ जो मनुष्य इस स्तोत्र का कीर्तन करता है अथवा पढ़ता है उसको अश्वमेध यज्ञ का पर्याप्त फल मिलता है ॥ ५७ ॥ वह ब्राह्मण सर्वदा आत्मविद्या के प्रबोध (जागृति) को प्राप्त करता है, उसकी बुद्धि पाप में नहीं लगती और वह अशुभ नहीं देखता ॥ ५८ ॥ इस स्तोत्र के कीर्तन से सब मनुष्यों की बुद्धि, मन

इदं स्तोत्रं शृणुयाद्वापि मानवः ॥ अश्वमेधस्य यज्ञस्य प्राप्नोति विपुलं फलम्॥५७॥आत्मविद्या-
प्रबोधं च लभते ब्राह्मणः सदा ॥ न पापे जायते बुद्धिर्न च पश्यत्यमङ्गलम्॥५८॥ बुद्धिस्वा-
स्थ्यं मनःस्वास्थ्यं स्वास्थ्यमैन्द्रियकं तथा ॥ नृणां भवति सर्वेषामस्य स्तोत्रस्य कीर्तनात्
॥ ५९ ॥ विचार्यार्थं पठेद्यस्तु श्रद्धया तत्परो नरः ॥ स विधूयेह पापानि लभते वैष्णवं पदम्
॥ ६० ॥ वाञ्छितान् लभते कामान् पुत्रान् प्राप्नोत्यनुत्तमान् ॥ दीर्घमायुर्धनं वीर्यं लभते
सर्वदा पठन् ॥ ६१ ॥ तिलपात्रसहस्रेण गोसहस्रेण यत्फलम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति य इमां

तथा इन्द्रियाँ स्वस्थ होती हैं ॥ ५९ ॥ जो मनुष्य हरि में लीन होकर भक्तिपूर्वक अर्थ का विचार करके इस स्तोत्र का जप करता है वह पापों को दूर करके वैष्णव पद को प्राप्त होता है ॥ ६० ॥ इस स्तोत्र के सर्वदा पाठ करने से मनुष्य अपने सब काम तथा वाञ्छित फल को प्राप्त करता है, अनुत्तम पुत्रों को प्राप्त करता है, तथा दीर्घायु, धन और पराक्रम को प्राप्त करता है ॥ ६१ ॥ हजार तिल पात्र तथा सौ गोदान करने से जो फल होता है वह फल इस स्तोत्र

के कीर्तन से प्राप्त होता है ॥ ६२ ॥ मनुष्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से जिस की कामना करे ; वह सर्वदा उसको इस स्तोत्र के पाठ से शीघ्र ही मिल जाता है ॥ ६३ ॥ इस स्तुति के सुनने से मनुष्यों को सर्वदा आचार, विनय, धर्म, ज्ञान, तप तथा नीति में वृद्धि होती है ॥ ६४ ॥ इस स्तोत्र के कीर्तन से महापातक तथा उपपातकों से युक्त भी मनुष्य तुरत

कीर्तयेत् स्तुतिम् ॥ ६२ ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां यं यं कामयते सदा ॥ अचिरान्नूनमाप्नोति स्तोत्रेणानेन मानवः ॥ ६३ ॥ आचारे विनये धर्मे ज्ञान तपसि सन्नये ॥ नृणां भवति नित्यं धीरिमां संशृण्वतां स्तुतिम् ॥ ६४ ॥ महापातकयुक्तोऽपि युक्तो वा ह्युपपातकैः ॥ सद्यो भवति शुद्धात्मा स्तोत्रस्यास्य प्रकीर्तनात् ॥ ६५ ॥ प्रज्ञां लक्ष्मीं यशः कीर्तिं ज्ञानं धर्मविवर्धनम् ॥ दुष्टग्रहोपशमनं सर्वाऽशुभनिवारणम् ॥ ६६ ॥ सर्वव्याधिहरं धन्य सर्वारिष्टनिषूदनम् ॥ दुर्गतेस्तारणं स्तोत्रं पठितव्यं द्विजातिभिः ॥ ६७ ॥ नक्षत्रग्रहपीडासु राजदैवभयेषु च ॥

शुद्धात्मा हो जाता है ॥ ६५ ॥ इसके पाठ से बुद्धि, धन, यश, कीर्ति, ज्ञान तथा धर्म की वृद्धि होती है, दुष्ट ग्रहों की शान्ति होती है तथा अशुभ का निवारण होता है ॥ ६६ ॥ द्विजातियों को यह स्तोत्र अवश्य पढ़ना चाहिये (क्योंकि) यह धन्य है, सब व्याधियों का हरण करता है, सब अरिष्टों को दूर करता है तथा दुर्गति से तारता है ॥ ६७ ॥ नक्षत्र तथा ग्रहों से पीड़ित होने पर, राजा तथा दैव के भय में, अग्नि तथा चोर की आपत्ति में इस

स्तोत्र को तुरत पढ़ना चाहिये ॥ ६८ ॥ इस स्तोत्र के पढ़ने से सिंह तथा व्याघ्र का भय नहीं होता तथा चोर का भी भय नहीं होता और भूत, प्रेत, पिशाच तथा राक्षस का भी भय नही रहता ॥ ६९ ॥ तथा पूतना जृंभक आदि अन्य भय नहीं होते, इस स्तोत्र के पाठ करने से मनुष्य को किसी भी प्रकार का भय नहीं रहता ॥ ७० ॥ जो भगवान् वासुदेव की पूजा

अग्निचोरनिपातेषु सद्यः संकीर्तयेदिदम् ॥ ६८ ॥ सिंहव्याघ्रभयं नास्ति नास्ति चोरभयं तथा ॥ भूतप्रेतपिशाचेभ्यो राक्षसेभ्यस्तथैव च ॥ ६९ ॥ पूतनाजृम्भकेभ्यश्च विघ्नेभ्यश्चैव सर्वतः ॥ नृणां क्वचिद्भयं नास्ति स्तवेऽस्मिन् परिकीर्तिते ॥ ७० ॥ वासुदेवस्य यः पूजां कृत्वा स्तोत्रमुदीरयेत् ॥ लिप्यते पातकैर्नासौ पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ ७१ ॥ गङ्गादिपुण्यतीर्थेषु स्नानतो याति यां गतिम् ॥ तां गतिं समवाप्नोति पठन् पुण्यामिमां स्तुतिम् ॥७२॥ एककालं द्विकालं वा त्रिकालं वापि यः पठेत् ॥ सर्वदा सर्वकार्येषु सोऽक्षयं फलमश्नुते ॥ ७३ ॥ चतुर्णां साङ्ग-

करके इस स्तोत्र को पढ़ता है वह पाप से वैसा ही नहीं लिपटता, जैसा कमल के पत्ते पर जल ॥ ७१ ॥ जो गति गङ्गा इत्यादि पुण्य तीर्थों में स्नान करने से प्राप्त होती है वह गति इस पुण्यतम स्तोत्र के पढ़ने से प्राप्त होती है ॥७२॥ जो इस स्तोत्र को एक काल, दो काल अथवा तीन काल में पढ़ता है वह सर्वदा सब कार्यों में अक्षय फल प्राप्त करता है ॥ ७३ ॥

चारों वेदों को अंग सहित तीन वार आवृत्ति करने से जो फल मिलता है वही फल इस स्तोत्र के एक वार पाठ करने से प्राप्त होता है ॥ ७४ ॥ अक्षय धन प्राप्त करता है तथा स्त्रियों का दुलारा होता है, श्रद्धा पूर्वक इस स्तोत्र का स्मरण करने से मनुष्य इस लोक में सत्कार प्राप्त करते हैं ॥ ७५ ॥ इस स्तोत्र के सुनने से भक्तों का धन का अभाव,

वेदानां त्रिरावृत्त्या च यत्फलम् ॥ लभते स्तोत्रपाठेन तत्फलं सकृदेव तु ॥७४॥ अक्षय धनमा-
प्नोति स्त्रीणां भवति वल्लभः ॥ पूजां विन्दन्ति लोकेऽस्मिन् श्रद्धया संस्मरन् स्तुतिम् ॥७५॥
अलक्ष्मीः कालकर्णी च दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तितम् ॥ सद्यो नश्यति भक्तानां एतं संशृण्वतां
स्तवम् ॥ ७६ ॥ सर्वदा सम्पदा युक्तो विपदं नैव पश्यति ॥ गोभिन हीयते गात्रं नित्यं यः
कीर्तयेत् स्तुतिम् ॥ ७७ ॥ प्रातरुत्थाय योऽधीते शुचिर्विष्णुपरायणः ॥ अक्षयं लभते सौख्य-
मिह लोके परत्र च ॥ ७८ ॥ देवद्युतिप्रणीतं वै विष्णुप्रीतिकरं शिवम् ॥ विष्णुप्रसादजननं

कालकर्णी, बुरे स्वप्न, तथा बुरी चिन्ता तुरत नाश होते हैं ॥ ७६ ॥ जो मनुष्य इस स्तुति का नित्य कीर्तन करता है वह संपत्ति युक्त होता है तथा विपत्ति को कभी नहीं देखता और इन्द्रियों से रहित नहीं होता ॥ ७७ ॥ जो मनुष्य प्रातः काल उठ कर विष्णु परायण होकर पवित्रतापूर्वक इस स्तोत्र को पढ़ता है वह इस लोक तथा परलोक में अक्षय सुख को प्राप्त करता है ॥७८॥ देवद्युति का वनाया हुआ यह स्तोत्र विष्णु भगवान् को अत्यन्त प्रीति करने वाला, विष्णु भगवान्‌का

प्रसाद उत्पन्न करने वाला तथा भगवान् का दर्शन कराने वाला है ॥७६ ॥ योगसार नामका यह स्तोत्र परम पवित्र है, जो कोई भक्तिपूर्वक इसको निरन्तर पढ़ता है वह विष्णुलोक को जाता है ॥ ८० ॥ इन प्रकार से मैंने तुमको इस पाप नाश करने वाले स्तोत्र का रहस्य कहा अब इसके बाद तुमसे पिशाच के मोक्ष के विषय में कहूँगा ॥ ८१ ॥

विष्णुदर्शनकारकम् ॥७६॥ योगसारमिदं नाम स्तोत्रं परमपावनम् ॥ यः पठेत् सततं भक्त्या विष्णु लोकं स गच्छति ॥ ८० ॥ इति ते कथित स्तोत्रं गुह्यं पापप्रणाशनम् ॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि पिशाचस्य विमोक्षणम् ॥ ८१ ॥

इति श्री पद्मपुराणे उत्तरखण्डे माघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे योगसार-
कथनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

श्री पद्मपुराण के माघमाहात्म्य में वशिष्ठ और दिलीप के संवाद में योगसार स्तोत्र
कथन नामका बाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २२ ॥

लोमशजी ने कहा—सुनो, जिस पिशाच को उस वन में उसने मुक्त किया था वह पूर्वजन्म में चित्र नामका द्रविड़ नगर में राजा था ॥ १ ॥ वह चन्द्रवंश में उत्पन्न हुआ था, वह बड़ा शूर तथा सत्यपरायण था, वह पुरोहितों को अगुआ करके श्रौत कर्म किया करता था ॥ २ ॥ वह दक्षिण समुद्र के तीरस्थ प्रजा का पालन करता था, उसका

लोमश उवाच—श्रूयतां यः पिशाचः स मोचितस्तेन तद्वने ॥ आसीद्राजा चित्रनामा द्राविडे नगरे पुरा ॥ १ ॥ सोमान्वये प्रसूतस्तु शूरः सत्यपरायणः ॥ पुरोधसं पुरस्कृत्य श्रौत-कर्म चकार सः ॥२॥ दक्षिणाम्बुधितीरस्थाः स पालयति ताः प्रजाः ॥ रत्नैः संपूर्णकोशोऽसौ रत्नाकर इवापरः ॥ ३ ॥ गजैरश्वैरथौघैश्च पत्तिभिः परिवेष्टितः ॥ शोभते स्म स सर्वत्र पादपैरिव पर्वतः ॥ ४ ॥ स्वर्णैर्नानाविधैः रत्नैः पूर्णकोशो महाधनः ॥ गजवाजिरथौघैश्च सम्पन्नोऽमितविक्रमः ॥५॥ मध्ये नारीसहस्राणां सदा क्रीडति तत्परः ॥ यज्ञा नानाविधास्तेन

खजाना रत्नों से ऐसा परिपूर्ण था मानों दूसरा रत्नाकर हो ॥ ३ ॥ वह हाथी, घोड़े, रथ इत्यादि से परिपूर्ण था और ऐसा शोभायमान था जैसे पर्वत वृक्षों से घिरा हुआ देख पड़ता है ॥ ४ ॥ वह बड़ा धनवान् था और उसका कोश सुवर्ण तथा नाना प्रकार के रत्नों से भरा था, वह हाथी, घोड़े, रथ इत्यादि से सम्पन्न था और बड़ा पराक्रमी था ॥ ५ ॥ हजारों स्त्रियों के बीच में वह सदा क्रीड़ा करता था, उसने अनेक प्रकार के यज्ञ किये थे तथा बहुत दक्षिणा दिया

था ॥ ६ ॥ वह राजा नित्य दान करने में लीन रहता था तथा अतिथियों की पूजा करता था वह अस्त्र शस्त्र में निपुण था और ब्रह्मविद्या जानता था ॥ ७ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा सूर्य में उसकी समान भक्ति थी, रूप तथा यौवन युक्त वह हजारों स्त्रियों के साथ प्रसन्न रहता था ॥ ८ ॥ वह राजा जङ्गल में स्त्रियों से घिरा हुआ क्रीड़ा करता था, बगीचों में

कृताः सुबहुदक्षिणाः ॥ ६ ॥ नित्यं दानपरो राजा नित्यं चातिथिपूजकः ॥ ब्रह्मण्योब्रह्म चाधीते शस्त्रास्त्रेषु विशारदः ॥७॥ ब्रह्मविष्णुमहेशेषु सम भक्तिस्तथा रवौ ॥ रूपयौवनसम्पन्नः स्त्रीसहस्रैः समं मुदा ॥ ८ ॥ उद्यानेषु सदा रेमे वीचीभिरिव सागरः ॥ क्रीडमानो वने भूयो नारीभिः परिवेष्टितः ॥९॥ गतः कौतूहलेनैव कदाचिज्जटिलालयम् ॥ जटिलैर्वेदबाह्यैस्तैः पाखण्डैर्भस्मपाण्डुरैः ॥१०॥ सार्धं तस्य कथा जाता राज्ञस्तस्य महात्मनः ॥ पाखण्डा ऊचुः—

प्रभावः श्रूयतां राजन् शवधर्मसमुद्भवः ॥११॥ छिन्नपाशः प्रमुच्येत श्वपचोऽपि हि दीक्षया ॥ दीक्षैव मोचिनी शैवी सर्ववर्णेषु सर्वदा ॥ १२ ॥ न चाणुमात्रं मृग्यं हि शिवस्याज्ञां विना

सर्वदा रमण करता था जिस प्रकार समुद्र लहरों से करतो है ॥ ९ ॥ एक बार वह कुतहल वश जटिल मन्दिर में गया, वेद विहीन, भस्म, लगाये हुए जटिल पाखंडियों से ॥ १० ॥ उस महात्मा की राजा से बात चीत हुई। पाखण्डियों ने कहा हे राजन्! शैव धर्म के प्रभाव सुनो ॥ ११ ॥ इस धर्म की दीक्षा पाकर (संसार रूपी) पाप को काटकर मनुष्य मुक्त हो जाता है, सब वर्णों में सर्वदा शैवी दीक्षा ही मुक्त करने वाली होती है ॥ १२ ॥ शिव की आज्ञा के बिना

किसी बात की खोज नहीं होती, दान से, व्रत से, पुण्य से, वेदों से तथा यज्ञों से क्या ? ॥ १३ ॥ केवल भस्म धारण करने से ही गाणपत्यपद दृढ़ हो जाते हैं, जटा धारण किये हुए, सिर मुड़ाये अथवा शिखा धारण किए यदि भस्म लगाये हो तो ॥ १४ ॥ शिव का सेवक होकर शिवके साथ आनन्द करता है, भस्म धारण करने के समान न कोई

पुनः ॥ किं दानैः किं व्रतैः पुण्यैः किं वेदैः किं किमध्वरैः ॥ १३ ॥ भस्मधारणमात्रेण गाणपत्यं दृढं भवेत् ॥ जटी मुण्डी शिखी वापि भस्मोद्धूलितविग्रहः ॥१४॥ शिवस्यानुचरो भूत्वा शिवेन सह मोदते ॥ न भस्मसदृशं पुण्यं न भस्मसदृशं तपः ॥ १५ ॥ जटाभि- भस्मबद्धाभिः सर्वेऽपि शिवयोगिनः ॥ अन्धाः क्लीबा जडा मूर्खाः जटाभिरुपलक्षिताः ॥ १६ ॥ अपि शूद्रादिवर्णा वा पूज्या एव न संशयः ॥ विश्वामित्रः क्षत्रियोऽपि तपसा ब्राह्मणोऽभवत् ॥ १७ ॥ चार एव हि वाल्मीकिः सञ्जातो ब्राह्मणाग्रणीः ॥ अतो नैव विचारोऽत्र कर्तव्यः

पुण्य है न कोई तप ॥ १५ ॥ जटा तथा भस्म धारण किये हुए सभी योगी शिव के सदृश होते हैं, अन्ध, जड़, नपुंसक तथा मूर्ख जटा से ही पहिचाने जाते हैं ॥ १६ ॥ शूद्राणि वर्ण के भी शैव निःसन्देह पूज्य होते हैं, विश्वामित्र क्षत्रिय होकर भी तप से ब्राह्मण हुए ॥ १७ ॥ वाल्मीकि चोर होकर ब्राह्मणों के अग्रगामी (तपस्या से) हुए, अतएव

शिवपूजन में किसी बात का विचार नहीं होता ॥ १८ ॥ तप से ब्राह्मणत्व प्राप्त होता है, अतएव जाति कारण नहीं होती, यह बात प्रत्यक्ष है और विश्वास योग्य है ॥ १९ ॥ हे राजेन्द्र ! इसी से शैव का दर्शन श्रेष्ठ है, रहस्य यह है कि शिवमार्ग में दूसरे देवता का पूजन न करे ॥ २० ॥ शैव तपस्वी को यत्न से विष्णु का त्याग करना चाहिये, इनका

शिवपूजने ॥ १८ ॥ तपसा जायते विप्रस्तस्माज्जातिर्न कारणम् ॥ नैव सन्ति विनाशं वै प्रत्यक्षाः प्रत्यया दृढम् ॥१९॥ अतएव हि राजेन्द्र श्रेष्ठं शैवं हि दर्शनम् ॥ रहस्यं शिवमार्गेऽस्मिन्नान्यं देवं प्रपूजयेत् ॥ २० ॥ यत्नेन तापसैर्विष्णुर्वर्जनीयः प्रयत्नतः ॥ वैष्णवीं प्रतिमां नैव पूजयेन्नाभिवादयेत् ॥२१॥ विष्णुदर्शनमात्रेण शिवद्रोहः प्रजायते ॥ शिवद्रोहान्न सन्देहो नरकं याति रौरवम् ॥२२॥ तस्मान्न विष्णुनामापि श्रोतव्यं भव भीरुणा ॥ अतो हि वैष्णवो वध्यः सर्वदेशेषु सर्वदा ॥२३॥ शिवभक्तेन निःशङ्कं शिवस्य प्रीतिमिच्छता ॥ शिवप्रीत्या न

अभिवादन न करना चाहिये तथा विष्णु को प्रतिमा का पूजन न करना चाहिये ॥ २१ ॥ विष्णु के दर्शनमात्र से शिव का द्रोह उत्पन्न होता है तथा शिव के द्रोह से निःसन्देह रौरव नरक प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ अतएव भवसागर से डरने वाले को विष्णु का नाम भी न सुनना चाहिये; इसी से सब देश में सर्वदा वैष्णव वध्य होते हैं ॥ २३ ॥ शिव-भक्त निःशंक होकर शिव के प्रीति की इच्छा करता है, शिवकी प्रीति से मनुष्य कैलास में जाता है, इसमें कुछ सन्देह

नहीं है०॥ २४॥ इस धर्म में सर्वदा भस्म धारण करना बाध्य नहीं है, हे राजेन्द्र ! इस धर्म का पालन करने वाले कभी नाश नहीं होते ॥ २५ ॥ वसिष्ठजी ने कहा—इस प्रकार उस पाखण्डी राजा से झूठे वर्णन और प्रतिज्ञा किया, जटिल, मोहक धूर्तों से वह ठग गया ॥ २६ ॥ इनके ऐसे वचन को सुनकर राजा ने उस पंथ को स्वीकार किया,

सन्देहः कैलासं याति मानवः ॥२४॥ अयं धर्मे न बाध्यो हि सदा भस्मविधारणम् ॥ प्रकुर्वन्ति हि राजेन्द्र ततस्ते संसरन्ति न ॥२५॥ वसिष्ठ उवाच—इत्थं नग्नप्रणीतांस्तां वर्णयित्वा तदागमान् ॥ जटिलैर्मोहकैर्धूर्तैः स भूपालः प्रतारितः ॥ २६ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं तेषां प्रविष्टस्तत्पथंनृपः ॥ त्यक्त्वा च वैदिकं कर्म निन्दन् वेदान् स्मृतीर्द्विजान् ॥२७॥ अग्निहोत्रगृहे शान्ता अग्नयस्तस्य तत्क्षणात् ॥ न करोति वचो धर्म्यं सचिवैः समुदीरितम् ॥२८॥ विष्णुं निन्दति सोऽत्यर्थं वैष्णवान् द्वेष्टि सर्वदा ॥ कोऽसौ विष्णुः क्व दृष्टोऽसौ क्वाऽऽस्ते केन च कीर्त्यते॥२९॥

वैदिक कर्म उसने त्याग दिया, स्मृति वेद तथा ब्राह्मणों की निन्दा करने लगा ॥ २७ ॥ उसी क्षण उसने अपने घर के अग्निहोत्र की अग्नि को ठंडी कर दिया और मन्त्रियों से कहे हुए धर्म का करना त्याग दिया ॥ २८ ॥ वह विष्णु की निन्दा करने लगा और वैष्णव से द्वेष करने लगा, और कहने लगा कि यह विष्णु कौन है, कहाँ देख पड़ता है, कहाँ रहता है और कौन इसकी कीर्ति करता है ॥ २९ ॥ इस प्रकार दैव से मोहित होकर वह राजा विष्णु को नहीं

मानता था, और जो लोग नारायण का भजन करते थे उनको सर्वदा पीड़ा देता था ॥ ३० ॥ पाखण्डी धर्म का आश्रित होकर (वह राजा) ब्राह्मण को; वेदों को, वैदिक कर्म तथा व्रत, दान और दानियों को नहीं मानता था ॥ ३१ ॥ वह अनीति से दण्ड देता था तथा प्रजा को पीडा देता था, कामी राजा सर्वदा स्त्रियों में लुब्ध रहता था और

इत्थं न सहते विष्णुं स राजा दैवमोहितः ॥ नारायणं भजन्ते ये तान् पीडयति सर्वदा ॥३०॥ न ब्राह्मणान्न वेदांश्च वैदिकं कर्म न व्रतम् ॥ न दानं मन्यते दातुं पाखण्डं धर्ममाश्रितः ॥ ३१ ॥ अनीत्या दण्डमादत्ते प्रजापीडां करोति सः ॥ स्त्रैणः कामी सदा लुब्धश्चण्डकोपः स पार्थिवः ॥३२॥ मध्ये नारीसहस्राणां सदा क्रीडति तत्परः ॥ करोति न वचो धर्म्यं गुरोस्तस्य पुरोधसः ॥३३॥ ददौ ग्रामान् गजानश्वान् हेमरत्नविभूषणान् ॥ तेभ्यो जटिलधूर्तेभ्यस्तद्वाक्ये निरतोऽभवत् ॥३४॥ तदागमोक्तमत्यर्थं कुरुते कर्म चाखिलम् ॥ उद्वहन् भस्म गात्रेषु जूटिकां शिरसा वहन् ॥ ३५ ॥ विष्णुद्वेषस्ततस्तीव्रस्तस्य जज्ञे दुरात्मनः ॥ यः पठेत् विष्णुनामानि तं

भय क्रोध से भरा रहता था ॥ ३२ ॥ वह सर्वदा हजारों स्त्रियों के मध्य में क्रीड़ा करता था, और गुरु तथा पुरोहितों के कहे वचन को नहीं मानता था ॥ ३३ ॥ इन जटिल धूर्तों के वाक्य में विश्वास करता हुआ वह इनको गाँव, हाथी, घोड़े, सुवर्ण, रत्न तथा आभूषण देता था ॥ ३४ ॥ और उनके कहे हुए सब कार्य को करता था, संपूर्ण रीर में भस्म लगाये रहता था, तथा मस्तक पर जटा धारण किये रहता था ॥ ३५ ॥ तब उस दुरात्मा ने विष्णु भग-



वान् का बड़ा तीव्र द्वेष किया, जो कोई विष्णु भगवान् का नाम लेता था उसको मार डालता था ॥ ३६ ॥ वह राजा नित्य अपने नगर में ड्योडी फिरवाता था कि जो कोई विष्णु भगवान् का पूजन करेगा उसको या तो दण्ड दिया जायगा अथवा उसका वध किया जायगा ॥ ३७ ॥ उसके भय से वैष्णव ब्राह्मणों ने तथा वैष्णव प्रजा ने उस देश को

निहन्ति स पार्थिवः ॥ ३६ ॥ अवादयत नित्य स डिण्डिमां स्वपुरे नृपः ॥ योऽर्चयेद्देवतां विष्णुं स दण्ड्यो वध्य एव वा ॥ ३७ ॥ तद्भयाद्वैष्णवा विप्राः प्रजा वा वैष्णवी तथा ॥ तं देशं संपरित्यज्य प्रविष्टा जननान्तरम् ॥३८॥ अवशिष्टाः प्रजाः सर्वा द्राविडस्थास्तदन्तरम् ॥ काचिज्जटाधरी जाता काचिज्जाता त्रिपुण्ड्रिणी ॥ ३९ ॥ संत्यज्य वैदिकं कर्म त्यक्त्वा चातिथिपूजनम् ॥ त्यक्त्वा व्रतं तपो दानं कुमार्गनिरतोऽभवत् ॥४०॥ न स्वाहा न स्वधा तत्र न देवः पूज्यते हरिः ॥ विष्णुद्वेषी च लोकोऽभूद्यथा राजा तथा प्रजा ॥ ४१ ॥ उत्खाता वैष्णवाः

छोड़ दिया और वे दूसरे देश में चले गये ॥ ३८ ॥ बची हुई द्रविड़ देश की सब प्रजा कई दूसरे स्थानों को चली गई कुछ जटाधारी हो गये और कुछ त्रिपुण्ड्र धारी हो गये ॥ ३९ ॥ उस राजा ने वैदिक कर्म तथा अतिथि पूजन छोड़ दिया तथा व्रत, तप और दान छोड़ कर वह कुमार्ग में लीन हो गया ॥ ४० ॥ यज्ञ, पितरों का तर्पण उस नगर में सब ने छोड़ दिये, कोई देवता तथा भगवान् हरिका पूजन नहीं करता था, राजा तथा प्रजा सभी विष्णु द्वेषी हो गये ॥४१॥

शैवों ने विष्णुओं के मन्दिर जो उस नगर में थे उखाड़ डाले, तथा वैष्णवों की सब प्रतिमाओं को उखाड़ कर समुद्र में फेंक दिया ॥ ४२ ॥ इस प्रकार वह राजा अपने धर्म से बिलकुल च्युत हो गया, और द्रविण देश के लोग निर्दयी, निष्ठुर और क्रूर हो गये ॥ ४३ ॥ तब से उस देश में धर्मिष्ठ ब्राह्मणों के चले जाने पर मेघ वर्षा नहीं करते थे

शैवैः प्रासादास्तत्र चे स्थिताः ॥ वैष्णवव्यःप्रतिमाःसर्वाः प्रक्षिप्ताः सागराम्भसि ॥ ४२ ॥ इत्थं भूपतिना तेन स्वधर्मश्च्यावितो भृशम् ॥ निर्दयो निष्ठुरः क्रूरः सञ्जातो द्राविडे जनः ॥४३॥ ततः प्रभृत्यधर्मिष्ठे तस्मिन् देशे द्विजोत्तमः ॥ नैव वर्षति पर्जन्यो वर्द्धते न गवां कुलम् ॥४४॥ नदीजलेन जीवन्ति सततं द्राविडा जनाः ॥ वृक्षानारोप्य वर्तन्ते ब्राह्मणा वृत्तिपीडिताः ॥४५॥ प्रयच्छन्ति करं राज्ञे ते विप्रा मानवर्जिताः ॥ न गर्हन्ति प्रजाश्चान्नं चण्डीशस्य निवेदितम् ॥ ४६ ॥ च्युताचारो च्युतद्वेषात् च्युताग्निश्च च्युतक्रियः ॥ सोऽनुशास्ति जनं भूपः कालरूप इवापरः ॥ ४७ ॥ ततो बहुतिथे काले स राजा पञ्चतां गतः ॥ वैदिकेन विधानेन न लेभे

और गौ का समुदाय नहीं बढ़ता था ॥ ४४ ॥ द्रविड़ देश के लोग केवल नदी के जल से जीते थे, जीविका से पीड़ित होकर ब्राह्मण लोग वृक्ष नहीं लगाते थे ॥ ४५ ॥ और वे अपमान किये हुए ब्राह्मण राजा को कर देते थे, प्रजा अन्न की निन्दा नहीं करती थी और क्षुद्र अन्न भी ग्रहण करती थी ॥ ४६ ॥ आचार विचार, अग्नि क्रिया सभी को त्याग कर वह राजा कालरूप के समान प्रजा का शासन करता था ॥ ४७ ॥ तब बहुत दिन के बाद वह राजा मृत्यु को प्राप्त हुआ,

और उसकी और्ध्वदेहिक क्रिया वैदिक विधान से नहीं हुई ॥ ४८ ॥ वह यमदूत के समुदाय से अच्छी तरह से कष्ट दिया गया, लोहे के कील वाले मार्ग में जो जलते हुए अँगारों से परिपूर्ण था ॥ ४९ ॥ जहाँ सूर्य की किरणे तप रहीं थीं, जहाँ वृक्षों की छाया न थी, जो जलते हुए अँगारों से परिपूर्ण था तथा अग्नि की ज्वाला से व्याप्त था ॥ ५० ॥

चौर्ध्वदेहिकम् ॥४८॥ यमकिङ्करयूथेन पीड्यमानो भृशं तदा ॥ अयःकीलमये मार्गे तप्ताङ्गार-प्रपूरिते ॥४९॥ चण्डार्के रश्मिसन्तप्ते वृत्तच्छायाविवर्जिते॥तप्ताङ्गारप्रकीर्णे च वह्निज्वालासमाकुले ॥ ५० ॥ लोहतुण्डैश्च काकोलैर्हन्यमानः सुदारुणैः ॥ वृकैर्दंष्ट्राकरालैश्च श्वभिर्घोरैश्च भक्षितः ॥ ५१ ॥ शृण्वन् क्रन्दितमन्येषां नृणां किल्बिषकारिणाम् ॥ जगाम पार्थिवो लोकं अन्तकस्य भयावहम् ॥ ५२ ॥

इति श्री पद्मपुराणे उत्तराखण्डे माघमासमाहात्म्ये त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

लोहे के डंडों से और कठोर मुद्गरों से पीटा जाता हुआ, बड़े-बडे दाढ़वाले भेड़ियों और भयङ्कर कुत्तों से काटा जाता हुआ ॥ ५१ ॥ दूसरे पापी मनुष्यों का चिल्लाना सुनता हुआ वह राजा यम के भयङ्कर लोक में पहुँचा ॥ ५२ ॥

श्री पद्मपुराण के उत्तरखण्ड मे माघमाहात्म्य का तेईसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ २३ ॥



लोमशजी ने कहा—हे द्विज ! उस समय यम लोक में उस राजा की दुखदायी गति को सुनो, यह राजा एक नरक से दूसरे नरक में गया ॥ १ ॥ पहिले तो वह तामिस्र नामक दारुण नरक में गया फिर अन्धतामिस्र नरक में गया जहाँ निरन्तर दुःख ही रहता है ॥ २ ॥ तब अति उग्र महा रौरव नामक नरक में गया इसके बाद कालसूत्र नामक

लोमश उवाच—शृणु द्विज गतिं तस्य तस्मिन् लोके सुदुःसहाम् ॥ निरयान्निरयं याति पर्यायेण स भूपतिः ॥ १ ॥ आदौ पतति तामिस्रे दारुणे भूरिदुःखदे ॥ पुनश्चैवान्धतामिस्रे दारुणे भूरिदुःखदे ॥ पुनश्चवान्धतामिस्रे यत्र दुःखं निरन्तरम् ॥ २ ॥ ततो नरकमत्युग्र महारौरवरौरवम् ॥ नरकं कालसूत्रं च महानरकमेव च ॥ ३ ॥ पश्चान्मग्नः स भूपालो दुस्तरे दुःखमूर्च्छितः ॥ सञ्जीवने महाघोरे तापने सम्प्रतापने ॥ ४ ॥ पपातानन्तरं राजा दुःखाग्निप्लुष्ट-मानसः ॥ सम्पातं च सकाकोलं कुड्मलं पूतिमृत्तिकम् ॥ ५ ॥ लोहशङ्कुं मृजीपं च पन्थानं

महानरक में गया ॥ ३ ॥ तब वह राजा दुस्तर दुःख में मग्न होकर मूर्च्छित हो गया, बाद में सचेत होने पर अतिघोर तापन और संप्रतापन नाम के नरक में गया ॥ ४ ॥ दुःखरूपी अग्नि से उस राजा का चित्त संतप्त होने पर वह प्रताप नामक नरक में गया तब काकोल, कुड्मल तथा पूतमृत्तिका नाम के नरकों में गिरा ॥ ५ ॥ लोहशंकु, मृजीप, तथा

मार्ग में शाल्मली नदी में पड़ा तब महा भयङ्कर दुर्दश दुर्गम मार्ग में पड़ा ॥ ६ ॥ वह पापी राजा असिपत्र बन
(तलवार की धारके वन) लोहधारक इत्यादि सभी नरक में गिरा ॥ ७ ॥ विष्णु भगवान् का द्वेष मात्र करने से वह
एकीस युग तक भयङ्कर नरकों में यातना पूर्ण सन्ताप भोगता रहा ॥ ८ ॥ यमराज की यातना को भोगकर वह राजा

शाल्मलीं नदीम् ॥ प्रविष्टोऽथ महाभीमं दुर्दशं दुर्गमं पुनः ॥६॥ असिपत्रवनं चैव लोहधारकमेव
च ॥ एवमेतेषु सर्वेषु पतित्वा पापकृन्नरः ॥७॥ अविन्दं नरके घोरे सन्तापं यातनामयम् ॥ वि-
ष्णुप्रद्वेषमात्रेण युगानामेकविंशतिम् ॥८॥ भुक्त्वा तु यातनां यामी निस्तीर्णनरको नृपः ॥ स
महागिरिराजे तु पिशाचोऽभूत्तदा महान् ॥९॥ स भ्राम्यति दिशः सर्वा वने तस्मिन् बुभुक्षितः ॥
न पश्यत्यशनं तोयं मेराविव सदा गिरौ ॥१०॥ कदाचित् पर्यटन् सोऽथ पिशाचः शोकपीडितः ॥
प्लक्षप्रस्रवणारण्यं प्रविष्टो भाविसत्फलः ॥११॥ विभीतकतरुच्छायां समाश्रित्य सुदुःखितः ॥
हा हतोऽस्मीति चक्रन्द घोरमुच्चैः पुनः पुनः ॥ १२ ॥ क्षुत्तृड्भ्यां मुह्यमानस्य सर्वभूतद्रुहो

नरक से निकला, और हिमाचल पर्वत पर बहुत बड़ा पिशाच हुआ ॥ ९ ॥ वह उस जंगल में भूखा सब दिशाओं में
घूमता था और उसको मेरु पर्वत में भी भोजन और जल नहीं देख पड़ता था ॥ १० ॥ शोक से पीड़ित यह पिशाच
एक बार घूमता हुआ भावी सत्फल देने वाले प्लक्ष प्रस्रवण नाम के जंगल में घुसा ॥ ११ ॥ बहेड़े के पेड़ की छाया का
आश्रय करके वह अति दुखी होकर वारम्वार जोर जोर से 'मैं मरा, मैं मरा', कह कर चिल्लाने लगा ॥ १२ ॥ और कहने

लगा कि भूख प्यास से व्याकुल सब प्राणियों से द्रोह करने वाले मेरे इस दुःखद जन्म का कब अन्त होगा ॥ १३ ॥ इस पापरूपी समुद्रों की लहरों में डूबते हुए मुझको कौन पहिले हाथ का सहारा देगा ॥ १४ ॥ लोमशजी ने कहा—इस प्रकार देवद्युति ने जो वेदपाठ कर रहे थे दीन स्वर से रोते हुए पिशाच के शब्दों को सुना ॥ १५ ॥ उन्होंने

मम ॥ जन्मनोऽस्य दुरन्तस्य कथमन्तो भविष्यति ॥१३॥ अहो पापसमुद्रेऽस्मिन् दुःखकल्लोलमालिनि ॥ करावलम्बनं को मे निमग्नस्य प्रदास्यति ॥ १४ ॥ लोमश उवाच—इत्थं तस्य पिशाचस्य रोदनं दीनचेतसः ॥ देवद्युतिरधीयानः शुश्राव करुणामयः ॥ १५ ॥ समागत्य ततस्तत्र तं पिशाचं ददर्श सः ॥ विकरालमुखं भीमं पिशङ्गनयनं कृशम् ॥ १६ ॥ ऊर्ध्वमूर्धजकृष्णाङ्गं यमदूतमिवापरम् ललज्जिह्वं च लम्बोष्ठं दीर्घजंघं शिराकुलम् ॥१७॥ दीर्घाङ्घ्रिं शुष्कतुण्डं च गर्ताक्षं शुष्कपञ्जरम् ॥ अथामुं कौतुकाविष्टः पप्रच्छ मुनिसत्तमः ॥१८॥ देवद्युतिरु-

वहाँ आकर एक पिशाच को देखा, जिसका मुख विकराल था, लाल लाल भयङ्कर आँखें थीं और दुर्बल शरीर था ॥ १६ ॥ जिसके काले बाल ऊपर खड़े थे, शरीर काला था वह दूसरा यमदूत देख पड़ता था, जिसकी जीभ हिल रही थी, जिसके लम्बे ओंठ थे, और जिसकी लम्बी जाँघें नाड़ियों से व्याप्त थीं ॥ १७ ॥ लम्बे-लम्बे पैर, सूखे , गड्हे सी आँख तथा सूखी ठठरी वाले इस पिशाच को देखकर कौतुक में आकर श्रेष्ठ मुनिजी ने पूछा ॥ १८ ॥

देवद्युतिजी ने पूछा—भयङ्कर आकृति वाले तुम कौन हो और ऐसा भयङ्कर क्यों रोते हो ? तुम्हारी ऐसी अवस्था क्यों हुई ? मैं तुम्हारा क्या (उपकार) करूँ ? ॥ १९ ॥ मेरे आश्रम में प्रवेश करके प्राणी दुखी नहीं रहते और वैष्णव भुवन के सदृश केवल आनन्द ही करते हैं ॥ २० ॥ हे भद्र ! तुम शीघ्र कहो कि तुम्हारे इस दुःख का क्या कारण है, विद्वान

वाच——को हित्वं भीषणाकारःकुतो रोदिषि दारुणम् ॥ अवस्थेयं कुतो ब्रूहि किं वाहं करवाणि ते ॥१९॥ ममाश्रमं प्रविष्टा हि दुःखभाजो न जन्तवः ॥ मोदन्ते केवलं सर्वे वैष्णवे भुवने यथा ॥२०॥ वद त्वं सत्वरं भद्र दुःखस्यैतस्य कारणम् ॥ कालक्षेपं न कुर्वन्ति प्राप्त्यर्थे हि मनीषिणः ॥ २१ ॥ श्रुत्वैतद्वचनं प्रीतः पिशाचस्त्यक्तरोदनः ॥ उवाच दीनया वाचा प्रश्रयावनतस्तदा ॥२२॥ सर्वाङ्गव्यापिसन्तापं जहार त्वद्वचो मम ॥ ग्रीष्मदावानलोद्भूतं वर्षन् मेघ इवाचलम् ॥२३॥ यन्मेऽस्ति सुकृतं किञ्चित्तेन दृष्टोऽसि भो द्विज ॥ न ह्यसञ्चितपुण्यानां सद्भिरेकत्र सङ्गतिः ॥ २४ ॥ इत्युक्त्वा कथयामास पूर्ववृत्तान्तमात्मनः ॥ प्रेत उवाच——विष्णुद्वेषप्रभा-

लोग मनोरथ प्राप्ति के लिये विलंब नहीं करते ॥ २१ ॥ इस प्रीतियुक्त वचन को सुनकर पिशाच ने रोना बन्द करके विनीत होकर दीनता से कहा ॥ २२ ॥ आपके वचन ने मेरे संपूर्ण शरीर में व्यापक सन्ताप को ऐसा ही हर लिया जैसे ग्रीष्म ऋतु में पर्वत पर दावानल को बरसता हुआ मेघ हर लेता है ॥ २३ ॥ हे द्विज ! मेरा कोई बड़ा पुण्य था कि आपके दर्शन हुए, पूर्व संचित पुण्य के विना साधुओं की संगति नहीं होती ॥ २४ ॥ ऐसा कहकर वह अपने पहिले

वृत्तान्त को वर्णन करने लगा। प्रेत ने कहा—विष्णु भगवान् के द्वेष के कारण मेरी ऐसी दशा हुई है ॥ २५ ॥ हे ब्राह्मण! जिस हरि का नाम प्राणान्त के समय लेने से मनुष्य विष्णु पद को प्राप्त होता है, उस भगवान् से मुझ पापी ने द्वेष किया ॥ २६ ॥ जो प्राणियो का पालन करता है, जो तीनों लोक में धर्म प्राप्त कराता है, जो प्राणियों की

वेण दशामेतामहं गतः ॥२५॥ यं नाम प्राणमुक्तो हि स्मृत्वा विष्णुपदं व्रजेत् ॥ पापिष्ठोऽपि हरौ तस्मिन्मम द्वेषो भवेद् द्विज ॥२६॥ यः पालयति भूतानि धर्मं याति जगत्त्रये॥योऽन्तरात्मा च भूतानां तस्मिन् द्वेषो ममाऽभवत्॥२७॥ कर्मणां फलदोषोऽत्र सर्ववेदेषु पठ्यते॥ तपोभिरीज्यते विप्रैः स मे द्वेषपथं गतः ॥२८॥ ब्रह्मादयः सुराः सर्वे योगिनः सनकादयः ॥ मुक्त्यर्थमर्चयन्तीह तं विष्णुं द्वेष्मि भो द्विज ॥२९॥ आदिमध्यावसानं यो विश्वस्यास्य सनातनः ॥ यस्य नास्त्यादिमध्यान्तं स मे द्वेषपथं ययौ ॥३०॥ यन्मया सुकृतं किञ्चिद्विहितं पूर्वजन्मनि ॥

अन्तरात्मा है उसी से मैंने द्वेष किया ॥ २७ ॥ यह मेरे कर्मों का दोष है जो सब वेदों में वर्णित है, जो ब्राह्मणों से तप द्वारा प्रार्थना किया जाता है, वह मेरा द्वेष का मार्ग हुआ ॥ २८॥ ब्रह्मादि सब देवता, सनकादिक सब योगी जिसको मुक्ति के लिये पूजते हैं हे द्विज! मैंने उस विष्णु से द्वेष किया ॥ २९ ॥ जो आदि, मध्य तथा अन्त में विश्व का विधाता है, जो सनातन है, जिसका आदि तथा अन्त नहीं है उसी से मैंने द्वेष किया ॥ ३० ॥ जो कुछ पुण्य मैंने पूर्व जन्म में किये

थे वे सब विष्णु द्वेषरूपी अग्नि में भस्म हो गये ॥ ३१ ॥ यदि किसी प्रकार से मेरे इस पाप का अन्त हो जावे तो इससे मुक्त होकर मैं सिवाय नारायण के अन्य किसी देवता का पूजन न करूँगा ॥ ३२ ॥ विष्णु भगवान् का द्वेष करके मैंने नरक की यातना बहुत काल तक भोगी, और नरक से निकल कर मैं पिशाच योनि में आया हूँ ॥ ३३ ॥

विष्णुद्वेषाग्निना दग्धं तत्सर्वं भस्मसादभूत् ॥३१॥ कथञ्चिदस्य पापस्य सीमां द्रक्ष्यामि चेदहम् ॥ मुक्त्वा नारायणं नान्यमर्चयिष्यामि दैवतम् ॥३२॥ विष्णुद्वेषाच्चिरं भुक्ता मया नरकयातनाः ॥ नरकान्निर्गतः सोऽहं पैशाचीं योनिमागतः ॥ ३३ ॥ प्राप्यते मरणं यत्र बन्धनं श्रीः सुखं वधूः ॥ स तत्र नीयते स्वेन कर्मणा कालहस्तिना ॥ ३४ ॥ अधुना कर्मवातैः करुप्यानीतस्त्वदाश्रमम् ॥ यत्र त्वद्दर्शनार्कान्मे नष्टं दुःखमयं तमः ॥ ३५ ॥ इदानीमुचितं कर्म ब्रूहि पैशाच्यनाशनम् ॥ परोपकारकार्ये हि न धन्या मन्दगामिनः ॥ ३६ ॥ देवद्युतिरुवाच—

जहाँ पर मरण, बन्धन, धन, सुख तथा वधु होती हैं वहीं पर कालहस्ति द्वारा कर्म स्वयं ले जाता है ॥ ३४ ॥ इस समय किस कर्म रूपी वायु से मैं आपके आश्रम में लाया गया हूँ जहाँ पर आपके दर्शन रूपी सूर्य ने मेरे दुःखरूपी अन्धकार का नाश कर दिया है ॥ ३५ ॥ अब पिशाच योनि के नाश होने का उचित कर्म कहिये, श्रेष्ठ लोग दूसरे का उपकार करने में देर नहीं करते ॥ ३६ ॥ देवद्युतिजी ने कहा—अरे! यह माया देवता, असुर तथा मनुष्य सबकी स्मृति

को मोहित करती है, जिससे देवताओं में भी धर्म नाश करनेवाला द्वेप उत्पन्न हो जाता है ॥ ३७ ॥ जगत् के उत्पन्न करने वाले, पालन करने वाले तथा नाश करने वाले महेश्वर जो सब प्राणियों की आत्मा हैं उनसे मूढ़ लोग कैसे द्वेप करते हैं ॥ ३८ ॥ जिनको अर्पण करने से सभी कर्म सफल होते हैं तथा उनकी भक्ति से विमुख होकर

अहो मुष्णाति मायेयं देवासुरनृणां स्मृतिम् ॥ यया देवेष्वपि द्वेपो जायते धर्मनाशनः॥३७॥ स्रष्टा पालयिता हन्ता जगतां यो महेश्वरः ॥ आत्मा च सर्वभूतानां तं मूढो द्वेष्टि कः कथम् ॥ ३८ ॥ भवन्ति सर्वकर्माणि सफलानि यदर्पणात् ॥ तद्भक्तिविमुखो मर्त्यः को न याति हि दुर्गतिम् ॥ ३९ ॥ श्रुतिस्मृतिसदाचारविहितं कर्म केवलम् ॥ सेवितव्यं चतुर्वर्णैर्भजेन्नारायणं सदा ॥ ४० ॥ अन्यथा नरकं यान्ति विमार्गागमसेवनात् ॥ अतो वेदविरुद्धार्थं शास्त्रोक्तं कर्म सन्त्यजेत् ॥४१॥ स्वबुद्धिरचितैः शास्त्रैः प्रतार्येह तु बालिशान् ॥ विघ्नन्ति श्रेयसो मार्गं

मनुष्य कौन सी दुर्गति को नहीं प्राप्त होता ॥ ३९ ॥ चारो वर्ण वालों को श्रुति, स्मृति तथा सदाचार से विहित कर्म ही करना चाहिये और सदा नारायण का भजन करना चाहिये ॥ ४० ॥ नहीं तो विरुद्ध मार्ग के सेवन से मनुष्य नरक में जाते हैं, अतएव वेद विरुद्ध शास्त्रों में कहे हुए कर्म का त्याग करना चाहिए ॥ ४१ ॥ अपनी बुद्धि से रचे हुए शास्त्रों से ठग लोग मूर्खों को ठगते हैं, कल्याण के मार्ग को नष्ट करते हुए परलोक के मार्ग का भी नाश करते

हैं ॥ ४२ ॥ ये देवता, वेद, तप तथा अच्छे ब्राह्मणों को निन्दा करते हैं, झूठे मन कल्पित शास्त्रों को मानने वाले नरक में जाते हैं ॥ ४३ ॥ जैसे द्रविड़ का राजा नरक में गया, देवों के देव जगद्गुरु नारायण से द्वेष करने का यह फल था ॥ ४४ ॥ अतएव देवों से और विशेष कर ब्राह्मणों से द्वेष करना छोड़ दे और पुण्य की इच्छा करने वाला मनुष्य

लोकनाशाय केवलम् ॥४२॥ निन्दन्ति देवता वेदान् तपो निन्दन्ति सद्द्विजान् ॥ तेन ते निरयं यान्ति असच्छास्त्रनिषेवणात् ॥ ४३ ॥ अयमेव यथा राजा द्राविडो निरयं गतः ॥ द्विषन्नारायणं देवं देवदेवं जगद्गुरुम् ॥४४॥ तस्माद् द्वेषं हि देवेषु ब्राह्मणेषु विशेषतः ॥ वर्जयेत् पुण्यकामोऽत्र वेदबाह्यां त्यजेत् क्रियाम् ॥ ४५ ॥ लोमश उवाच—इत्युक्त्वा कथयामास पिशाचाय हि तं मुनिः ॥ प्रयागं गच्छ भो भद्र माघे मास्यविचारयन् ॥४६॥ तत्र ते निश्चिता मुक्तिः पैशाच्यान्नात्र संशयः ॥ तत्राप्लुता दिवं यान्ति श्रुतिरेषा सनातनी ॥ ४७ ॥ विज-

वेद से बाहर की (वेद में न कही हुई) क्रिया को त्याग दे ॥ ४५ ॥ लोमशजी ने कहा—ऐसा कहने पर मुनि ने पिशाच को हित के वचन कहा, हे भद्र ! माघ मास का विचार करके तुम प्रयाग को जाओ ॥ ४६ ॥ वहाँ पर तुम्हारी पिशाचत्व से निःसन्देह मुक्ति होगी । वहाँ पर स्नान करने से स्वर्ग प्राप्त होता है यह सनानती श्रुति है ॥ ४७ ॥ प्रयाग

में स्नान करने से मनुष्य प्राचीन पापों से निर्मुक्त हो जाता है, इससे बढ़कर दूसरा कोई प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ४८ ॥ संसार में क्रियात्मक तपोरूप तथा दानरूप प्रायश्चित्त प्रयाग में पापियों को योग से भी अधिक फल देता है ॥ ४९ ॥ यह स्वर्ग तथा मोच का खुला हुआ मार्ग है, गङ्गा यमुना के सङ्गम का यह त्रिवेणी तीर्थ संसार में सबसे श्रेष्ठ है ॥ ५० ॥

हाति नरस्तत्र प्राक्तनं कर्म दुष्करम् ॥ प्रयागस्नानतो नास्ति क्काप्यन्यदधिकं परम् ॥ ४८ ॥
प्रायश्चित्तं तपोरूपं दानरूपं क्रियात्मकम् ॥ यागयोगादिकं विद्धि प्रयागं पापिनामपि ॥४९॥
स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं तत्पृथिव्यामनावृतम् ॥ सितासितोदवेणी या तां हित्वा भुवि नापरा ॥५०॥
पापनिर्गलबन्धस्य छेदनैककुठातिका ॥ क्व विष्णुः सूर्यतेजोऽग्निर्गङ्गायमुनसङ्गमः ॥ ५१ ॥
क्व वराकी नृणां तुच्छा पापराशितृणाहुतिः ॥ मली घनमलध्वंसी यथा शरदि चन्द्रमाः ॥५२॥
भाति पापक्षयात्तद्वन्नरो वेणीजलाप्लुतः ॥ सितासितस्य माहात्म्यमहं वक्तुं न ते क्षमः ॥५३॥

पापरूपी बन्धन को काटने का यह कुठार है; कहाँ तो विष्णु, सूर्य, तेज, अग्नि तथा गङ्गा यमुना का संगम ॥ ५१ ॥ और कहाँ मनुष्यों की विचारी तुच्छ पाप राशियों के तृण की आहुति जैसे घने अन्धकार को दूर करने वाला शरद का चन्द्रमा ॥ ५२ ॥ चमकता है उसी प्रकार त्रिवेणी के जल में स्नान करने से मनुष्यों के पापों का क्षय होता है, मैं तुमसे गङ्गा यमुना के संगम के माहात्म्य को वर्णन नहीं कर सकता ॥ ५३ ॥ जिसके जल के कण को स्पर्श करने से केरल

देश का ब्राह्मण मुक्त हो गया। ऋषि का ऐसा वचन सुन कर पिशाच मन में बड़ा सन्तुष्ट हुआ ॥ ५४ ॥ मानो दुःख से मुक्त होकर प्रसन्नता से उसने विनयपूर्वक मुनि से पूछा ॥ ५५ ॥
श्री पद्मपुराण के माघमाहात्म्य के वसिष्ठ और दिलीप के संवाद में पिशाचाख्यान चौबीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २४ ॥

यत्तोयकणसंस्पृष्टो मुक्तः केरलको द्विजः ॥ इति वाक्यं मुनेःश्रुत्वा पिशाचस्त्यक्तरोदनः ॥५४॥ मुक्तदुःख इव प्रीतः पप्रच्छ विनयान्मुनिम् ॥ ५५ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे माघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे
पिशाचाख्यानं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

★

राक्षस उवाच—कथं केरलदेशीयो द्विजो मुक्तो महामुने ॥ एतत्कथय वृत्तान्तं संस्मृत्य करुणां मयि ॥ १ ॥ देवद्युतिरुवाच—पिशाच शृणु पुण्यां मे कथां कथयतः शुभाम् ॥ केरले

राक्षस ने कहा—हे महामुनि ! केरल देश का ब्राह्मण किस प्रकार मुक्त हुआ इस वृत्तान्त को मुझ पर कृपा करके कहिये ॥ १ ॥ देवद्युति ने कहा—हे पिशाच ! सुनो, मैं इस शुभ तथा पुण्य कथा को कहता हूँ, केरल देश में वसुनाम

का एक वेद पारंगत ब्राह्मण रहता था ॥ २ ॥ उसके पट्टीदारों ने तथा बान्धवों ने उसकी भूमि छीन ली थी अतएव वह निर्धन होकर अति दुखी हुआ उसने जन्मभूमि को त्याग कर ॥ ३ ॥ देश देश में घूमता हुआ कुछ दिन बाद किसी व्याधि पीड़ित होकर एक बड़े जंगल में गया ॥ ४ ॥ तीर्थ इत्यादि में चलने से थका हुआ तथा क्षुधा से पीड़ित

वसुनामासीद् ब्राह्मणो वेदपारगः ॥२॥ दायादैर्हृतभूमिस्तु निर्धनो बन्धुवर्जितः ॥ जन्मभूमिं परित्यज्य महादुःखेन निर्गतः ॥ ३ ॥ देशाद्देशं परिभ्राम्य कालेन महता पुनः ॥ प्राविवेश महारण्यमीषद्व्याधिप्रपीडितः ॥४॥ गच्छंस्तीर्थान्तरं श्रान्तःक्षुत्क्षामो विन्ध्यपर्वते ॥ दुर्भिक्षेतु मृतो लेभेयदाहं नौर्ध्वदेहिकम् ॥५॥ तेन कर्मविपाकेन तत्रैव गिरिगह्वरे ॥ प्रेतो भूतश्चिरं कालमुवास विजने वने ॥ ६ ॥ शीतातपपरिक्लिष्टो निराहारो निरूदकः ॥ दिगम्बरोऽम्बुपानेच्छो हाहेति नितरां रुदन् ॥ ७ ॥ इतस्ततः परिभ्रम्य वायुभूतः स केरलः ॥ द्विजो न शरणं लेभे

वह विन्ध्य पर्वत पर दुर्भिक्ष के कारण मृत्यु को प्राप्त हुआ, उसकी दाह क्रिया तथा और्ध्वदेहिक क्रिया भी न हुई ॥ ५ ॥ इस प्रकार क्रिया बिगड़ने से वह निर्जन वन में पर्वत की कन्दरा में प्रेत होकर चिरकाल तक वास करता था ॥ ६ ॥ शीत तथा ताप से क्लेश पाता हुआ वह बिना आहार और जल के प्यासा हाहाकार करता हुआ और दिगम्बर वह जल पीने की इच्छा से बहुत रोता हुआ ॥ ७ ॥ वह केवल वायुरूप में इधर-उधर घूमता था, इस ब्राह्मण को

तब कहीं शरण तथा सुख न मिला ॥ ८ ॥ दुःख से पीड़ित होकर वह बराबर सोचा करता था परन्तु उसको सद्गति नहीं देख पड़ती थी, सर्वदा दान न देने से वह अपने कर्म के फल भोगता था ॥ ९ ॥ जो लोग अग्नि में आहुति नहीं देते, जो गोविन्द का पूजन नहीं करते, आत्म विद्या का अभ्यास नहीं करते, जो लोग अच्छे (प्रसिद्ध) तीर्थों से विमुख रहते

न सुखं कुत्रचित्तदा ॥८॥ स शोचति स्म दुःखार्तो नैव पश्यति सद्गतिम् ॥ सर्वदा दत्तदानस्तु स्वं भुंक्ते कर्मणः फलम् ॥९॥ हविर्जुह्वति नाग्नौ ये गोविन्दं नार्चयन्ति ये ॥ भजन्ते नात्मविद्यां ये सुतीर्थविमुखाश्च ये ॥ १० ॥ सुवर्णवस्त्रताम्बूलं रत्नमन्नं फलं जलम् ॥ आर्तेभ्यो न प्रयच्छन्ति सर्वत्रैव तु दीनकाः ॥ ११ ॥ ब्रह्मस्वं च परस्वं च स्त्रीधनानि हरन्ति ये ॥ बलेन छद्मना वापि धूर्ताश्च परवञ्चकाः ॥१२॥ दाम्भिकाः कुहकाश्चौरा तथान्ये वकवृत्तयः ॥ बालवृद्धातुरस्त्रीषु निर्दयाः सत्यवर्जिताः ॥ १३ ॥ अग्निदा गरदा ये च ये चान्ये कूटसाक्षिणः ॥

हैं ॥१०॥ जो दुखी लोगों को सुवर्ण, वस्त्र, ताम्बूल, रत्न, फल तथा जल नहीं देते—ये सब हीन कर्म वाले होते हैं ॥११॥ जो लोग छल कपट से ब्राह्मण का तथा दूसरों का धन हरते हैं तथा स्त्रियों का धन हरते हैं वे धूर्त तथा परवंचक कहलाते हैं ॥ १२ ॥ पाखण्डी, कुटिल, चोर तथा अन्य वकवृत्ति वाले (छल से ठगने वाले) तथा जो बाल, वृद्ध, आतुर और स्त्रियों पर निर्दयता करते हैं वे अवश्य त्याग करने योग्य हैं ॥ १३ ॥ आग लगाने वाले, विष देने वाले, झूठी

गवाही देने वाले, कुमार्ग में चलने वाले तथा ग्रामवासियों को यज्ञ कराने वाले ॥ १४ ॥ पिता, माता, बहिन, सन्तान तथा अपनी स्त्री का त्याग करने वाले तथा कादर, लोभी, नास्तिक और धर्म की निन्दा करने वाले ॥ १५ ॥ जो सब बड़े तीर्थों में प्रतिग्रह लेते हैं, जो स्वामी को त्यागते हैं तथा जो शरणागत का त्याग करते हैं ॥ १६ ॥ गाय तथा भूमि

अगम्यागामिनो ये च ये चान्ये ग्रामयाजिनः ॥१४॥ पितृमातृस्वसापत्यस्वदारत्यागिनश्चये ॥
ये कदर्याश्च लुब्धाश्च नास्तिका धर्मदूषकाः ॥ १५ ॥ महाक्षेत्रेषु सर्वेषु प्रतिग्रहरताश्च ये ॥
त्यजन्ति स्वामिनं युद्धे त्यजन्ति शरणागतम् ॥१६॥ गवां भूमेश्च हर्तारो ये चान्ये वेददूषकाः ॥
परद्रोहरता ये च तथा च प्राणिहिंसकाः ॥ १७ ॥ परापवादिनः पापा देवतागुरुनिन्दकाः ॥
कुप्रतिग्राहिणः सर्वे सम्भवन्ति पुनः पुनः ॥१८॥ प्रेतराक्षसपैशाचतिर्यग्वृक्षकुयोनिषु ॥ न तेषां
सुखलेशोऽस्ति इह लोके परत्र च ॥१९॥ तस्मात् त्यक्त्वा निषिद्धार्थं विहितं धममाचरेत् ॥

को चुराने वाले, वेदों की निन्दा करने वाले, दूसरों से द्रोह करने वाले तथा प्राणियों की हिंसा करने वाले ॥ १७ ॥ दूसरों को तथा देवता और गुरु की निन्दा करने वाले, बुरा प्रतिग्रत लेने वाले–ये सभी (संसार में) बारम्बार जन्म लेते हैं ॥ १८ ॥ प्रेत, राक्षस, पिशाच तथा तिरछी चाल चलने वाले वृक्ष योनि में जन्म लेते हैं, इनको इस लोक तथा परलोक में सुख का लेश मात्र भी प्राप्त नहीं होता ॥ १९ ॥ अतएव निषिद्ध कार्यों को छोड़कर धम करना चाहिये

और यज्ञ तथा दान और तप करना चाहिये तथा मन्त्र, देवता और गुरु को भजना (सेवा करना) चाहिये ॥ २० ॥
कर्मों के कोटि योनि में दुखदायी फल मिलते हैं, ऐसा देखकर चारो वर्ण वालों को निरन्तर धर्म का सेवन करनो
चाहिये ॥२१॥ इस प्रकार प्रेत की गति देख कर (मनुष्य को) पाप कर्म कभी न करना चाहिये, धर्म का उपदेश करके उस

यज्ञं दानं तपस्तीर्थं मन्त्रं देवं गुरुं भजेत् ॥२०॥ विपाकं कर्मणां दृष्ट्वा योनिकोटिषु दुःसहम् ॥
चतुर्भिरपि वर्णैस्तु सेव्यो धर्मो निरन्तरम् ॥ २१ ॥ इति प्रेतगतिं दृष्ट्वा पापकर्म तु नाचरेत् ॥
कृत्वा धर्मोपदेशं च पुनस्तस्मै द्विजोऽब्रवीत् ॥२२॥ इत्थं स केरलः प्रेतो वर्तमानो गिरौ तदा ॥
अतिवाह्य चिरं कालमपश्यत्पथिकं पथि ॥२३॥ वहन्तं द्विकरण्डं च वेणीपानीयभाण्डधृक् ॥
गायन्तं च मुदा देवं पुण्यश्लोकं जनार्दनम् ॥२४॥ तं दृष्ट्वा सहसा प्रेतो मार्गरोधं चकार सः ॥
दर्शयामास चात्मानं मा भैषीरित्युवाच तम् ॥२५॥ प्रेत उवाच—पानीयं पातुमिच्छामि त्वत्तः

ब्राह्मण ने फिर से कहा ॥ २२ ॥ इस प्रकार उस केरल ने उस पर्वत पर अधिक समय व्यतीत करके एक बार मार्ग में
एक पथिक को देखा ॥ २३ ॥ जो दो गगरी में त्रिवेणी का जल लिये था और आनन्दपूर्वक जनार्दन भगवान् के
पुनीत श्लोक गा रहा था ॥ २४ ॥ उसको देख कर प्रेत ने एकाएक उसका मार्ग रोका, अपना रूप उसको दिखयाया
और उससे कहा 'तुम मत डरो' ॥ २५ ॥ प्रेत ने कहा—हे उत्तम कार्पटिक ! मैं तुम्हारी गगरी का पानी पीना चाहता

हूँ, यदि तुम मुझे पानी न पिलाओगे तो तुम्हारे प्राण अवश्य जाँयगे ॥ २६ ॥ देवद्युति ने कहा—ऐसा प्रेत का वचन सुन कर उस पथिक ने आश्चर्य से कहा ॥ कार्पटिक बोला–दुःख से पीडित, दुर्बल, मुरझाये हुए, नंगे तुम कौन हो ? जीवशेष, करने की इच्छा करने वाले, कुरुप, डरावने ॥ २७ ॥ नये धुवें के सदृश आकार वाले, भयङ्कर, चञ्चल नेत्र

कार्पटिकोत्तम ॥ न दास्यसि जलं चेन्मे प्राणा यास्यन्ति ते दृढम् ॥२६॥ देवद्युतिरुवाच—इति प्रेतवचः श्रुत्वा पान्थः पप्रच्छ कौतुकात् ॥ कार्पटिक उवाच—कस्त्वं दुःखाभिभूतस्तु कृशो म्लानो दिगम्बरः ॥ जीवशेषो मुमूर्षुश्च बिकृतो भयवर्धनः ॥२७॥ नवधूमचमत्कारश्चञ्चलश्च-ललोचनः ॥ पद्भ्यामस्पृष्टभूमिस्त्वं निर्मांसोदरबाहुकः ॥ २८ ॥ लोमश उवाच–इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रेतो वाक्यमथाब्रवीत् ॥ प्रेत उवाच–शृणु धर्मिष्ठ ते वच्मि येनाहमीदृशोऽभवम् ॥२९॥ ब्राह्मणोऽदत्तदानोऽहं लोभी मलमयोऽक्रियः ॥ परान्नेन सदा पुष्ट एकाकी मिष्टभोजनः॥३०॥

वाले, तुम कौन हो जो पैरों से पृथ्वी का स्पर्श नहीं करते और जिसके बाहु और उदर माँस रहित हैं ॥ २८ ॥ लोमश जी ने कहा–ऐसा वचन सुनकर प्रेत ने कहा। प्रेत बोला–हे धर्मिष्ठ ! जिस कारण से मैं ऐसा हुआ हूँ सो सुनो ॥ २९ ॥ मैं ब्राह्मणों को कभी दान नहीं देता था, लोभी तथा मलिन, क्रिया रहित था, सर्वदा दूसरे के अन्न से पुष्ट होता था और अकेला मिठाई खाता था ॥ ३० ॥ मैंने कभी भिक्षा नहीं दिया, न दूसरे के दुख से दुखी हुआ और न हन्तकार

दिया (एक ग्रास की भिक्षा, चार ग्रास की पुष्कल और चार पुष्कल की हन्तकार संज्ञा कही है) मैंने कभी वैश्वदेव नहीं किया, न तो बाहर बलि फेंका ॥ ३१ ॥ प्यासे प्राणियों की प्यास मैंने कभी जल से नहीं बुझाया, पृथ्वी पर घूमते हुए मैंने कभी पितरों को तर्पण नहीं किया ॥ ३२ ॥ न तो मैंने कभी श्राद्ध किया और न कभी

मया दत्ता न भिक्षापि हन्तकारो[1] न पुष्कलः ॥ न कृतो वैश्वदेवश्च प्रक्षिप्तो न बहिर्बलिः ॥३१॥
भूतानांच तृषार्तानां न हृता पयसा तृषा ॥ कदाचित् पितरो नैव तर्पिता अटता महीम् ॥३२॥
न च श्राद्धं कृतं क्वापि पूजिता नैव देवताः ॥ वर्षातपपरित्राणं न दत्तं पादरक्षणम् ॥३३॥ जल-
पात्रं न दत्तं च ताम्बूलं चौषधं मया ॥ न गृहे वसतिर्दत्ता नातिथ्यं कस्यचित् कृतम् ॥३४॥
अन्धा वृद्धास्तथाऽनाथा दीना ह्यन्नैर्न तोषिताः ॥ गवां ग्रासो न दत्तो वै न रोगी परिमोचितः॥३५॥

देवताओं की पूजा किया, मैंने कभी छाता और जूता दान नहीं दिया ॥ ३३ ॥ न तो मैंने जलपात्र, तांबूल तथा औषधि किसी को दिया, अपने घर में मैंने किसी को नहीं टिकाया और न किसी अतिथि का सत्कार किया ॥ ३४ ॥ अन्धे, वृद्ध अनाथ तथा दीनों को मैंने कभी अन्न से सन्तुष्ट नहीं किया, मैंने कभी गोग्रास नहीं दिया, और न किसी रोगी को मुक्त किया ॥ ३५ ॥ मैंने न तो ब्राह्मणों को कभी कुछ दान दिया और न अग्नि में कभी कोई

१. (ग्रासप्रमाणं भिक्षा स्याच्चतुर्ग्रासं च पुष्कलम् ॥ पुष्कलानि च चत्वारि हन्तकारो विधीयते) ॥

हवन किया, मेरे समान तिल दान देने वाला संसार में दूसरा कोई न होगा ॥ ३६ ॥ व्यतीपात में महाफल देने वाले दान मैंने थोड़े भी नहीं किये, संक्रान्ति तथा सूर्य या चन्द्रग्रहण में भी मैंने कुछ दान नहीं किया ॥ ३७ ॥ दूसरे सब पर्वों में भी मेरे घर से ब्राह्मण खाली हाथ जाते थे, कार्तिक मास की मुख्य तिथियाँ भी मैं विना दान को (सूनी)

न दत्तं न हुतं किञ्चित् विप्राग्नौ न कदा मया ॥ पृथिव्यां तिलदातारो न भवन्ति तु मद्विधाः ॥३६॥ व्यतीपाते न दत्तं हि किञ्चिदल्पं महत्फलम् ॥ संक्रान्तिषूपरागेषु न दत्तं चन्द्रसूर्ययोः ॥ ३७ ॥ पर्वाण्यन्यानि सर्वाणि जग्मुः शून्यानि मे द्विज ॥ तिथयः कार्तिकीमुख्याः जाता वन्ध्याः सदा मम ॥ ३८ ॥ पितृभ्यो नैव दत्तं च अष्टकासु मघासु च ॥ द्विजानां न कृता प्रीतिर्मन्वादिषु युगादिषु ॥ ३९ ॥ न दत्ता तिलतैलेन प्रदीपाः कार्तिके मया ॥ न स्नातो माघमासेऽहं रूपसौभाग्यकामदे ॥ ४० ॥ अग्निं प्रज्वाल्य काष्ठौघैः स्नातानां माघ-

ही विताता था ॥ ३८ ॥ पितृपक्ष तथा मघा आदि में भी मैं कुछ दान नहीं करता था, मैंने मन्वादि युगादि तिथियों में भी ब्राह्मणों को प्रसन्न करने के लिए कुछ न किया ॥ ३९ ॥ कार्तिक में मैंने तिल तैल सहित दीप दान भी नहीं किया, माघ मास में मैंने रूप, सौभाग्य तथा काम देने वाला स्नान भी नहीं किया ॥ ४० ॥ माघ पूस में स्नान किये हुए, जाड़ा लगते हुए ब्राह्मणों का जाड़ा कभी दूर नहीं किया और इनको लकड़ी लगाकर अग्नि प्रज्वलित करके गरम

किया ॥ ४१ ॥ वैशाख इत्यादि महीनों में किसी को ठंडा पानी नहीं पिलाया, मैंने पीपल तथा बरगद के पेड़ भी नहीं लगाये ॥ ४२ ॥ मैंने कभी किसी प्राणी को वन्धन से नहीं छोड़ाया, और न प्राणभय से त्रस्त किसी शरणागत की रक्षा किया ॥ ४३ ॥ तीन रात तक उपवास करके मैंने मधुसूदन भगवान् को तृप्त नहीं किया, हे द्विज ! मैंने कृच्छ्र तथा

पौपयोः ॥ शीतार्तानां च विप्राणां न कृतो जाड्यनिग्रहः ॥ ४१ ॥ माधवादिषु मासेषु न दत्तं शीतलं जलम् ॥ मया नारोपितोऽश्वत्थो न्यग्रोधो नैव वर्धितः ॥४२॥ बन्दिगृहान्मया मुक्तिर्न कृता प्राणिनां क्वचित् ॥ न प्राणभयसन्त्रस्तो रक्षितः शरणागतः ॥४३॥ नोपोष्यात्र त्रिरात्राणि तोषितो मधुसूदनः ॥ कृच्छ्रातिकृच्छ्रपाराकं तथा चान्द्रायणं द्विज ॥ ४४ ॥ अब्दान्नं तप्तकृच्छ्रं च तथा सान्तपनानि च ॥ व्रतान्येतानि पुण्यानि जुष्टानीन्द्रादिभिःसुरैः॥४५॥ चरित्वा न मया तानि देहः संवर्धितः पुरा ॥ इत्थं पूर्वभवो वन्ध्यो मम जातो द्विजोत्तम ॥४६॥

अति कृच्छ्र तथा चान्द्रायण व्रत भी कभी नहीं किया ॥ ४४ ॥ तप्तकृच्छ्र तथा सान्तपन पुण्य व्रत मैंने कभीं नहीं किया, जिनको इन्द्रादि देवताओं ने आचरण किया था ॥ ४५ ॥ मैंने प्राचीन काल में कभी ऐसे व्रतों से अपनी शरीर कृश नहीं किया, हे द्विजश्रेष्ठ ! इस प्रकार से मेरा पूर्व जन्म फल हीन रहा ॥ ४६ ॥ हे ब्राह्मण ! देखो मेरे

पूर्व जन्म के बड़े-बड़े क्रूर कर्मों के कारण मेरी दुःअबोध विचित्र गति हुई ॥ ४७ ॥ इस पर्वत पर भेड़िया तथा व्याघ्र से मारे हुए पशुओं के मांस मार्ग में मिलते हैं तथा सर्वत्र सुग्गे इत्यादि से खाये हुए फल भी मिलते हैं ॥ ४८ ॥ सुन्दर सुगंधित रस भरे फल भी हैं तथा मोलायम मीठे खाने योग्य मूल भी हैं ॥ ४९ ॥ और भी नाना प्रकार के मीठे फल

पश्य द्विज महाक्रूरामद्भुतामत्र जन्मनि ॥ गतिं दुरवबोधार्थां मम पूर्वस्य कर्मणः ॥ ४७ ॥
सन्ति मांसानि मार्गे तु वृकव्याघ्रहतानि वै ॥ फलान्यन्यानि शैलेऽस्मिन् श्येनत्यक्तानि सर्वशः
॥ ४८ ॥ पुष्पाणि च सुगन्धीनि फलानि रसवन्ति च ॥ मूलानि च सुभक्ष्याणि मृदूनि मधु-
राणि च ॥४९॥ नानाविधानि तिष्ठन्ति मधूनि सुबहूनि च ॥ स्रोतसां निर्झराणां च सन्ति
वारीणि सर्वतः ॥५०॥ सुलभेषु पदार्थेषु सर्वेष्वेतेषु पर्वते ॥ नेद्येऽहमशनं किञ्चिद्दैवेन पिहितं
सदा ॥५१॥ वाताहारेण जीवामि यथा जीवन्ति पन्नगाः ॥ पुनर्जीवामि भो विप्र दैवयोगप्रभावतः
॥५२॥ बलेन प्रज्ञया नीत्या मन्त्र पौरुषविक्रमैः ॥ सहायैश्चैव मित्रैश्च न लभ्यं लभते नरः ॥५३॥

बहुतेरे हैं, सर्वत्र सोते और झरने के जल भी हैं ॥ ५० ॥ इस पर्वत पर ये सब पदार्थ सहज में प्राप्त हैं परन्तु दैव सर्वदा प्रतिकूल होने से मैं कुछ भी खा नहीं सकता ॥ ५१ ॥ सर्प की तरह केवल हवा पीकर जीता हूँ, हे ब्राह्मण ! मैं केवल देवयोनि के प्रभाव से ही जीवित हूँ ॥ ५२ ॥ बल, बुद्धि, मन्त्र, पुरुषार्थ, विक्रम, सहाय तथा मित्रों से मनुष्य

सर्वदा अलभ्य वस्तु को प्राप्त नहीं करता ॥ ५३ ॥ लाभ या हानि, सुख दुःखं, विवाह, मृत्यु, जीवन, भोग रोग तथा वियोग में केवल दैव (भाग्य) ही कारण होता है ॥ ५४ ॥ कुरुप, अकुलीन, मूर्ख, कुकर्मी, निन्दित, शूरता तथा पराक्रम से हीन पुरुष भी भाग्य से ही राज्य का भोग करता है ॥ ५५ ॥ काने, लूले, बिना रोब के, नीति हीन, निर्गुण

लाभालाभे सुखे दुःखे विवाहे मृत्युजीवने ॥ भोगे रोगे वियोगे च दैवमेव हि कारणम् ॥५४॥
कुरूपाः कुकुला मूर्खाः कुत्सिताचारनिन्दिताः ॥ शौर्यविक्रमहीनाश्च दैवाद्राज्यानि भुञ्जते॥५५॥
काणाः खञ्जा अभव्याश्च नीतिहीनाश्च निर्गुणाः ॥ नपुंसकाश्च दृश्यन्ते दैवाद्राज्ये प्रतिष्ठिताः५६
यैर्दत्ताश्च तिला गावो हिरण्यं च गृहाणि च ॥ गौरी कन्या च यैर्दत्ता यैर्दत्ता च वसुन्धरा॥५७॥
शय्यासनादि ताम्बूलं मन्दिराणि वराणि च ॥ भक्तभोज्यानि दत्तानि चन्दनान्यगुरूणि च
॥५८॥ अटव्यां पर्वताग्रे च ग्रामे वा नगरेऽपि च ॥ पुरः पुरश्च तिष्ठन्ति तेषां भोगा ह्ययत्नतः
॥ ५९ ॥ सन्त्यत्र पर्वतेऽन्येऽपि राक्षसा बलवत्तराः राक्षसाश्च पिशाच्यश्च पिशाचाश्चाति-

तथा नपुंसक मनुष्य भाग्य से राज्य पर बैठते हैं ॥ ५६ ॥ जिन्होंने तिल, गाय, सुवर्ण, घर, आठ वर्ष की (गौरी) कन्या तथा पृथ्वी का दान दिया ॥ ५७ ॥ शय्या, आसन, तांबूल, मन्दिर, धन, भोजन सामग्री, चन्दन तथा अगर जिन्होंने दान दिया ॥ ५८ ॥ वनमार्ग, पर्वत के अगले भाग, ग्राम अथवा नगर में ऐसे (भाग्यशाली) पुरुषों के भोग यत्नपूर्वक आगे आगे जाते हैं ॥ ५९ ॥ इस पर्वत पर दूसरे भी बलवान् राक्षस, पिशाच, पिशाची तथा भयंकर

दारुणाः ॥ ६० ॥ कदाचिच्च कथञ्चिच्च क्वापि-क्वापि स्वकर्मणा ॥ लभन्ते तेऽन्नपानानि पर्यटन्तो वने वने ॥६१॥ इति श्रुत्वाऽत्र तेभ्यश्च मा भयं भवतो भवेत् ॥ शुचिं रक्षन्ति भूतानि धर्मिष्ठं पीडयन्ति नो ॥६२॥ रक्षयन्ति शुचिं नित्य ग्रहनक्षत्रदेवताः ॥ शुचिं गोविन्द भक्तं त्वां न ते दुष्टमपि क्षमाः ॥ ६३ ॥ विष्णुभक्तितनुत्राणं नारायणपरायणम् ॥ न स्पृशन्ति न पश्यन्ति राक्षसाः प्रेतपूतनाः ॥ ६४ ॥ भूतवेतालगन्धर्वाः शाकिन्यश्चार्यकग्रहाः ॥ रेवत्यो वृद्धरेवत्यो मुखमण्डलिका ग्रहाः ॥ ६५ ॥ यक्षा बालग्रहाः क्रूरा दुष्टा वृद्धग्रहाश्च ये ॥ तथा मातृग्रहा भीमा ग्रहाश्चान्ये विनायकाः ॥६६॥ कृत्याः सर्पाश्च कूष्माण्डा ये चान्ये दुष्टजन्तवः ॥

राक्षस हैं ॥ ६० ॥ जिनमें से कभी-कभी कोई-कोई कहीं-कहीं पर वन में घूमते हुए अपने कर्म के अनुसार अन्न-जल प्राप्त करते हैं ॥ ६१ ॥ ऐसा सुन कर आपको भय न हो (क्योंकि) धर्मिष्ठ लोगों की पवित्रता ही उनकी रक्षा करती है, उनको कोई पीड़ा नहीं दे सकता ॥ ६२ ॥ ग्रह, नक्षत्र तथा देवता लोग पवित्र की सर्वदा रक्षा करते हैं, ये राक्षस गोविन्द के पवित्र भक्त आपको देख भी नहीं सकते ॥ ६३ ॥ जो लोग नारायण में लीन रहते हैं और जिनका शरीर विष्णु भगवान् की भक्ति से पवित्र रहता है उनको राक्षस, प्रेत तथा पूतना न तो देख सकते हैं और न छू सकते हैं ॥ ६४ ॥ भूत, वैताल, गन्धर्व, शाकिनी, आर्यक, ग्रह, रेवती, वृद्धरेवती, मुखमण्डलिका ग्रह ॥ ६५ ॥ यक्ष, क्रूर बाल

ग्रह, दुष्ट वृद्ध ग्रह, मातृग्रह, भयङ्कर ग्रह तथा अन्य विनायक इत्यादि ग्रह ॥ ६६ ॥ कृत्या, सर्प, कूष्माण्ड तथा दूसरे दुष्ट जन्तु, हे ब्राह्मण ! पवित्र वैष्णव ब्राह्मण को नहीं देखते ॥ ६७ ॥ जिसकी जीभ पर गोविन्द का नाम तथा हृदय में वेद तथा श्रुति स्थिति है जो पवित्र तथा दानी है वैसे तुमको कहीं भी भय नहीं है ॥ ६८ ॥ हे ब्राह्मण ! मैं इस प्रकार

न पश्यन्ति परं विप्र वैष्णवं ब्राह्मणं शुचिम् ॥ ६७ ॥ गोविन्दनाम जिह्वाग्रे हृदि वेदश्रुतिः स्थिता ॥ शुचिश्च स्नानशीलश्च त्वं सर्वत्राकुतोभयः ॥६८॥ एवं ब्राह्मण तिष्ठामि भुञ्जानः कर्मणः फलम् ॥ न शोचामीति मत्वाऽहं विमृश्य च पुनः पुनः ॥ ६९ ॥ एकदा तु गतो यावत्तावज्जम्बालिनीतटे ॥ सारसोदीरितं वाक्यं श्रुतं पर्यटता मया ॥ ७० ॥

इति श्री पद्मपुराणे उत्तरखण्डे माघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे
पिशाचबोधो नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

अपने कर्मों का फल भोगता हुआ यहाँ रहता हूँ, यही बारम्बार सोच कर मैं शोक नहीं करता ॥ ६९ ॥ एक बार जंबालिनी नदी के किनारे पर मैं गया था तो वहाँ पर घूमते हुए मैंने सारस से कहे हुए वचन को सुना था ॥ ७० ॥

श्री पद्मपुराण के उत्तरखण्ड के माघमाहात्म्य के वशिष्ठ और दिलिप के संवाद में पिशाच बोध नाम का पचीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २५ ॥



कार्पटिक ने कहा—हे प्रेत ! तुमने सारस के कहे हुए वाक्य को किस प्रकार सुना था सो मैं सुनना चाहता हूँ, मुझसे शीघ्र कहो ॥१॥ प्रेत ने कहा—हे श्रेष्ठ कार्पटकि ! सुनो, मैं तुमसे सारस के वाक्य कहता हूँ, इस जङ्गल में कुहरा नाम की एक नदी पर्वत से निकली है ॥ २ ॥ (उसी के समीप) सर्वदा जल भरे ताल हैं जो मतवाले हाथियों के

कार्पटिक उवाच—सारसोदीरितं वाक्यं कीदृशं हि श्रुतं त्वया ॥ तदहं श्रोतुमिच्छामि प्रब्रूहि प्रेत सत्वरम् ॥ १ ॥ प्रेत उवाच—ब्रवीमि सारसं वाक्यं शृणु कार्पटिकोत्तम ॥ कुहरा नाम क्षेत्रेऽस्मिन्नदीगिरि समुद्भवा ॥ २ ॥ सदाजला शिलोत्ताला मत्तदन्तिकुलाकुला ॥ महाकुक्कुटशोभाढ्या स्निग्धजम्बूमनोहरा ॥ ३ ॥ तस्यास्तीरमहं प्राप्तो गाहमानो घनं वनम् ॥ मयि तिष्ठति तत्रैव श्रमापनुतिकाम्यया ॥४॥ वनान्तरात् समुड्डीय सारसो लक्ष्मणा-युतः ॥ आगतः पुलिनं नद्याः सेवितं बहुपक्षिभिः ॥ ५ ॥ पीत्वा तत्रैव पानीयं मिलित्वा भार्यया सह ॥ सुप्तः पक्षपुटे वामे प्रवेश्य स्वशिरः सुखम् ॥६॥ एतस्मिन्नन्तरे दृष्टः पादपादव-

झुण्ड से व्याप्त हैं, जहाँ बड़े-बड़े ककुभ वृक्ष तथा चिकने जामुन के मनोहर वृक्ष हैं, शोभायमान ॥ ३ ॥ घने जङ्गल में घूमता हुआ मैं इसी नदी के तट पर पहुँचा, मैं थकावट दूर करने के लिये वहाँ पर ठहर गया ॥ ४ ॥ वहीं पर सारस का एक जोड़ा किसी दूसरे वन से उड़कर आया और अनेक पक्षियों से सेवित बालू पर ठहरा ॥ ५ ॥ वहाँ पर पानी

पीकर तथा भार्या से रमण करके अपने बाँये पङ्ख में सुख से मस्तक ढाँप कर सो गया ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर लाल मुख वाला लाल नेत्र तथा तीखे दाढ़ और नख वाला बलवान् (बन्दर) वृत्त से उतर कर ॥ ७ ॥ वेग से वहाँ पर आया जहाँ सारस सोया था, इस बन्दर के बड़े-बड़े रोवें थे, लम्बी पोंछ थी और यह बड़ा चञ्चल था ॥ ८ ॥ वहाँ पर आकर

तीर्य च ॥ रक्तानन: सुरक्ताक्षो दंष्ट्री दृढनखो बली ॥ ७ ॥ लोमशो दीर्घलांगूलश्चलच्चेष्टो हि वानरः ॥ यात्रासौ सारसः सुप्तस्तत्र वेगेन चागतः ॥ ८ ॥ समगत्य च जग्राह चरणौ सारसं दृढम् ॥ कराभ्यां क्रूरया बुद्ध्या पश्यन्तं बहु पक्षिणाम् ॥ ६ ॥ उड्डीयोड्डीय ते सर्वे गता अन्यत्र खेचराः ॥ सारसी भीत भीतं च विरावं कुर्वती स्थिता ॥ १० ॥ सारसो भग्न-निद्रश्च त्रासाच्चकितलोचनः ॥ आवलोकितवान् शीघ्रं तदोन्नम्य शिरोधराम् ॥११॥ विलोक्य वानरं पृष्ठे हन्तुकामं सुदारुणम् ॥ तदा संभाषयामास गिरा मधुरया खगः ॥ १२ ॥ अपराधं

अनेक पक्षियों को देखते हुए क्रूर बुद्धि से इस बन्दर ने अपने हाथों से सारस के पैरों को कस कर पकड़ लिया ॥ ६ ॥ वे सब पक्षी उड़ उड़ कर अन्यत्र चले गये परन्तु सारसी भयभीत होकर विलाप करती हुई वहीं रुक गई ॥ १० ॥ नींद टूटने से तथा भय से सारस के नेत्र चकित थे, उसने शिर झुका कर उसको शीघ्र देखा ॥ ११ ॥ उस दुष्ट, भयङ्कर जान मारने वाले बन्दर को देखकर उस पक्षी (सारस) ने मधुर वाणी से कहना आरम्भ किया ॥ १२ ॥ हे बन्दर ! तुम

विना अपराध के मुझको क्यों पीड़ा देते हो, संसार में राजा से भी अपराधी मनुष्य वध्य होते हैं ॥ १३ ॥ तुम्हारे समान श्रेष्ठ प्राणी किसी को पीड़ा नहीं देते हम अहिंसक साधु दूसरों की वृत्ति से विमुख रहते हैं ॥ १४ ॥ जल की काई खाने वाले, आकाश में उड़ने वाले, वन में रहने वाले अपनी ही स्त्री से प्रेम करने वाले दूसरों की स्त्री को त्यागने वाले

विना मां त्वं शाखामृग प्रबोधसे ॥ सापराधा जना लोके वाध्यन्ते भूमिपैरपि ॥ १३ ॥ न पीडयतुमर्हन्ति त्वादृशा उत्तमा जनाः ॥ अस्मानहिंसकान् साधून् परवृत्तिपराङ्मुखान् ॥१४॥ जलशवालभक्षांश्च खेचरान् वनवासिनः ॥ स्वदाररतिशीलांश्च परदारविवर्जितान् ॥१५॥ परापवादशून्यांश्च तथा स्तेनानयाचकान् ॥ दुर्वृत्तसंगहीनांश्च द्विजानपरबाधकान् ॥ १६ ॥ शाखामृग विमुञ्चाशु सर्वथा मामनागसम् ॥ जानामि तव जन्माहं न त्वं वेत्सि तु मामिह ॥१७॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य मुमोच सारसं तदा ॥ चपलो वानरः शीघ्रं ईषद्दूरे व्यवस्थितः ॥१८॥

॥ १५ ॥ दूसरों की बुराई से दूर रहने वाले, चोरी न करने वाले, बुरों का साथ न करने वाले तथा दूसरों को कष्ट न देने वाले ॥ १६ ॥ सब प्रकार से निरपराधी मुझको हे वानर ! छोड दो, मैं तुम्हारे (पूर्व) जन्म का वृत्तान्त जानता हूँ, परन्तु तुम मेरा नहीं जानते ॥ १७ ॥ ऐसा वचन सुनकर वन्दर ने सारस को छोड़ दिया वह चपल वन्दर शीघ्र कुछ दूर बैठ गया ॥ १८ ॥ वन्दर ने कहा—कहो तुम कैसे मेरे पूर्व जन्म का वृत्तान्त जानते हो ?

वानर उवाच- ब्रूहि नाम कथं वेत्सि मम जन्म पुरातनम् ॥ त्वं पक्षी ज्ञान हीनश्च तिर्यक् क्वाऽहं वनेचरः ॥१६॥ सारस उवाच--जानेऽहं तावकं जन्म जातिस्मृतिमतेर्बलात् ॥ त्वं हि विन्ध्याधिपो राजा प्राग्भवे पर्वतेश्वरः ॥२०॥ अहं पूज्यतमो विप्रस्तव वंशे पुरोहितः ॥ तेन प्रत्यभिजानामि त्वां सम्यक् वानरोत्तम ॥२१॥ इमां पालयता भूमिं प्रजाः सर्वाः प्रपीडिताः ॥ त्वया विवेक-हीनेन भृशं सञ्चयता धनम् ॥२२॥ प्रजापीडनतापोत्थवह्निज्वालस्तु वानर ॥ प्राक् त्वं दग्धः पुनः क्षिप्तः कुम्भीपाकेऽतिदारुणे ॥ पुनः पुनश्च दग्धेन जातेन च पुनः पुनः ॥२३॥ नारकेण शरीरेण समास्त्रियुतं त्वया ॥२४॥ कुर्वता दारुणान् शब्दान् क्रन्दनं च पुनः पुनः ॥ कुम्भीपा-

तुम ज्ञानहीन पक्षी हो और मैं वन में घूमने वाला हूँ ॥ १६ ॥ सारस ने कहा—कि मैं अपनी जाति की स्मृति के बल से तुम्हारे पूर्व जन्म का वृत्तान्त जानता हूँ, तुम पूर्व जन्म में पर्वतेश्वर विंध्यपर्वत के राजा थे ॥ २० ॥ और मैं अति पूज्य ब्राह्मण तुम्हारे कुल का पुरोहित था, हे श्रेष्ठ वानर ! इसी से मैं तुमको अच्छी तरह से जानता हूँ ॥ २१ ॥ इस भूमि का पालन करते हुए तुमने सब प्रजा को पीड़ा दिया और विवेक हीन तुमने बहुत सा धन इकट्ठा किया ॥ २२ ॥ हे वानर ! प्रजा के पीड़न रूपी अग्नि की ज्वाला से तुम पहिले ही तप चुके थे, बाद में तुम अति दुःखदायी कुम्भीपाक नामके नरक में फेंके गये ॥ २३ ॥ बारंबार दग्ध होने

से तथा वारंवार जन्म लेने से तुम्हारे नरक के शरीर में तीन हजार वर्ष बीत गये ॥ २४ ॥ तुमने वारंरवार चिल्लाते हुए और पीडा का शब्द करते हुए कुम्भीपाक नरक की तीव्र अग्नि की यातना का अनुभव किया ॥ २५ ॥ फिर नरक से निकल कर बचे हुए पाप के कारण अब तुम बन्दर की योनि में जनमे हो और मुझको मारना चाहते हो ॥ २६ ॥

कानले तीव्रे ह्यनुभूताश्च यातनाः ॥ २५ ॥ निस्तीर्णनरको भूयः पापशेषेण साम्प्रतम् ॥ प्राप्तोऽसि वानरं जन्म येन मां हन्तुमिच्छसि ॥२६॥ विप्रस्योपवनात् पूर्वं प्राप्तवांश्च फलानि वै ॥ अननुज्ञाप्य भुक्तानि त्वयाऽपहतपौरुषात् ॥२७॥ विपाकः कर्मणस्तस्य फलं ते यस्य दारुणः ॥ वानरत्वं वने वासो ह्यधुना येन वर्तते ॥२८॥ अशुभस्य शुभस्यापि पुरा विहितकर्मणः ॥ भोगः क्रीडति भूतेषु योऽलंघ्यस्त्रिदशैरपि ॥२९॥ इत्थं ते जन्म जानामि यथावच्च सहेतुकम् ॥ प्राप्तः सारसदेहोऽपि ज्ञानस्य परिबोधकः ॥३०॥ इति श्रुतकथो विप्र वानरोऽप्याह सारसम् ॥ वानर

पहिले तुमने ब्राह्मण के बगीचे में बिना उसकी आज्ञा के अपने बल से लूट कर उसके पके हुए केले खाये थे ॥ २७ ॥ उस कर्म का यह भयङ्कर फल हुआ सो देखो, हे वानर! उसी पाप के कारण तुम अब वानर और वनवासी हुए हो ॥२८॥ प्राणी संसार में अपने पहिले किये हुए शुभ तथा अशुभ कर्म का फल भोगता है, इसको देवता लोग भी हटा नहीं सकते ॥२९॥ इस प्रकार से हेतु सहित मैं तुम्हारे जन्म को पूर्ण रीति से जानता हूँ, मैं सारस का शरीर प्राप्त करके भी अज्ञान से मोहित नहीं हुआ हूँ ॥३०॥ हे ब्राह्मण! ऐसी कथा सुनकर वानर ने सारस से कहा। वानर बोला—तुम ठीक जानते हो

तो बतलाओ तुम पक्षी कैसे हुए ? ॥३१॥ सारस ने कहा—यदि तुम वह सब सुनना चाहते हो तो मैं तुमसे बतलाता हूँ कि किस कर्म से मैं पक्षि की योनि को प्राप्त हुआ तथा इस दुर्गति को पहुँचा ॥३२॥ तुमने पूर्व जन्म में सूर्य ग्रहण में नर्मदा नदी के तट पर बहुत से ब्राह्मणों के निमित्त अन्न के सौ ढेर दान किये थे ॥ ३३ ॥ पुरोहित के मद से (अर्थात्

उवाच—सम्यग्वेत्ति भवान्नूनं त्वं कथं पक्षितां गतः ॥ ३१ ॥ सारस उवाच—कथयिष्यामि तत्कर्म येनाहं दुर्गतिं गतः ॥ पक्षियोनिं गतो येन तत्सर्वं श्रोतुमर्हसि ॥३२॥ धान्यराशिशतं साग्र-मुत्सृष्टं हि त्वया पुरा ॥ बहुभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च नर्मदायां रविग्रहे ॥३३॥ पौरोहित्यमदाल्लो-भाद्वञ्चयित्वा द्विजांस्तदा ॥ किञ्चिद्दत्वा तु तेभ्यश्च गृहीतमखिलं मया ॥ ३४ ॥ विप्रसाधार-णद्रव्यग्रहणोत्पन्नपातकात् ॥ पतितः कालसूत्रेऽहं नरके रक्तकर्दमे ॥३५॥ चलत्कृमिसुसम्पूर्णे दुर्गन्धे पूयफेनिले ॥ आनाभेस्तत्र मग्नोऽस्मि लिहन् पूयमधोमुखः ॥३६॥ तदोपरि महागृध्रैर्भक्ष्य-

मैं राजा का पुरोहित हूँ यह समझ कर) मैंने ब्राह्मणों को ठग कर तथा उनको थोड़ा सा अन्न देकर सब ले लिया ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणों के साधारण द्रव्य का अपहरण करने से उत्पन्न पाप से मैं कालसूत्र तथा रक्तकर्दम नामक नरक में पड़ा ॥ ३५ ॥ जहाँ सर्वत्र कीड़े रेंगते थे और जो दुर्गन्ध और पीव से भरा था, वहाँ पर नाभि तक नीचे सिर किये गड़ा रह कर मैं पीव चाटता था ॥ ३६ ॥ इसके ऊपर भी यह (यह यातना थी कि) मेरे शरीर को बड़े बड़े गिद्ध,

तथा कौवे और कीड़े बराबर काटते और खाते थे ॥ ३७ ॥ उस लोहू के कीचड़ में मैं तब श्वास रहित हो गया, उस समय मेरा एक क्षण महाकल्प के समान हो गया था ॥ ३८ ॥ तीन हजार वर्ष मुझको इस प्रकार की यातना भोगते हुए बीत गये, हे वानर ! मैं नरक के दुःख को मुख से कह नहीं सकता ॥ ३९ ॥ तब नरक रूपी सागर को पार करके

माणस्तु वायसैः॥ कृमिभिस्तुद्यमानश्च भग्नदेहो निरन्तरम् ॥३७॥ तस्मिन् शोणितपङ्केऽहं निरुच्छ्वासोऽभवं तदा ॥ मुहूर्तोऽपि महाकल्पशतं जातो ममात्र वै ॥ ३८ ॥ यातनां चानुभूयेत्थं समास्त्रिरयुतं मया ॥ वक्तुं वाचा न शक्नोमि दुःखं वानर नारकम् ॥३९॥ दैवात् कथमपि प्राप्त उत्तारो नरकाम्बुधेः ॥ येन कर्मविपाकेन शकुनित्वमुपस्तितम् ॥४०॥ तथापि श्रूयतां वक्ष्ये निःशेषेण सहेतुकम् ॥ अपहृत्य मया कांस्यभाजनं भगिनीगृहात् ॥ ४१ ॥ आक्षिकाय मया दत्तं तेन मे सारसी गतिः ॥ इयं च ब्राह्मणी पूर्वं कांस्यचोरी सुदारुणा ॥ ४२ ॥ तेनेयं सारसी जाता मद्भार्या सहधर्मिणी ॥ इत्थं वानर ते सर्वं कथितं कर्मणः फलम् ॥ ४३ ॥ वृत्तं च वर्तमानं

मैंने किसी प्रारब्धवश उद्धार पाया, और कर्मफल से पक्षी का जन्म पाया ॥ ४० ॥ मैं कारण सहित सब वृत्तान्त कहता हूँ सुनो, मैंने बहिन के घर से पूर्वजन्म में काँसे का बरतन चुराया था ॥ ४१ ॥ इसको मैंने जुवारी को दिया था, इसी से मैं सारस हुआ, यह मेरी स्त्री पूर्वजन्म में ब्राह्मणी थी और इसने काँसे की भयंकर चोरी की थी ॥ ४२ ॥ इससे यह मेरी सहधर्मिणी भार्या सारसी हुई, हे वानर ! इस प्रकार से मैंने तुमसे कर्म का सब फल कह दिया ॥ ४३ ॥

बीती हुई तथा वर्तमान स्थिति ऐसी है, अब होने वाली (भविष्य) वार्ता सुनो, मैं अब हंस हूँगा और तुम भी हंस होगे ॥ ४४ ॥ यह मेरी सारसी भार्या भी हंसी होगी, हम लोग कामरूप देश में सुखपूर्वक निवास करेंगे ॥ ४५ ॥ इसके अनन्तर हम लोग कल्याणी गोयोनि मैं जावेंगे, तब दुर्लभ मनुष्य जन्म पावेंगे ॥ ४६ ॥ (इस मनुष्य योनि में)

च भविष्यं शृणु साम्प्रतम् ॥ अहं हंसो भविष्यामि त्वं च हंसो भविष्यसि ॥ ४४ ॥ हंसीय-मपि मद्भार्या सारसी च भविष्यति ॥ देशे च कामरूपे वै स्थास्यामोऽत्र यथासुखम् ॥ ४५ ॥ गोयोनिं भावि कल्याणीं यास्यामस्तदनन्तरम् ॥ ततश्च मानुषं जन्म प्राप्स्यामो दुर्लभं पुनः ॥४६॥ श्रेयस्तद्विपरीतं च प्राणिभिर्यत्र साध्यते ॥ एवं सर्वान् शिवो जन्तून् मोहयित्वा स्वमा-यया ॥४७॥ सुखैर्भुनक्ति दुःखैश्च नास्मानपि स केवलम् ॥ अयं लोके प्रवृत्तश्च मार्गो विधि-विनिर्मितः ॥ ४८ ॥ धर्माधर्मं मयाऽत्यर्थं सुखदुःखफलात्मकम् ॥ सेवितः प्राणिभिः सर्वः सर्वदा-तैः पुनः पुनः ॥४९॥ देवासुरनरव्याघ्रक्रिमिकीटजलेचरैः ॥ नातिक्रान्तो हि केनापि पन्थाऽयं

प्राणी पुण्य और पाप दोनों ही करते हैं, इस प्रकार शिवजी सब जन्तुओं को अपनी माया से मोहित करते हैं ॥ ४७ ॥ न केवल हमी को परन्तु सभी को सुख और दुःख से युक्त करते हैं, इस लोक में प्रवृत्ति के नाना प्रकार के मार्ग हैं ॥ ४८ ॥ जो धर्म तथा अधर्म करने वालों को (तदनुसार) सुख दुःख का फल देते हैं इसीसे सब प्राणियों को सर्वदा धर्म का सेवन करना चाहिये ॥ ४९ ॥ देवता, असुर, मनुष्य, व्याघ्र, कीड़े मकोड़े, जलचर, किसी से भी यह दुःखरूपी

कंटक से भरा हुआ मार्ग छूटा नहीं है ॥ ५० ॥ केवल वेदान्त दर्शन के पारंगत विरक्त योगी लोग ही इस कंटक से दूर रहते हैं, थोड़ा अथवा अधिक पुण्य पाप का ॥ ५१ ॥ फल देश काल जान कर महादेवजी देते हैं, इस प्रकार विधि विधान को जानने वाले ईश्वर की माया को जानकर ॥ ५२ ॥ बड़े-बड़े बुद्धिमान लोग शोक, ताप तथा व्यथा नहीं करते,

दुःखकण्टकः ॥५०॥ विरक्तान् योगिनो ध्यातॄन् विना वेदान्तपारगान् ॥ अणोरपि गुरोर्वापि पुण्यापुण्यस्य कर्मणः ॥५१॥ ददाति हि फलंज्ञात्वा देशं कालं महेश्वरः॥ इत्थं विधिविधानज्ञां मायां ज्ञात्वेश्वरस्य च ॥५२॥ न शोचन्ति न तप्यन्ते न व्यथन्ति महाधियः॥ नान्यथा शक्यते कर्तुं विपाकः पूर्वकर्मणाम् ॥५३॥ उपायैः प्रज्ञया वापि शाखामृगसुरैरपि ॥ पुरा त्वं भूपति-र्जातः पश्चाज्जातोऽसि नारकी ॥५४॥ अधुना वानरो भूयो जन्म प्राप्स्यसि तादृशम् ॥ इति मत्वा विशोकस्त्वं शाखामृग यथासुखम् ॥ ५५ ॥ प्रतीक्षां कुरु कालस्य रममाणो वने वने ॥ अहमप्येवमीशस्य मायाबद्धो वने वने ॥५६॥ क्षपयिष्यामि वै जन्म धैर्यमास्थाय सारसम् ॥

वे पूर्व (जन्म के किये हुए) कर्म के फल को उलट नहीं सकते ॥ ५३ ॥ हे बन्दर !, उपाय से, बुद्धि से, देवता लोग भी इसको पलट नहीं सकते, पहिले तुम राजा थे बाद में नरक में गये ॥ ५४ ॥ अब तुम बन्दर हुए, फिर भी ऐसा ही जन्म पाओगे, हे वानर ! ऐसा समझ कर बिना शोक किये तुम आनन्दपूर्वक ॥ ५५ ॥ इस वन में विचरते हुए काल की प्रतीक्षा करो, और भी ईश्वर की माया से बँधा हुआ इसी प्रकार से जंगल जंगल ॥ ५६ ॥ धैर्य धारण किये हुए

सारस का जन्म विताता हूँ ॥ वानर ने कहा—पहिले मैं तुम्हारी पूजा करता था, अब तुम मुझको प्रणाम करते हो ॥५७॥ तुम जाति से स्मरण रखते हुए मेरे पूर्व जन्म के वृत्तान्त को जानते हो तो हे सारस और सारसी ! तुम आनन्दपूर्वक रहो, तुम्हारा सदा कल्याण हो ॥ ५८ ॥ तुम्हारे वाक्य से मैं मोह रहित हो गया, मैं सर्वदा विचरूँगा ॥ प्रेत ने

वानर उवाच—मया सम्पूजितः पूर्वं नौमि त्वामधुनाप्यहम् ॥५७॥ जातिस्मरोऽसि जानासि सर्वं मत्पूर्वदैहिकम् ॥ तिष्ठ सारस सारस्या शिवमस्तु सदा तव ॥ ५८ ॥ त्वद्वाक्याद्गतमोहोऽहं विचरिष्यामि सर्वदा ॥ प्रेत उवाच—इमं रम्यं विचित्रं च पावनं परमं द्विज ॥ ५६ ॥ पक्षिवानरसंवादं श्रुतं यावन्नदीतटे ॥ तावन्ममापि बोधोऽभूत्तेन शोकः क्षयं गतः ॥ ६० ॥ इत्थं रहस्यं परमं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ शृणोति य इदं भक्त्या तस्य ज्ञानं भविष्यति ॥६१॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे माघमाहात्म्ये वानरजन्मकथनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

कहा—हे ब्राह्मण ! यह सुन्दर, विचित्र, परम पवित्र ॥ ५६ ॥ पक्षी और वन्दर का संवाद मैंने नदी के तट पर सुना तब इससे मुझे भी बोध हुआ और मेरे शोक का नाश हुआ ॥ ६० ॥ यह अपूर्व रहस्य सब पापों को नाश करने वाला है, जो कोई भक्तिपूर्वक इसको सुनता है उसको ज्ञान उत्पन्न होता है ॥ ६१ ॥

श्री पद्मपुराण के उत्तर खण्ड के माघमाहात्म्य में वानर के जन्म कथन नाम का छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २६ ॥

प्रेत ने कहा–हे द्विजश्रेष्ठ! इस समय मैं आपसे गंगाजी का जल माँगता हूँ जिसके अपूर्व माहात्म्य के विषय में मैंने बहुत सुना है ॥ १ ॥ बड़ी पीड़ा से व्याकुल मैं अपना प्रेतत्व दूर करनो चाहता हूँ, इसी पर्वत पर मैंने एक बड़ो अद्भुत आश्चर्य गंगाजी के जल का ॥ २ ॥ देखा था, इसी से हे ब्राह्मण! मैं गंगाजल माँगता हूँ, पारियात्र

प्रेत उवाच–इदानीं जाह्नवीतोयमाहात्म्यं परमं मया ॥ श्रुतं यतो द्विजश्रेष्ठ त्वां याचे जाह्नवीजलम् ॥१॥ प्रेतत्वं तर्तुकामोऽहं वेदनातिप्रपीडितः ॥ अस्मिन्नेवाचले दृष्टं मयाऽऽश्चर्यं महाद्भुतम् ॥ २ ॥ गङ्गातोयस्य तावद्धि वाञ्छामि तज्जलं द्विज ॥ पारियात्रोद्भवः कोऽपि ब्राह्मणो ग्रामयाजकः ॥३॥ अयाज्ययाजनाद्विन्ध्ये सम्भूतो ब्रह्मराक्षसः ॥ अस्मत्सगस्य लोभेन स्थितोऽसौ हायनाष्टकम् ॥४॥ तस्यास्थीनि च पुत्रेण सञ्चितानि द्विजोत्तम ॥ क्षिप्तानि तानि गङ्गायां तीर्थे कनखलेऽमले ॥५॥ तत्क्षणादेव मुक्तोऽसौ राक्षसत्वाच्च दारुणात् ॥ इति गंगाजलस्यालं महिमानं महाद्भुतम् ॥६॥ साक्षाद्दृष्टं मया तेन गाङ्गं प्रार्थये जलम् ॥ पुरस्ताद्य-

कुल में उत्पन्न एक गाँव में यज्ञ कराने वाला ब्राह्मण ॥ ३ ॥ अनधिकारी को यज्ञ कराने से ब्रह्मराक्षस हुआ था, हमारी संगति के लोभ से वह आठ वर्ष तक रहा ॥ ४ ॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! उसकी हड्डियों को उसके पुत्र ने एकट्ठा करके गंगाजी के कनखल तीर्थ में फेंक दिया ॥ ५ ॥ उसी क्षण वह दुखदायी राक्षसत्व से मुक्त हो गया, इसी प्रकार

गंगाजल की बड़ी अअद्भुत महिमा है ॥ ६ ॥ मैंने यह प्रत्यक्ष देखा है इसी से मैं आपसे गंगाजल की प्रार्थना करता हूँ, पहिले जो मैंने तीर्थ में (पाप) किये थे तथा तीर्थ में बड़े-बड़े दान लिये थे ॥ ७ ॥ और जप इत्यादि करके उसका प्रायश्चित्त नहीं किया था, उसीसे मुझ प्रेत को भोजन और जल दुर्लभ हो गया है ॥ ८ ॥ और इसी से मुझे

त्कृतस्तीर्थे तीर्थभूरि प्रतिग्रहः ॥७॥ न कृतस्तु प्रतीकारस्तस्य जाप्यादिलक्षणः ॥ तेन मे प्रेत-
रूपस्य दुर्लभोदक भोजनम् ॥८॥ सहस्त्रयमब्दानां अतीतं विन्ध्यपर्वते ॥ इति ते कथितं सर्वं
हित्वा लज्जां गरीयसीम् ॥९॥ इदानीं धार्मिकश्रेष्ठ जलदानेन सत्वरम् ॥ सन्तर्पय मम प्राणान्
कण्ठमात्रावलम्बिनः ॥१०॥ दुर्लभं प्रेतभावेऽपि जीवनं प्राणिनामिह ॥ शरीरं रक्षणीयं तु
सर्वथा सर्वदा नरैः ॥११॥ न हीच्छन्ति तनुत्यागमपि कुष्ठादिरोगिणः ॥ देवद्युतिरुवाच—
इतीदं वचनं श्रुत्वा विस्मयं परमं गतः ॥१२॥ पथिकश्चिन्तयामास क्रियां प्रेतसमुद्भवाम् ॥

विन्ध्य पर्वत पर हजारों वर्ष बीत गये हैं, यह सब मैंने अपनी बड़ी लज्जा छोड़ कर आप से कहा है ॥ ९ ॥ हे धार्मिकों में श्रेष्ठ ! इस समय आप जलदान देकर कण्ठ तक आ गये हुए मेरे प्राणों को सन्तुष्ट कीजिये ॥ १० ॥ प्राणियों को प्रेत रूप में भी जीना दुर्लभ है, परन्त मनुष्यों को सर्वदा सब प्रकार से शरीर की रक्षा- करनी चाहिये ॥ ११ ॥ कुष्ठ इत्यादि रोग से ग्रस्त भी शरीर त्याग करने की इच्छा नहीं करते । देवद्युतिजी ने कहा—ऐसा उसका वचन सुन

कर वह ब्राह्मण बड़ा विस्मित हुआ ॥ १२ ॥ और वह प्रेत पर कृपा करता हुआ विचारने लगा—संसार में पाप तथा पुण्य के फल अवश्य प्रत्यक्ष देख पड़ते हैं ॥ १३ ॥ देव, दानव, मनुष्य तिरछे चलने वाले, कीड़े, मकोड़े, अनेक योनियों में जन्म लेकर नाना प्रकार के रोगों से पीड़ित होते हैं ॥ १४ ॥ बाल तथा वृद्धों का मरण, अन्धापन तथा

पापपुण्यफलं लोके प्रत्यक्षं खलु दृश्यते ॥१३॥ देवदानवमानुष्यं तिर्यक्त्वं कृमिकीटता ॥ नाना-
योनिषु जन्मानि नानाव्याधिप्रपीडनम् ॥ १४ ॥ मरणं बालवृद्धानामन्धत्वं कुब्जता तथा ॥
एताश्च रचना लोके भवन्ति कथमन्यथा ॥१५॥ ऐश्वर्यं च दरिद्रत्वं पाण्डित्यं मूर्खता तथा ॥
ते धन्याः कर्मभूमौ ये न्यायमार्गार्जितं धनम् ॥ १६ ॥ सत्पात्रेभ्यः प्रयच्छन्ति कुर्वन्त्ये-
वात्मनो हितम् ॥ भूमिरत्नहिरण्यानि गावो धान्यं गृहं गजाः ॥१७॥ रथाश्च वसनग्रामाः
सिद्धमन्नं फलं जलम् ॥ कन्यां दिव्यौषधं मन्त्रान् छत्रोपानद्वरासनम् ॥१८॥ शय्याताम्बूल-

कुबड़ापन संसार की रचना में अन्यथा कैसे हो सकता है ॥ १५ ॥ ऐश्वर्य, दरिद्रता, पाण्डित्य तथा मूर्खता भी संसार में कैसे होती है। इस कर्मभूमि में जिन्होंने न्याय मार्ग से धन इकट्ठा किया है वे ही धन्य हैं ॥ १६ ॥ जो सत्पात्र को धन देते हैं वे ही अपना हित करते हैं; भूमि, रत्न, सुवर्ण, गाय, धान्य, घर, हाथी ॥ १७ ॥ रथ, घोड़ा, वस्त्र, गाँव पका हुआ अन्न, फल, जल, कन्या, दिव्य औषधि, मन्त्र, छाता, जूता, श्रेष्ठ आसन ॥ १८ ॥ पलंग, ताम्बूल, माला,

ताड़ के पंखे, ये सब पदार्थ तीनों लोक को जीतने की इच्छा करने वाले को दान करना चाहिये ॥ १९ ॥ दिया हुआ पदार्थ ही स्वर्ग में प्राप्त होता है, दिया हुआ ही भोगा जाता है, छत्र, चँवर, सवारी, अच्छे घोड़े ॥ २० ॥ तिल, गाय, हाथी, घोड़े, प्रेतान्न, अजिन, मणि, इस पदार्थों का प्रतिग्रह मद्य के समान होता है ॥ २१ ॥ महल, सुन्दर पलङ्ग,

माल्यानि तालवृन्तं च चामरम् ॥ सर्वमेतत्प्रदातव्यं लोकद्वयजिगीषुभिः ॥ १९ ॥ दत्तं हि प्राप्यते स्वर्गे दत्तमेवेह भुज्यते ॥ छत्रचामरयानानि वराश्ववरवारणाः ॥ २० ॥ तिलधेनुर्गजो वाजी प्रेतान्नमजिनं मणिः ॥ सुरभिः सूयमाना च घोराः सप्त प्रतिग्रहाः ॥२१॥ हर्म्याणिवरशय्याश्च गोमहिष्यो वरस्त्रियः ॥ रत्नभूषणमुक्ताश्च पुत्रा दास्यो महाकुलम् ॥२२॥ आयुरारोग्यसौभाग्यं कलाविद्यासु नैपुणम् ॥ दानस्यैव फलं सर्वं प्राप्यते भुवि मानवैः ॥ २३ ॥ तस्माद्देयं प्रयत्नेन नादत्तमुपतिष्ठते ॥ स कार्पटिकधर्मिष्ठ इमां गाथामगायत ॥ २४ ॥ इति श्रुत्वा पुनः प्रेतः प्रोवाच ह्यार्तचेतसा ॥ मन्ये सर्वज्ञकल्पोऽसि पान्थ त्वं नात्र संशयः ॥२५॥

गाय, भैंस, सुन्दर स्त्री, अन्न, आभूषण, मोती, पुत्र, दास, दासी, महाकुल ॥ २२ ॥ आयु, आरोग्य, सौभाग्य, कला, विद्या, निपुणता इत्यादि सभी फल संसार में मनुष्यों को दान से ही प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥ अतएव मनुष्यों को यत्नपूर्वक दान करना चाहिये क्योंकि दिया हुआ ही मिलता है, उस धर्मिष्ठ कार्पटिक ने इस गाथा को गाया ॥ २४ ॥ यह

सुन कर प्रेत गद्‌गद् होकर फिर से बोला, हे पथिक ! मुझको मालूम हो गया कि आप अवश्य सर्वज्ञ हैं ॥ २५ ॥ आप जीवन (का आधार) जल दीजिये जैसे मेघ चातक को देता है, इस प्राणदान में बहुत विलम्ब मत कीजिये ॥ २६ ॥ इसके उत्तर में पथिक ने न्याय पूर्ण वचन कहा ॥ कार्पटिक ने कहा—हे प्रेत ! सुनो, मेरे माता पिता भृगुक्षेत्र में बैठे

देहि मे जीवनं वारि चातकाय घनो यथा॥ यतस्मिन् प्राणदाने हि मा विलम्बं कृथा बहु ॥२६॥ ततः प्रत्याह पान्थस्तु वचनं न्यायगर्भितम्॥ कार्पटिक उवाच—भृगुक्षेत्रे शृणु प्रेत पितरौ मम तिष्ठतः ॥२७॥ तदर्थं तीर्थराजस्य मया वारि समाहृतम् ॥ तत् सितासितपानीयं मध्ये च प्रार्थितं त्वया ॥२८॥ न जाने धर्मसन्देहः किमत्र मम युज्यते ॥ बलाबलं विचार्याथ करिष्ये प्रबलं विधिम् ॥२९॥ वेदेभ्यो धर्मशास्त्रेभ्यो नाहं मन्ये तु केवलम् ॥ हयमेधादियज्ञेभ्यः सर्वेभ्यो ह्यधिकं मतम् ॥३०॥ ऋषिभ्यो देवताभ्यश्च प्राणिनां प्राणरक्षणम् ॥ इदं दत्त्वा वरं वारि

हैं ॥ २७ ॥ उन्हीं के लिये मैं तीर्थराज से जल लाया हूँ, बीच में तुमने गंगा यमुना के संगम के जल को माँगा ॥ २८ ॥ इस धर्म सन्देह में मुझे नहीं जान पड़ता कि मुझको क्या करना उचित है, बलाबल को विचार करने के लिये मैं पूरा प्रयत्न करूँगा ॥ २९ ॥ मैं केवल वेदों को, धर्मशास्त्रों को, अश्वमेध इत्यादि यज्ञों को बढ़ कर नहीं मानता ॥ ३० ॥ परन्तु ऋषियों तथा देवताओं से भी अधिक प्राणियों की प्राणरक्षा को मानता हूँ, इस प्रकार जल देकर

तथा प्रेत की रक्षा करके ॥ ३१ ॥ माता पिता के लिये फिर से जल लाऊँगा, यही धर्म देने वाली शुद्ध विधि मुझको प्रबल जान पड़ती है ॥ ३२ ॥ पण्डितों ने कहा है कि दूसरे के प्रति उपकार करने से अन्य सभी कार्य न्यून हैं, प्राचीन काल में मनुष्यों ने परोपकार में अपने प्राण तक दे दिये हैं ॥ ३३ ॥ यदि जल से परोपकार हो जाय तो फिर मैंने क्या

कृत्वा प्रेतस्य रक्षणम् ॥ ३१ ॥ पित्रर्थं पुनरादाय जलं नेष्यामि पावनम् ॥ एष मे प्रबलो भाति शुद्धधर्मप्रदो विधिः ॥३२॥ परोपकरणादन्यत्सर्वमल्पं स्मृतं बुधैः ॥ परोपकारिभिर्दत्ता अपि प्राणा नृभिः पुरा ॥३३॥ अद्भिः परोपकारश्चेत् किं न लब्धं मया पुनः ॥ दधीचिना पुरा गीतः श्लोकोऽत्र श्रूयते भुवि॥३४॥ सर्वधर्ममयः सारः सर्वधर्मज्ञसम्मतः॥परोपकारः कर्तव्यः प्राणैरपि धनैरपि ॥३५॥ परोपकारजं पुण्यं न स्यात् क्रतुशतैरपि ॥ लोमश उवाच—इत्युक्त्वा प्रददौ तोयं गङ्गायमुनसम्भवम्॥३६॥प्रेताय प्राणरक्षार्थं स धर्मिष्ठो वरो द्विजः॥ प्रेतोऽपि तज्जलं

नहीं प्राप्त किया ? अर्थात् सब कुछ पा लिया, दधीचि ऋषि का प्राचीन काल में गाया हुआ यह श्लोक संसार में सुन पड़ता है ॥ ३४ ॥ सब धर्मों का सार तथा सभी धर्म के जानने वालों को यह सम्मत है कि प्राण से तथा धन से दूसरों का उपकार करना चाहिये ॥ ३५ ॥ परोपकार से उत्पन्न हुआ पुण्य सौ यज्ञों के तुल्य है। लोमशजी ने कहा—ऐसा कह कर (उस पथिक ने प्रेत को) गंगा यमुना के संगम का जल दिया ॥ ३६ ॥ उस धर्मिष्ठ श्रेष्ठ ब्राह्मण ने प्राणरक्षा

के निमित्त प्रेत को जल दिया, उसने प्रीतिपूर्वक जल को पिया और तब इसको अपने मस्तक पर मार्जन किया ॥ ३७ ॥ उसी क्षण वह प्रेत शरीर को त्याग कर दिव्य देहधारी हो गया, इस बड़े आश्चर्य को देखकर उस केरल ने कहा ॥ ३८ ॥ केरल बोला—अरे ! त्रिवेणी के जल के बिन्दुओं से यह प्रेतत्व से मुक्त हो गया, हम समझते हैं कि ब्रह्मा भी

पीत्वा अभिषिच्य शिरस्तदा ॥ ३७ ॥ विजहौ प्रेतदेहं तं दिव्यदेहोऽभवत् क्षणात् ॥ तदाश्चर्यं महद् दृष्ट्वा निजगाद स केरलः ॥ ३८ ॥ केरल उवाच—अहो विमुक्तः प्रेतत्वाद्वेणीपानीय-बिन्दुभिः ॥ ब्रह्मापि नैव शक्नोति मन्ये वक्तुमपां गुणान् ॥३९॥ गङ्गायास्तन्महादेवो धत्ते के कथमन्यथा ॥ अचिन्त्यशक्तिगङ्गाम्भस्तिलमात्रं तु यः पिबेत् ॥ ४० ॥ देवो भवेत् स सिद्धो वा गन्धर्वो वापि यः पिबेत् ॥ भवाब्धौ यानपात्राणि पयोबिन्दुकणालवाः ॥४१॥ पङ्कैर्गतिश्च पंगूनां यस्यास्तां को न सेवते ॥ न कालो न कलिः पापं दम्भोलिनैंव नारकः ॥ ४२ ॥

इस जल के गुण को नहीं वर्णन कर सकते ॥ ३९ ॥ नहीं तो गंगाजी के जल को महादेवजी (अपने मस्तक पर) क्यों धारण करते; जो अचिन्त्य शक्ति वाला गंगाजी का जल तिल मात्र भी पीता है ॥ ४० ॥ वह देवता हो जाता है, सिद्ध अथवा गन्धर्व हो जाता है, संसार रूपी समुद्र को पार करने के लिये इस जल के बिन्दु के परमाणु के तुल्य भी अन्य कोई पदार्थ नहीं है ॥ ४१ ॥ संसार में दल में फँसे लूल्हे की तरह जब सबकी गति है तो इसकी सेवा कौन न

करे; काल, कलियुग, पाप, वज्र, नरक ॥ ४२ ॥ कोई ऐसे नहीं हैं जो एक बार गंगा में स्नान करने से जीते न जाँय; तप, दान, होम तथा यज्ञों से ॥४३॥ मनुष्यों के पाप उतने नहीं हटते जितने गंगा जल से, जिसके जल के कण को स्पर्श करने से तत्क्षण प्रेतत्व नष्ट हो गया ॥ ४४ ॥ इसके जल में शरीर डुबाने से स्वर्ग लोक प्राप्त होता है, इसमें कोई सन्देह

तं पराभवितुं शक्तो गंगां स्नातो हि यः सकृत् ॥ न तपोभिर्न दानैश्च नैव होमजपाध्वरैः ॥४३॥ सा मृजा जन्मिनां या स्यान्मन्दाकिन्युद्भवाम्भसा ॥ यदम्भःकणसंघातात् प्रेतत्वं ह्यगमत् चणात् ॥४४॥ तज्जलाप्लुतदेहानां स्वर्लोको नात्र संशयः ॥ काये मनसि ये वाचि पापकौसुम्भरञ्जिताः ॥४५॥ नाशं यान्ति न ते रङ्गाः तेषां गंगोदकं विना ॥ सिद्धा हि सिद्धयस्तस्य स्वर्गस्तस्य गृहाजिरम् ॥४६॥ करस्थं तस्य कैवल्यं यो गंगां सेवते सदा ॥ यदम्भःस्पर्शनात् पापान्मुच्यन्ते प्रेतराक्षसाः ॥ ४७ ॥ योऽवगाहयते गंगां याति तद्वैष्णवं पदम् ॥ दायादो यदि गंगायां कुरुते पितृतर्पणम् ॥४८॥ नरकस्था दिवं यान्ति नाकस्था ब्राह्मतां तु ते ॥ न गंगा

नहीं है; शरीर, मन तथा वाणी के पापरूपी रंग से जो रँगे हैं ॥४५॥ उनका यह रंग गंगा जल के बिना नहीं धुलाता, सिद्धियाँ सब सिद्ध हो जाती हैं, स्वर्ग घर का आँगन हो जाता है ॥ ४६ ॥ गंगाजी के सदा सेवन से मुक्ति हाथ में रहती है जिसके जल के स्पर्श और पान से प्रेत रूपी राक्षस मुक्त होते हैं ॥४७॥ जो गंगास्नान करता है वह वैष्णव पद को प्राप्त

तो नरक में रहने वाले पितर लोग होता है; यदि दायाद (संबन्धी) लोग गंगाजी के जल से तर्पण करते हैं ॥ ४८ ॥ स्वर्ग में जाते हैं तथा स्वर्ग में रह कर ब्रह्मत्व को प्राप्त होते हैं, गङ्गाजी के समान दूसरी मुक्ति नहीं है, क्योंकि यह सबसे अधिक है ॥ ४६ ॥ हे पान्थ ! तुम आयुष्मान् हो धर्म से विमुख कभी मत हो ॥ ५० ॥ तुमने मुझको गङ्गाजी के

सदृशी मुक्तिर्गंगा सर्वाधिका यतः ॥४६॥ आयुष्मान् भव पान्थ त्वं मा धर्मविरतो भव ॥५०॥ त्वयाऽहं तारितः सद्यो गंगाम्बुकणदानतः ॥ लोमश उवाच—इत्युक्त्वा प्रस्थितो नाकं पिशाचस्तु स केरलः ॥५१॥ आशीर्भिरभिनन्द्याथ पान्थं धर्मधुरन्धरम् ॥ प्रेतं विमोद्य पान्थोऽपि पुनरादाय तज्जलम् ॥ ५२ ॥ गतस्तेनैव मार्गेण स्मरन् तीर्थोदकौतुकम् ॥ इत्थं प्रयाग माहात्म्यं श्रुत्वा नत्वा च तं मुनिम् ॥ ५३ ॥ प्रयाग सहसा माघे पिशाचः सत्वरं गतः ॥ स्नात्वा सितासिते सोऽपि माघे मासि द्विजोत्तमः ॥ ५४ ॥ पिशाचः क्षीणपापस्तु पैशाचीं

जल के कण से तुरत तार दिया। लोमशजी ने कहा—ऐसा कह कर उस केरल ने पिशाच को स्वर्ग में भेज दिया ॥ ५१ ॥ आशीर्वाद से उस धर्मधुरन्धर पथिक को अभिनन्दन करके प्रेत ने मोक्ष पाया और पथिक भी फिर से जल लाकर ॥ ५२ ॥ तीर्थोदक के कौतुक को स्मरण करता हुआ उसी मार्ग से चला गया, इस प्रयाग के माहात्म्य को सुन कर तथा उस मुनि को नमस्कार करके ॥ ५३ ॥ वह पिशाच एकाएक माघ मास में शीघ्र प्रयाग में गया, हे द्विजों में

उत्तम ! वह भी माघ मास में गङ्गा यमुना के सङ्गम में स्नान कर ॥ ५४ ॥ क्षीण पाप होकर पिशाच के शरीर से मुक्त हो गया, तब दिव्य शरीर का होकर वह द्रविड़ देश का राजा ॥ ५५ ॥ भक्तिपूर्वक द्वेष त्याग कर भगवान् नारायण की स्तुति करता हुआ, गन्धर्वों से स्तुति किया जाता हुआ तथा तथा स्वर्ग की स्त्रियों से पंखा झला जाता हुआ

विजहौ तनुम् ॥ दिव्यदेहस्ततो भूत्वा द्राविडो भूपतिस्तदा ॥ ५५ ॥ स्तुवन्नारायणं देवं भक्त्या द्वेषविवर्जितः ॥ गन्धर्वैः स्तूयमानस्तु नाकनारीसुवीजितः ॥५६॥ उत्तमेन विमानेन आरुह्येन्द्रपुरं ययौ ॥ इति ते कथितं सर्वं पूर्ववृत्तं सकौतुकम् ॥ ५७ ॥ इतिहासं द्विजश्रेष्ठ सद्यः पातकनाशनम् ॥ धर्ममीमांसनं पुण्यं यशस्य कीर्तिवर्धनम् ॥५८॥ ज्ञानदं मोक्षदं चव श्रुतं दुगतिनाशनम् ॥ अधुना तु मया सार्धमिमाः कन्याः सुतश्च ते ॥५९॥ त्वं चायान्तु प्रयागं वै सर्वे सद्गतिलिप्सवः ॥ माघस्नानं प्रकुर्मोऽत्र देवनालपि दुर्लभम् ॥ ६० ॥ तत्र

॥ ५६ ॥ उत्तम विमान पर चढ़ कर इन्द्रपुरी को गया, मैंने तुमसे यह कौतुकपूर्ण प्राचीन वृत्तान्त पूरा २ कहा ॥ ५७ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! यह इतिहास पापों को तुरत नाश करता है, इससे धर्म का ज्ञान होता है, यह पुण्य, यश तथा कीर्ति को बढ़ाने वाला है ॥ ५८ ॥ यह ज्ञान तथा मोक्ष को देने वाला तथा दुर्गति को नाश करने वाला है, अब मेरे साथ ये कन्यायें ये पुत्र ॥ ५९ ॥ और तुम भी सद्गति प्राप्त करने के लिए प्रयाग चलो और वहाँ पर हम लोग ऐसा माघ

स्नान करें जो देवताओं को भी दुर्लभ है ॥ ६० ॥ वहाँ पर शाप से उत्पन्न हुए पिशाच तुरत मुक्त होंगे ॥ वसिष्ठ जी ने कहा—इस प्रकार लोमशजी के मुख कमल से अमृतमय मधुर कथा को सुन कर ॥ ६१ ॥ मानो अमृत पीकर सब

मोचयन्ति पैशाच्यं सद्यः शापसमुद्भवम् ॥ वसिष्ठ उवाच—एवं लोमशवक्त्राब्जकथामधुसुधारसम् ॥६१॥ पीत्वा प्रमुदिताः सर्वे निस्तीर्णा दुरितार्णवात् ॥ प्रस्थितास्तेन सार्धं ते काष्ठां सपदि दक्षिणाम् ॥ ६२ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे माघमाहात्म्ये सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

प्रसन्न हुए और पापरूपी समुद्र के पार हुए, और उन्ही के साथ उन लोगों ने दक्षिण दिशा में प्रस्थान किया ॥ ६२ ॥

श्री पद्मपुराण के माघमाहात्म्य में सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २७ ॥



वसिष्ठ उवाच—दिलीप शृणु वक्ष्यामि स्नात्वाऽच्छोदसरोवरे ॥ सत्वरं व्योममार्गेण सानन्दगतयस्तु ते ॥ १ ॥ समागत्य स्थिता व्योम्नि सन्तुष्टहृदयास्तदा ॥ अथोचे लोमशस्तत्र मोदयन् सर्वमानसम् ॥२॥ पश्यन्तु श्रद्धया सर्वे तीर्थराजमिमं भुवि ॥ इयं सा मखवेदिर्वै

वसिष्ठजी ने कहा—हे दिलीप ! मैं कहता हूँ सुनो, अच्छोद सरोवर में स्नान करके लोग आनन्द पूर्वक आकाश मार्ग से चले गये ॥ १ ॥ और सन्तुष्ट होकर आकाश मार्ग से उस स्थान पर पहुँचे, तब लोमश जी सबको प्रसन्न करते हुए बोले ॥ २ ॥ संसार के इस तीर्थ राज को श्रद्धा पूर्वक सब लोग देखो, यह वही यज्ञ की वेदी है,

यह यजमान का स्थान है ॥ ३ ॥ ये तीन कुण्ड हैं जिनमें अग्नि जल रही है, यहाँ पर तृप्त होती हुई अग्नि किसको तृप्त नही करती ? ॥ ४ ॥ यहीं पर हस्ती के सूँड़ के समान स्थूल वसुधारा से तैंतीस करोड़ देवता सन्तुष्ट होकर आनन्द पूर्वक रहते हैं ॥ ५ ॥ और स्वादिष्ट पर्याप्त सोमधारा पीते हैं, यहाँ पर त्रिशूल धारी महादेवजी

यजमानस्य वेधसः ॥ ३ ॥ इमानि त्रीणि कुण्डानि दीप्तान्येवात्र वह्निभिः ॥ अत्र तृप्तिं गतो वह्निर्यः केनापिन तृप्यति ॥४॥ स्तम्बेरमकरस्थूलचण्डया वसुधारया ॥ अत्र देवास्त्रयस्त्रिंशत् तृप्ता मुमुदिरे भृशम् ॥५॥ मदिष्टयागेऽतिस्वादु पर्याप्तं सोमधारया ॥ आविर्भूतः स्वयं ह्यत्र शूलटङ्को महेश्वरः ॥ ६ ॥ अक्षयोऽयं सुरैः सेव्य आपातालजटो वटः ॥ मृकण्डसूनुना कल्पे प्रविश्य यन्मुखे स्थितम् ॥७॥ लोके जलाकुले सोऽय योगशायी जनार्दनः ॥ सेयं भगवती शम्भोर्वल्लभा ललिता भृशम् ॥ ८ ॥ सिद्धार्थ सेव्यते सिद्धैर्भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥ अपि ह्यटति गङ्गेयं

का प्रादुर्भाव हुआ था ॥ ६ ॥ देवताओं से सेवित यह अक्षयवट (बरगद) है जिसकी जड़ पाताल तक गयी है और मृकण्डु के पुत्र (मार्कण्डेयजी) जब प्रलय के समय संसार जल से डूबा रहता है, जिस भगवान के मुख में रहते हैं ॥७॥ वह जनार्दन भगवान् इसी वट वृक्ष पर योग की निद्रा लेते हैं, यही महादेव की अति प्रिय सुन्दर भगवती भागीरथी हैं ॥ ८ ॥ भुक्ति तथा मुक्ति के फल को देने वाली सिद्धि के लिये सिद्ध लोगों से सेवा की जाने वाली

यह गंगा मुक्ति प्राप्त कराने के लिए यहाँ भ्रमण करती हैं ॥ ९ ॥ यह भागीरथी स्वर्ग के निमित्त पताका है, इसका जल पीकर मनुष्य मुक्त होते हैं ॥ १० । हे मुनि! सभी प्राणी इस नदी (गंगाजी) को यमुना से मिली हुई पाते हैं, इनका संगम बड़े पुण्य से प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ इसमें स्नान करने से जन्म-मृत्यु रूपी दावानल से

मुक्तिमार्गे ह्यनुत्तमा ॥ ९ ॥ स्वर्गहेतोश्च या केतुः सेय भागीरथी नदी ॥ यस्या जललिहो लोका विकर्तनसलोकताम् ॥१०॥ लभन्ते प्राणिनः सर्वे सा नदी यमुना त्वियम् ॥ अनयोः पुण्यलब्धस्तु स ह्ययं सङ्गमो मुने ॥ ११ ॥ यत्र स्नाता न तप्यन्ते जन्ममृत्युदवाग्निना ॥ अविमुक्त विमुच्यन्ते तारकज्ञानजन्मना ॥१२॥ विना ज्ञान प्रयागेऽस्मिन् मुच्यन्ते सर्वजन्तवः ॥ इष्ट्वाऽत्रैव महायज्ञैः सृष्टिकामः प्रजापतिः ॥ १३ ॥ अवाप सृष्टिसामर्थ्यं ततःसृष्टिं चकारसः ॥ अत्र नारायणः सस्नौ पत्नीकामः सितासिते ॥ १४ ॥ तदव लब्धवान् लक्ष्मीं भार्यामसृतमन्थने ॥ उषित्वाऽत्रैव षण्मासान् स्नात्वा वेण्यां जयोत्सुकः ॥१५॥ त्रिपुरं पातयामास ह्येक-

कोई नहीं तपता, परन्तु ज्ञान प्राप्त करके तर जाता है तथा मुक्ति प्राप्त करता है ॥ १२ ॥ सभी जन्तु ज्ञान के विना प्रयाग में स्नान करके मुक्त हो जाते हैं, यही देख कर ब्रह्माजी ने यहीं पर महा यज्ञ करने की इच्छा की थी ॥ १३ ॥ तथा यज्ञ करके सृष्टि रचने का सामर्थ्य प्राप्त किया था, इस गंगा यमुना के संगम में पत्नी प्राप्त करने की इच्छा से भगवान् नारायण ने स्नान किया था ॥ १४ ॥ तब उन्होंने अमृत के मन्थन में लक्ष्मी को प्राप्त किया था, यहाँ पर ठहर कर उन्होंने त्रिवेणी में तीन महीने तक स्नान किया था ॥ १५ ॥ त्रिशूलधारी महादेवजी ने

एद वाण से यहीं पर त्रिपुर दैत्य को गिराया था, प्राचीन काल में इन्द्र के शाप से उर्वशी स्वर्ग से गिरी थी ॥ १६ ॥
स्वर्ग प्राप्त करने की इच्छा से उसने यहाँ स्नान किया था, तब शीघ्र ही उसको स्वर्ग मिला था, नहुप कुल के राजा
ययाति ने वंशधर पुत्र को प्राप्त किया था ॥ १७ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! इस पुण्य गंगा यमुना के संगम में पुत्र प्राप्ति की इच्छा

वाणेन शूलधृक् ॥ वासवस्यतु शापेन स्वर्गभ्रष्टा पुरोर्वशी ॥ १६ ॥ स्वर्गकामा च सा सस्नौ
लेभे स्वर्गं ततोऽचिरात् ॥ पुत्रं वंशधरं लेभे ययातिर्नाहुषो मुने ॥१७॥ पुत्रकामः प्रयागे च
स्नात्वा पुण्ये सितासिते ॥ धनकामः पुराः शक्रः स्नात्वाऽत्रैव द्विजोत्तम ॥ १८ ॥ धनदस्य
निधीन् सर्वान्नाजहार स्वमायया ॥ नारायणो नरश्चैव वर्षाणामयुतं पुरा ॥ १६ ॥ अना-
हारः प्रयागेऽस्मिन् कृतवान् धर्ममुत्तमम् ॥ जैगीषव्योऽत्र संन्यासी ईशधर्मोऽपराजयः ॥२०॥
अणिमादिगुणैश्वर्यं योगर्द्धिं चाप दुर्लभाम् ॥ कश्यपोऽत्र तपस्तेपे शिवाराधनतत्परः ॥२१॥

करने वाले को स्नान करना चाहिये, यहीं पर इन्द्र ने प्राचीन काल में धन की कामना करके स्नान किया था ॥ १८ ॥
अपनी माया से उन्होंने कुवेर के सब धन को यहाँ स्नान करके प्राप्त किया था, प्राचीन काल में नारायण तथा नर ने
हजारों वर्ष तक ॥ १६ ॥ यहाँ प्रयाग में निराहार हो उत्तम धर्म किया था, यहाँ पर जैगीषव्य संन्यासी महादेवजी की जैसी
शक्तिवाले होकर विजय पाये थे ॥२०॥ तथा अणिमादि (बहुत छोटा या बड़ा बजना इत्यादि) योग के अति दुर्लभ ऐश्वर्य
प्राप्त किये शिव की आराधना में तत्पर होकर कश्यप ऋषि ने यहीं पर तपस्या किया था ॥२१॥ इस तीर्थ में तपस्या करके

भरद्वाज (कश्यप आदि ७ ऋषियों में) सातवें हुए थे, हे ब्राह्मण ! इसी क्षेत्र में प्राचीन काल में आत्मज्ञानी ॥२२॥ सनकादि ऋषियों ने योग फल-सिद्धि को प्राप्त किया था, इस गंगा और यमुना के संगम के क्षेत्र (तीर्थ) में जिन लोगों ने स्नान किया ॥ २३ ॥ वे सब पाप से रहित होकर आकाश में तारारूप व्याप्त हो गये, कामी लोग (यहाँ स्नान करने से)

अस्मिन् तीर्थे भरद्वाजः षण्णां वै सप्तमोऽभवत् ॥ अस्मिन् क्षेत्रे पुरा विप्र क्षेत्रज्ञस्याऽपरोक्षता ॥२२॥ योगस्य फलसंसिद्धिं लेभिरे सनकादयः ॥ अस्मिन् क्षेत्रे तु यैः स्नातं गंगायमुनसङ्गमे ॥२३॥ तारारूपश्च तैर्व्याप्ता द्यौरियं सकलामला ॥ विन्दन्ति कामिनः कामान् मुक्तिं यान्ति मुमुक्षवः ॥ २४ ॥ विन्दन्ति साधकाः सिद्धिं प्रयागे हि द्विजोत्तम ॥ सम्प्राप्तं मुक्तिकामास्तु कन्याश्चापि सुतश्च ते ॥ २५ ॥ मद्वाक्यादत्र मज्जन्तु सर्वे त्वं च सितासिते ॥ प्राक्कालीनाघ-विध्वंसिवेणीजलबलेन तु ॥ २६ ॥ लभन्तामखिलां लक्ष्मीं प्राप्ताः शापं महाफलम् ॥ एव-मार्षवचः सत्यमतीन्द्रियमलंघनम् ॥ २७ ॥ श्रुत्वा चोत्कण्ठचित्तास्ते सर्वे स्नानाय चोद्यताः ॥

काम को प्राप्त करते हैं, मोक्ष की इच्छा करने वाले मोक्ष पाते हैं ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तम ! प्रयाग में साधक लोग सिद्धि प्राप्त करते हैं, मुक्ति को चाहने वाले पुत्र तथा कन्या ॥ २५ ॥ हमारे कहने से तुम सब इस गङ्गा यमुना के संगम में स्नान करो, त्रिवेणी के जल के प्रभाव से तुम्हारे पहिले किये हुए सब पाप नष्ट हो जावेंगे ॥ २६ ॥ इसके महाफल से सम्पूर्ण वैभव को प्राप्त करोगे, ऋषि के ऐसे सत्य तथा उल्लंघन न करने योग्य वचन को सावधानी से ॥२७॥

सुनकर वे सब उत्कंठित चित्त से स्नान करने में लग गये और उसी क्षण प्रयाग में स्नान करने से उनकी पिशाचता नष्ट हो गई ॥ २८ ॥ शाप के दुःख से विमुक्त होकर उन्होंने अपनी शरीर प्राप्त कर लिया, वेदनिधि ने अपने पुत्र तथा दिव्य रूप वाली कन्याओं को देखकर ॥ २९ ॥ प्रसन्न चित्त होकर तथा प्रति पूर्वक लोमशजी को

प्रयागं प्राप्य दुष्प्राप्यं पशाच्यं विजहुः क्षणात् ॥ २८ ॥ विमुक्ताः शापदुःखेन तनुं स्वां स्वां च लेभिरे ॥ दृष्ट्वा वेदनिधिः पुत्रं ताः कन्या दिव्यरूपिणीः ॥ २९ ॥ तुष्टाव लोमशं प्रीत्या प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ त्वदनुग्रहमात्रेणोत्तीर्णः पापमहार्णवः ॥ ३० ॥ इदानीमुचितं ब्रूहि बाला-नामृषिसत्तम ॥ लोमश उवाच—कुमारोऽधीतवेदोऽयं समाप्तनियमो युवा ॥ ३१ ॥ अज्ञातु सानुरागाणां गृह्णातु करपङ्कजम् ॥ ततो लोमशवाक्येन स्वपितुर्वचनात्तदा ॥ ३२ ॥ विवाह-विधिना चाशु ब्रह्मचारी स धार्मिकः ॥ शुभद्रव्यश्च मन्त्रश्च ऋषिभिः कृतमङ्गलः ॥३३॥ पश्चाना-

सन्तुष्ट किया और कहा कि आपके अनुग्रह से ही ये बड़े पाप से निर्मुक्त हुए ॥ ३० ॥ हे ऋषिश्रेष्ठ ! अब इन बालकों के योग्य धर्म को कहिये। लोमशजी ने कहा—इस युवा कुमार ने वेदों का अध्ययन समाप्त कर लिया ॥ ३१ ॥ मैं प्रीति पूर्वक कहता हूँ कि इनके करकमल को ग्रहण करें; तब लोमशजी के तथा अपने पिता के वचन से ॥ ३२ ॥ इस धार्मिक ब्रह्मचारी ने विवाह विधि से सुन्दर द्रव्य तथा मन्त्रों से तथा ऋषियों से मंगल किये जाते हुए ॥ ३३ ॥

धर्मपूर्वक पाँचों कन्याओं से पाणिग्रहण (विवाह) किया, इन कन्याओं के पूर्ण मनोरथ सफल हुए और ये सब बड़ी प्रसन्न हुईं ॥ ३४ ॥ वह कुमार भी अति सन्तुष्ट हुआ, लोमशजी को नमस्कार करने पर और उनसे आज्ञा लेकर ॥ ३५ ॥ वे देवताओं से सेवित मेरु पर्वत पर चले गये, तब हे राजन् ! वेदनिधि अपने पुत्र तथा पाँचों बहुओं को

मपि कन्यानां पाणिं जग्राह धर्मतः ॥ आनन्दिन्यस्तदा सर्वाः कन्याः पूर्णमनोरथाः ॥३४॥ बभूवुः सकुमाराश्च सन्तुष्टश्च बभूव ह ॥ दत्त्वाऽनुज्ञां मुनिः सोऽथ लोमशस्तैर्नमस्कृतः ॥३५॥ जगाम स्वाश्रमं मेरुं पर्वतं सुरसेवितम् ॥ ततो वेदनिधी राजन् स्नुषाः पञ्च सुतं तथा ॥३६॥ पुरस्कृत्य मुदा युक्तो धनदस्य पुरं ययौ ॥ ३७ ॥ वञ्चकश्च पितृद्रोही गुरुदाररतस्तथा ॥ कन्याविक्रयकश्चापि विष्णुब्राह्मणद्रोहकः ॥ ३८ ॥ ते सर्वे शुद्धिमायान्ति श्रुत्वेमा विशदाः कथाः ॥ मोक्षदं कामदं काम्यं प्रकाश्यं नेतरे जने ॥३९॥ गोपनीयं प्रयत्नेन येषां श्रद्धा न विद्यते ॥ न तेषां कथनीयं व सत्यं सत्यं हि सूतज ॥४०॥ स विष्णुर्देवता विप्राः स ब्रह्मा स च

॥ ३६ ॥ लेकर प्रसन्न चित्त होकर कुबेर के नगर को गये ॥ ३७ ॥ वंचक, पिता का द्रोही, गुरु की पत्नी में रत, कन्या की बिक्री करने वाला, विष्णु तथा ब्राह्मण से द्रोह करने वाला ॥ ३८ ॥ ये लोग भी इस पवित्र कथा को सुनकर शुद्धि प्राप्त करते हैं, यह तीर्थ मोक्ष देने वाला है, मनचाहा फल देने वाला है, और गोपनीय है ॥ ३९ ॥ जिनको श्रद्धा न हो उनसे यह कथा गुप्त रखनी चाहिए, उनसे हे सूतजी के पुत्र ! यह कथा कभी न कहनी चाहिए ॥ ४० ॥

जो इसको पढ़ता है या सुनता है वही ब्राह्मण, विष्णु, देवता, ब्रह्मा और शंकर है, वह विष्णु का सायुज्य प्राप्त करता है ॥ ४१ ॥ यह पुण्य है, पाप को हरने वाली है, धन्य है, बुरे स्वप्न को नाश करने वाली है, यह विष्णु का माहात्म्य पढ़ना तथा सुनना सभी है ॥ ४२ ॥ इस माहात्म्य को सुन कर इसके पढ़ने वाले का पूजन करे इसको

शंकरः ॥ यः पठेत् शृणुयाद्वापि स गच्छेद्विष्णुसाम्यताम् ॥४१॥ एतत् पुण्यं सपहरं धन्यं दुःस्वप्ननाशनम् ॥ पठतां शृण्वतां चैव विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४२ ॥ माहात्म्यमेतदाकर्ण्य पूजयेच्चास्य पाठकम् ॥ गोभूहिरण्यवस्त्रैश्च विष्णुतुल्यो यतो हि सः ॥ ४३ ॥ वाचके पूजिते यस्माद्विष्णुर्भवति पूजितः ॥ तस्मात्तं पूजयेन्नित्यं यदीच्छेत् सफलं श्रुतम् ॥४४॥ यः पठेद्दिव्य-माहात्म्यं श्रुत्वा चैवावधारयेत् ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥४५॥ परमिम-मितिहासं पावनं तीर्थवृत्तं वृजिनविलयहेतुं यः शृणोतीह नित्यम् ॥ स भवति खलु पूर्णः सर्वकामैरभीष्टैर्जयति च सुरलोकं दुर्लभं धर्महीनैः ॥ ४६ ॥ कथितं ब्रह्मणा पूर्वं वसिष्ठाय

गाय, भूमि, सुवर्ण तथा वस्त्र दे क्योंकि यह विष्णु तुल्य है ॥ ४३ ॥ इस कथा के वाचक की पूजा करने से विष्णु भगवान् प्रसन्न होते हैं, अतएव यदि सुनने का फल प्राप्त करना हो तो इनका नित्य पूजन करे ॥ ४४ ॥ जो इस दिव्य माहात्म्य को सुनता और याद करता है वह सब पापों से छूट कर विष्णु लोक को जाता है ॥ ४५ ॥ पाप को नाश करने के निमित्त जो इस पुण्य तीर्थ के इस दिव्य इतिहास को नित्य सुनता है उसकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं

श्रौर वह सुरलोक का विजय करता है जो धर्महीनों के लिये दुर्लभ है ॥ ४६ ॥ इसको ब्रह्माजी ने पहिले वसिष्ठ मुनि से कहा था, उसको दत्तात्रेयजी ने कहा, तथा वसिष्ठजी ने राजा दिलीप से कहा ॥ ४७ ॥ सब पापों को नाश करने वाला यह पुण्य माघमाहात्म्य मैंने कार्तवीर्य को सुनाया ॥ ४८ ॥ जिसके घर में लिखा हुश्रा यह माहात्म्य सर्वदा

महात्मने ॥ दिलीपाय वसिष्ठेन दत्तात्रेयेण भाषितम् ॥ ४७॥ कार्तवीर्याय चाख्यातं तत्पुण्यं श्रावितं मया ॥ सुपुण्यं माघमाहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ४८ ॥ यस्येदं लिखितं गेहे तिष्ठते पूजितं सदा ॥ तस्य नारायणो देवः सदा तिष्ठति पूजितः ॥ ४६ ॥ यश्चवं शृणुयान्नित्यं नैरन्तर्येण मानवः ॥ तेन मन्त्राः पुराणानि सर्वे वेदाः ससंग्रहाः ॥ ५० ॥ जप्ताः स्युः पुष्करे तीर्थे प्रयागे सिन्धुसागरे ॥ देवागारे कुरुक्षेत्रे वाराणस्यां विशेषतः ॥५१॥ पुष्करे ग्रहणे चैव यत्फलं जपतो भवेत् ॥ तत्फलं द्विगुणं तस्य संयतात्मा शृणोति यः ॥५२॥ श्रुत्वा तु पूजयेत्

पूजा किया जाता है उसके घर में सर्वदा भगवान् नारायण पूजित रहते हैं ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य निरन्तर नित्य इस माहात्म्य को सुनते हैं वे (मानो) सब वेद, मन्त्र, पुराण को संग्रह किए हुए हैं ॥ ५० ॥ पुष्कर तीर्थ में, प्रयाग में, गङ्गा सागर में, देवालय में, कुरुक्षेत्र में तथा विशेष कर काशी में इसका पाठ श्रवश्य करना चाहिये ॥ ५१ ॥ पुष्कर तीर्थ में ग्रहण में इसका पाठ करने से दूना फल होता है तथा जो मन लगाकर इसको सुनता है ॥ ५२ ॥ श्रौर

पुराण बाँचने वाले ब्राह्मण का पूजन करता है तथा हे सूतजी के पुत्र! गाय, भूमि, वस्त्र, आभूषण इत्यादि अमूल्य पदार्थ देता है ॥ ५३ ॥ ऐसा करने से जो पुण्य होता है उसको मैं कह नहीं सकता—ऐसा मनुष्य संसार में सुखी

सूत पुराणज्ञं द्विजोत्तमम् ॥ गोभूमिवस्त्रभूषाद्यैर्बहुलाभेन सूतज ॥ ५३ ॥ एवं कृते तु यत्पुण्यं न तच्छक्यं मयेरितम् ॥ इहैव स सुखी भूत्वा निरातङ्को गतज्वरः ॥ ५४ ॥ ततोऽवसाने सूतेन्द्र प्राप्नुयाद्वैष्णवं पदम् ॥ ५५ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे मा० मा० वसिष्ठदिलीपसं० तदन्तगतदत्तात्रयकार्तवीर्यार्जुन सं० तदन्तगतलोमशवेदनिधिसंवादे तदन्तर्गतव्याससूतसंवादे अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥

होता है ॥ ५४ ॥ उसको किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होती और वह मरने पर वैष्णव पद को प्राप्त होता है ॥ ५५ ॥

श्री पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में माघमाहात्म्य के वसिष्ठ और दिलीप संवाद में अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २८ ॥

॥ समाप्तम् ॥

अथ माघमासव्रतोद्यापनप्रयोगः ।

★

आदौ मध्ये अन्ते वा पूर्णिमायां कार्यम् । तिथ्यादि संकीर्त्य ममात्मनः सकलपापक्षयपूर्वकैहिकामुष्मिकविविधसुखप्राप्तिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रतिवर्षं मासपर्यन्तं आचरितस्य आचीर्यमाणस्य च प्रातःस्नान श्रीलक्ष्मीसहितमाधवपूजनकथा श्रवणादिरूपव्रतस्य साङ्गतासिद्ध्यर्थं माघमासव्रतोद्यापनाख्यं कर्म करिष्ये । इति सङ्कल्प्य गणपतिपूजनादिनान्दी श्राद्धान्तं कृत्वा आचार्यादीन् वृणुयात् । वृताचार्यः सर्षपान् विकीर्य पञ्चगव्येन प्रोक्ष्य सर्वतोभद्र ब्रह्मादिदेवतास्थापनं पूजनं च विधाय तत्र कलशं संस्थाप्य तस्मिन् कलशे पूर्णपात्रोपरि अष्टदले हैमं लक्ष्मीयुतं माधवं [कार्तिकमासे तु राधया युतं दामोदरं वैशाखे मधुसूदनं] इदं विष्णु—' इति मन्त्रेण प्रतिष्ठाप्य पुरतो

राजतं गरुडं च संस्थाप्य परितो ।

आह्वान कल्याण —

प्रातःकाले नित्यकर्म समाप्य कुण्डे वा स्थण्डिले अग्निं प्रतिष्ठाप्य ग्रहान् सम्पूज्य कुशकण्डिकां कृत्वा ग्रहहोमं कुर्यात् । लक्ष्म्या युतं माधवं साज्ययवमिश्रिततिलाश्वत्थसमिद्घृतपञ्चखाद्यद्रव्यचतुष्टयेनाष्टोत्तरशताहुतिभिः परिवारदेवताः ब्रह्मादिदेवताश्च दश दशाहुतिभिर्हुत्वा स्विष्टकृदादिप्रणीताविमोकान्तं कृत्वा आचार्याय सोपस्करां शय्यां गां पीठं च दत्त्वा आचार्यादिभ्यो दक्षिणां दद्यात् । पीठदानमन्त्रः—श्रीमाधव सलक्ष्मीक सुप्रतीक जनार्दन । त्वं मां मोचय पापाद्वै तव मूर्त्तिप्रदानतः ॥ १ ॥ ततः कृतस्य माघमासव्रतोद्यापनस्य साद्गुण्यार्थं लक्ष्मीसहितमाधवदेवताप्रीत्यर्थं इमान् त्रिंशत्संख्याकान् सपक्वान्नान् घटान् दक्षिणासहितान् नानागोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दातुमहमुत्सृजे । ततः त्रिंशत्संख्याकान् सपत्नीकान् ब्राह्मणान् पक्वान्नादिना सम्भोज्य स्वयं कुटुम्बैः सह भुञ्जीत । इति व्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पं० माधवप्रसादव्यासेन संगृहीतो माघादिमासव्रतोद्यापनप्रयोगः समाप्तः ॥

मुद्रक—सूरजप्रसाद गुप्त, ज्वाला प्रिंटिंग वर्क्स, त्रिलोचन घाट, वाराणसी ।